आमुख

पूज्य महोपाध्याय श्री चन्द्रप्रभसागरजी चैतन्य के शिखर है। वे व्याख्यान वाचस्पति है, प्रवचन प्रभाकर है। उनकी वाणी मे सूक्ष्मता, रोचकता और प्रभावकता का त्रिवेणी सगम है। उनकी बौद्धिक प्रतिभा तथा चिन्तनकारी प्रवचनो से हजारो हजार लोगो को आत्म विश्वास के पथ पर प्रेरणा मिली है। अनुगुजित है उनके प्रवचनो मे अन्तरचिन्तन का सगीत।

श्री चन्द्रप्रभजी एक कुशल प्रवचनकार के रूप मे विख्यात है। उनकी वाणी मन्त्र की तरह अद्भुत चमत्कारपूर्ण है। उपस्थित हजारो श्रोताओ मे सबको अपनी मनचाही बात मिल जाती है। सबको अपनी समस्या का समाधान मिल जाता है। जहाँ भावो की गहराई चाहनेवाले विचारो की गहराई मे डुबकी लगाते हुए तल का पता नही पाते, वही सासारिक ज्वाला की पीड़ा से पीड़ित जन प्रवचन के एक एक वर्ण को अमृत की तरह पाकर सुखशान्ति का अनुभव करते हैं। एक ओर बीच बीच मे आती सटीक लघुकथाओ और दृष्टान्तो से लोगो की हँसी थमने नही थमती, तो दूसरी ओर विचारो की तन्मयता मे लोग इतने विभोर एव तल्लीन हो जाते है कि चित्रलिखित मूर्ति की तरह प्रतीत होते है।

प्रस्तुत सकलन मे कलकत्ता, मद्रास एव पूना के चातुर्मास और देश के पन्द्रह प्रदेशो की पदयात्रा के दौरान दिये गये अगणित प्रवचनो मे से कुछेक प्रवचन है। यह द्वितीय सस्करण है। इस प्रकाशन के पीछे प्रवचनो से लाभान्वित तथा अतिशय प्रभावित व्यक्तियो का विशेष आग्रह और सहयोग रहा है। बहुजनहिताय यह आवश्यक भी था। अब जरूरत है इसे मनोयोग से पढ़ने की। यो भी चन्द्रप्रभजी की वाणी इतनी चटपटी और जायकेदार है कि उचटे मन का भी उसमे चटपट चाव लग जाती है।

स्व श्री केशरीचंद जी ललवाणी

श्री चद्रभाण जी हींगड एव तीजाबाई हींगड

श्रीमती शांताबाई सम्पतराज जी कास्टिया

प्रकाशन-अनुदान

१ श्री मूलचन्द जी, अभयकरण जी, ज्ञानचन्द जी कोठारी, फलोदी/मद्रास
C/o श्री महेन्द्रकुमार जी कोठारी
पुरोहित हाउस १६५ मिंट स्ट्रीट मद्रास ७९

२ श्री केशरीचन्द जी के सुपुत्र श्री वसतीलाल जी पारसमल जी ललवानी,
C/o जे के एण्ड सन्स, २०२ रविवार पेठ पूना २

३ श्री सम्पतराज जी मोतीलाल जी कास्टिया, ब्यावर/पूना
२१- मुकुंदनगर पूना ३७

४ श्री चन्द्रभान जी भीकाजी के सुपुत्र श्री मॉगीलाल जी, धनराज जी, चम्पालाल जी, पोपटलाल जी हिगठ, पोसालिया वाले
C/o नवहिंद जनरल स्टोर्स
२१५८ न्यू मोदीखाना कैम्प पूना

उद्बोधन-क्रम

अधेरी मुट्ठी मे उजली रूहे

ससार एक वन्धन है। यहाँ का प्रत्येक प्राणी बधा हुआ है। जैसे कैदी जेल के शिकजा म जकडा रहता है वेडियो से बधा रहता हे वैसा ही वन्धा हुआ है यहाँ का प्रत्येक जीव। चूंकि जीव आवद्ध है इसलिए वह छूटा हुआ नही है मुक्त निर्वन्ध और निर्ग्रन्थ नही है। इस वन्धन का कोई-न-कोई आधार अवश्य है कोई न कोई कारण जरूर है। बिना कारण के कार्य की निष्पत्ति नही होती। इसलिए जीव के वन्धन का कोई न-कोइ कारण अवश्य है। उस वन्धन के कारण की जजीर एक एसे गहन अधियारे स जुड़ी है जहा प्रकाश की धुधली किरण भी नही है। यह अवस्था वास्तव म जीव की निम्नतम भूमिका है। इस भूमिका का नाम ही मिथ्यात्व है। यह ठगौरी भ्रमभरी और झूठी चीज है।

इस मिथ्यात्व की अवस्था को साख्य दर्शन म अविवेक कहा है। यह वास्तव मे प्रकृति और पुरुष दोनो के भेद का अज्ञान है। योगदर्शन भी अविवेक को ही वध का हेतु मानता है। जबकि नैयायिक वेशेषिक और वेदान्ती उस भूमिका को अज्ञान नाम से पुकारते है। बौद्ध-दर्शन जो क्षणभगुरवादी है पर बधन का बिना किसी हिचक के स्वीकार करता है। वह तृष्णा को बधन की कड़ी मानता है। बौद्धो ने तृष्णा को अविद्या भी कहा है। जैन दर्शन इसे राग द्वेष भी कहता है मोह और मिथ्यात्व भी कहता है।

नाम जुदे-जुदे जरूर है पर इशारा सबका एक ही ओर है। चूंकि इन सबम झूठाई का बोलवाला है इसलिए मै इन्हे मिथ्यात्व के सागर म उड़ेल दू तो ठीक रहेगा। यह मिथ्यात्व और कुछ नही स्वय के साथ स्वय का धोखा है आत्म - प्रवचना है। यह मिथ्यात्व का ही प्रभाव है कि जीव अनादिकाल से ससार के बधन म पड़ा है। इससे वह अपने सच्चे स्वरूप को भूल उस बधन को ही अपना स्वरूप मानकर उसी म रम रहा है। और सब

अधेरी मुट्ठी मे उजली रूहे

समार एक वन्धन है। यहा का प्रत्येक प्राणी वधा हुआ है। जैसे कैदी नेल के शिकजा म जकडा रहता है वेडियो से वधा रहता ह वैसा ही बन्धा हुआ हे यहाँ का प्रत्येक जीव। चूंकि जीव आवद्ध हे इसलिए वह छूटा हुआ नही है मुक्त निर्वन्ध ओर निर्ग्रन्थ नही हे। इस वन्धन का कोई-न-कोई आधार अवश्य हे कोई न कोई कारण जरूर ह। विना कारण के कार्य की निष्पत्ति नही होती। इसलिए जीव के वन्धन का कोई न कोइ कारण अवश्य हे। उस वन्धन क कारण की जजीर एक एसे गहन अधियारे स जुडी हैं जहा प्रकाश की धुधली किरण भी नही है। यह अवस्था वास्तव म जीव की निम्नतम भूमिका है। इस भूमिका का नाम ही मिथ्यात्व है। यह ठगोरी भ्रमभरी ओर झूठी चीज हे।

इस मिथ्यात्व की अवस्था को साख्य दशन म अविवेक कहा है। यह वास्तव म प्रकृति और पुरुष दानो के भेद का अज्ञान है। योगदर्शन भी अविवेक को ही वध का हतु मानता है। जवकि न्यायिक वैशषिक ओर वेदान्ती उस भूमिका को अज्ञान नाम म पुकारते हे। बौद्ध-दर्शन जो क्षणभगुरवादी है पर वन्धन का विना किसी हिचक क स्वीकार करता है। वह तृष्णा को वधन की कडी मानता ह। बोद्धा ने तृष्णा को अविद्या भी कहा है। जैन दर्शन इसे राग द्वेष भी कहता है मोह ओर मिथ्यात्व भी कहता है।

नाम जुदे-जुदे जरूर हैं पर इशारा सबका एक ही ओर है। चूकि इन सबमे झुठाई का वालवाला है इसलिए म इन्ह मिथ्यात्व के सागर म उडेल लू तो ठीक रहेगा। यह मिथ्यात्व ओर कुछ नही स्वय के साथ स्वय का धोखा है आत्म प्रवचना ह। यह मिथ्यात्व का ही प्रभाव है कि जीव अनादिकाल से ससार क वधन मे पडा ह। इसम वह अपने सच्चे स्वरूप को भूल उस वन्धन को ही अपना स्वरूप मानकर उसम रम रहा है। ओर सच

के प्रति बन पाई? सारी लंका में एक ही ऐसा सत्य का पुजारी निकला जिसने अपने बड़े भाई की अपार समृद्धि को ठुकरा कर भी सत्य का समर्थन किया राम को अपनाया सम्यक्त्व का दीप जलाया मिथ्यात्व के अंधियारे को ठुकरा दिया। लंकेश के सलाहकारों ने क्या अपने राजा को कम समझाया था? युद्ध की आखिरी घड़ी तक समझाते समझाते थक गये पर भला जिसके अन्तर आकाश में मिथ्यात्व का कोहरा छाया हुआ हो उसे दीया तो क्या सूरज का प्रकाश भी सच्चाई का दर्शन नहीं करा सकता।

मिच्छत्त वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होई।

ण य धम्म रोचेदि हु महुरंपि रस जहा जरिदा।।

भगवान महावीर का यह अनुभव है कि जो जीव मिथ्यात्व में उलझा है उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। उसे धर्म भी रुचिकर नहीं लगता जैसे ज्वर में रोगी मनुष्य को मीठा रस भी अच्छा नहीं लगता। रावण को धर्म और सन्मार्ग की बातें काफी सुनायी गई मगर वे उसे ठीक उसी तरह नहीं सुहायी जिस तरह बुखार में रोगी को मिठाई। आखिर रावण को परिणाम भुगतना पड़ा, अयोध्या जैसे छोटे से राज्य के राजा के हाथों बड़े भारी साम्राज्य का अधिनायक होते हुए भी मरना पड़ा।

ये राम और रावण वास्तव में सम्यक्त्व और मिथ्यात्व धर्म और अधर्म न्याय और अन्याय सत्य और असत्य के प्रतिनिधि हैं। हमारे अपने भीतर ही राम की कुटिया बनी है और रावण का महल खड़ा है पर महल में अंधियारा है और कुटिया में उजाला है। लोग कतराते हैं महल में अपने आक्रमक कदम बढ़ाने से। वे सोचते हैं कि महल का अंधियारा विराट है कुटिया का दीया तो दो चार इंच का है। एक ओर असुरों की विशाल सेना है तो दूसरी ओर पेड़ पर झूमने वाले वानरों की छोटी सी सेना। पर लोग यह नहीं सोच पाते कि महल का अंधियारा विराट है तो क्या हुआ। उसकी धज्जियाँ उड़ाने के लिए दीये की लौ काफी है। दीये के अनुरूप में ही तो समाया हुआ है प्रकाशवादी विराट स्वरूप। अपनी संकल्प के धारा को क्षुद्र मत समझिये। इन बंदरों में ही तो छिपे हुए हैं हनुमान सुग्रीव नल नील जैसे महापराक्रमी और जिन्हें नेतृत्व मिल रहा है आतम राम का सम्यक्त्व के विभीषण का।

आज ऐसे पुरुषों की जरूरत है जो राम की तरह हाथ में मशाल लिए हुए भटकती दुनिया को सही राह दिखा सकें। रावण की इस दुनिया में कमी नहीं है। हिटलर जैसे लोग इस युग के रावण हैं तो गांधी जैसे लोग

जीव की स्थिति इससे कोई भिन्न नही है। वह भी अपने सुख के लिए आनन्द पाने के लिए अनित्य धन दौलत को नित्य समझता है पुद्गल को चेतन मानता है अनात्म मे आत्म बुद्धि रखता है देह को ही अपना सब कुछ मानता है। यानी असत्य म सत्य का आरोपण कर बैठता है असत्य की नीव पर सत्य का मकान बना बैठाता है। इस तरह वह इसी मिथ्यात्व के आकर्षण म उलझा फसा रहता है। जब तक यह इसमे उलझा रहेगा वह ससार के जाल म ही जन्म मरण करता रहेगा। जब जब वह मछली बनता जायेगा, तब तब मछुआरा उसे पकड़ता जायेगा। जाल को मछली घर मानती है आकर्षण का केन्द्र मानती है। वही उसके लिए दुख और मृत्यु का कारण बनता है।

-पतजलि ने अपने योगसूत्र मे यही बात तो कही है कि अनित्यशुचिदु खानात्मसु नित्यशुचिसुखात्म ख्याति अविद्या। मतलब यह है कि अनित्य म नित्य अपवित्र म पवित्र दुख म सुख और अनात्म मे आत्मा की धारणा ही अविद्या है मिथ्यात्व है। मै मिथ्यात्व शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थ मे कर रहा हूँ। एकागी ज्ञान भ्रम सशय रूढि ज्ञान अज्ञान इन सबको मैं मिथ्यात्व के अग मानता हूँ।

जैसे दो चार अन्धा को आख वाले एक व्यक्ति के द्वारा हाथी का परिचय कराया गया। जिस अन्धे ने हाथी का पैर पकडा उसने समझा कि हाथी खम्भे जैसा होता है। जिसे हाथी की सूड पकडायी गयी उसने समझा कि हाथी साप की तरह लम्बा होता है। ऊपर से मोटा और नीचे से पतला होता है। जिस अन्धे की पकड म हाथी का कान आया उसकी समझ म यह आया कि हाथी हवा खाने वाली पखी की तरह होता है। जिस आखवाले ने हाथी को देखा उसने समझा कि हाथी भैंस से बडा एक काला जानवर है। अब सब लडने लगे। सब कहते है मेरी बात सच्ची है।

एक मायने मे इन सभी का ज्ञान सत्य है। लेकिन दूसरे मायने मे इनका ज्ञान मिथ्या है। क्योकि प्रत्येक वस्तु के अनन्त धर्म होते हैं। वस्तु का एकागी ज्ञान सापेक्ष होता है। द्रव्य के किसी धर्म की अपेक्षा सत्य है और किन्ही धर्मों की अपेक्षा असत्य है। अन्धा ने हाथी के भिन्न भिन्न अगो को सस्पर्श कर उसे उन उन अगो के अनुरूप बताया। अग तो भिन्न भिन्न थे जिनको वे देख नही पा रहे थे परस्पर लड़ने लगे। जब नेत्रयुक्त व्यक्ति ने अधो को हाथी के भिन्न भिन्न अग स्पर्श करवा दिये तो समाधान हो गया। पदार्थ का स्वरूप अपने म गुणो की अनेकता समेटे है जिसे एक साथ

है। अर्जुन! तुम्हे ऐसे कर्मो से मुक्त होना है गुणीतीत होना है। सभी कर्मकाण्ड वेदमूलक है और वेद को त्रिगुणात्मक कहा गया है। मुमुक्षु के लिए इन कर्मों का निषेध है। यानी रूढ़िमूलक ज्ञान मिथ्यात्व से युक्त है। इसलिए रूढ़िगत ज्ञान से हटना चाहिये। इन पाँचो मिथ्यात्वो से हटना ही आत्म विकास का पहला आयाम है।

तो मिथ्यात्व जो चीज जैसी है उसको उसके ठीक विपरीत देखना। जो चीज जैसी है उसको उसी रूप मे देखना उसको सम्यक्त्व कहते है। यथार्थ को अयथार्थ समझना या अयथार्थ को यथार्थ समझना मिथ्यात्व है अविद्या है। और प्राय कर ससार के प्राणी हमेशा यथार्थ को अयथार्थ ही समझते हैं। वह सत्य को असत्य मानता है असत्य को सत्य मानता है अयथार्थ को यथार्थ मानता है। जो चीज जैसी होती है ठीक उसके विपरीत मानता है। जैसे यथार्थ तो यह है कि झूठ नही बोलना चाहिए मगर मिथ्यात्वयुक्त पुरुष जरूर झूठ बोलता है। सत्य तो यह है कि कामभाग दु खकर है मगर ससारी प्राणी मिथ्यात्व के कारण उसे परम सुख मानता है। खुजली खुजलाने पर तो आनन्द मिलता है बाद म भले ही दु ख मिले। जो जैसा है वह ठीक उसके विपरीत समझता है। उसी को कहते हैं मिथ्यात्व। उस बिजली के खम्भे का चोर समझ लेना मिथ्यात्व है। अथवा इस प्रकार समझिये – होली के दिन बच्चे लोग कभी-कभी तमाशा करते हैं। तमाशा यह करते है कि एक मोटा सा रस्सा ले लेते हैं। उस रस्सी को बीचे सडक पर डाल देते हैं। किनारे उसके [illegible] सा धागा बाध देते है ताकि जैसे ही कोई आदमी उधर से गुजरता ह कि बच्चे किनारे बैठे रहते हैं और वे उस धागे को थोडा सा हिलाते हैं। जैसे ही धागा थोडा सा हिलता है कि वह रस्सी भी थोडी हिलने लगती है जो आदमी उधर से आ रहा है वह सोचता ह कि सप है। वह झट से घबराकर पीछे हटता है कि सप है। वह चिल्लाता है सर्प सर्प भागा। बच्चे हसते है। बच्चे कहते है वह तो रस्सी है। परन्तु आदमी उसको सर्प मानता [illegible]। ठीक है यदि रस्सी को सर्प मानेग तो लोग हँसी उडायगे। मगर यदि सप को रस्सी मान लिया तो बडी हानि है। यदि सर्प को रस्सी मानकर हाथ म लगे तो गये हम काम से। रस्सी को सर्प मान लिया तो चल जायेगा जसे तैसे। मगर यदि सर्प को रस्सी मान लिया तो बहुत बडा मिथ्यात्व आ गया।

इसलिए कभी भी जो चीज जैसी है [illegible] मत समझो। आपने यह शब्द तो बहुत

मृगमरीचिका। हिरण क्या करता है? देखता है रेगिस्तान मे लहराती किरणे आ रही है। उसे लगता है सचमुच पानी की लहरे ही आ रही हैं। हिरण दौड़ता है उस पानी को पाने के लिए मगर रेगिस्तान म पानी तो क्या कीचड भी नही मिलता। हिरण बहुत दौड़ता है, परन्तु मिलता नही। इसी को कहते ह मिथ्यात्व। बिल्कुल विपरीत समझ लेना है यह।

आपने रामायण तो अनेक बार पढ़ी होगी। रामायण म लिखा है कि राजा दशरथ शिकार खेलने के लिए जब जगल म गये तो उनको दूर से ही पानी की कल कल की आवाज सुनायी दी। दशरथ ने सोचा कि जरूर नदी के किनारे हिरण आया है और नदी म पानी पी रहा है। शब्दवेध कुशल दशरथ ने आवाज के लक्ष्य पर तीर छोडा। वह तीर सीधे जाकर लग गया। जब जोर से कराह की आवाज आयी तो दशरथ का दिल काँप गया। चौंके कि अरे यह क्या! मैंने तो सोचा था कि वहाँ पर हिरण है मगर यह तो आदमी की आवाज है। दशरथ दौड़ते दौड़ते पहुँचे तो देखा कि यह तो हिरण नहीं श्रवण कुमार है। बिल्कुल विपरीत लक्ष्यसधान हुआ।

इसलिए श्रवणकुमार के अन्धे माता पिता ने दशरथ को अभिशाप दिया था कि तुमको भी हमारे जैसे पुत्र वियोग सहना पड़े। बिल्कुल [illegible] सधान हुआ यह। आदमी को हिरण समझकर तीर चला देना कितना बड़ा मिथ्यात्व है! कितनी बड़ी मूर्खता है! कितनी बड़ी मूढ़ता है यह!

यदि [illegible] इस ससार के पार उतरना है तो मिथ्यात्व के पार जाना होगा। सम्यक्त्व के दीप को पाना होगा। जब तक आदमी इस मिथ्यात्व के सागर म [illegible] रहेगा तब तक वह कभी भी पार नहीं हो सकता।

वस्तुत मिथ्यात्व विकृत मार्गदर्शक एव अनुचित आचरण का प्रेरक है। [illegible] होने के कारण आदमी हठाग्रही तथा एकान्त[illegible] भी है। [illegible] वह पर म भी स्व का [illegible] आत्म-बुद्धि का [illegible] करता है। मिथ्यात्वी के सामने यदि कोई यथार्थ तत्त्व एव [illegible] भी करता है तो वह उसे अप्रिय लगते है। [illegible] है कि उसकी धारणा मिथ्या होती है उसकी श्रद्धा मिथ्या होती [illegible] उसकी दृष्टि मिथ्या होती है और उसकी क्रिया मिथ्या होती है।

[illegible] न केवल स्वय ससार के सागर म डूबा रहता है किन्तु [illegible] जाता है। यदि कोई [illegible] है तो मिथ्यात्वी उस [illegible]

को संशयशील बना देता है। इस तरह यह अपने मिथ्यात्व को तो बढ़ाता ही है साथ ही साथ उस नाविक के जीवन में भी मिथ्यात्व का बीजारोपण करता है। जैसे पागल कहता है कि पागलपन का आनन्द तो पागल ही प्राप्त कर सकता है—बुद्धिमान नहीं वैसे ही मिथ्यात्वी के लिए मिथ्यात्व से बढ़कर और कोई आनन्ददायक तत्त्व नहीं होता।

मिथ्यात्वी की मात्र यही एक मान्यता हो जाती है कि येन-केन प्रकारेण खाओ पीओ मौज उड़ाओ। उसका जीवन भौतिक भूमिका से जुड़ जाता है। ऋण कृत्वा घृत पिवत् —ऋण करके घी पिओ की उक्ति उसमें चरितार्थ होती है। वह स्वार्थान्ध बन जाता है। उसे दूसरे से कोई मतलब नहीं है। वह मात्र स्वार्थ पूर्ति का धनी होता है। मैं देखता हूँ कि कौए को रात्रि में नहीं दिखता और उल्लू को दिन मे नहीं दिखता, किन्तु मिथ्यात्वी जीव उस जन्मान्ध की भांति है जिसे न रात्रि में दिखता है न दिन में। इसका आशय यह नहीं है कि मिथ्यात्वी चक्षु हीन होता है। उसके चक्षु तो होते हैं परन्तु यथार्थ दृष्टि एवं यथार्थ ज्ञान का उसमें अभाव होता है। इसलिए यथार्थता रहित चक्षुवान भी चक्षुहीन अन्धेवत् है।

इसलिए मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। देहगत एवं आत्मगत तत्त्वों को वह एकरूप मानता है। देह और आत्मा के भेदविज्ञान से वह गवाक्ष बना रहता है, अछूता होता है। उसका आत्म कल्याण के लिए किया गया प्रयास वास्तव में उसका देह कल्याण ही है। यह सर्व विदित है कि अमरत्व का सूत्र आत्मा है न कि देह। देह तो नश्वर है। माटी का खिलौना है। आत्मा के अस्तित्व से छुटकारा पा लेने के बाद वह राख की ढेरी है मिट्टी का ढगला है। किन्तु मिथ्यात्वी अपनी पूर्व निर्मित तथा निर्धारित मिथ्या धारणाओं के फलस्वरूप इस परम यथार्थ से अज्ञात और अज्ञेय बना रहता है।

यथार्थता का तट सम्यक्त्व का द्वीप मिथ्यात्व के पार है। प्रज्ञा की नौका एवं निर्मल दृष्टि की पतवारों के सहारे उस पार तक पहुँचा जा सकता है। यथार्थतः मिथ्यात्व के पार पहुँचने का यही सर्वोपरि साधन है। यदि कोई व्यक्ति मिथ्यात्व से उबरने के लिए प्रज्ञा की नौका एवं दृष्टि की पतवार उपयोग में नहीं लाता है तो वह मिथ्यात्व के पार भरत दूर तक नहीं जा सकता है। यदि कोई अतल सागर से मिथ्यात्व के खारा जल खाली करना चाहता है और उसके लिए प्रयास भी करता है तो यह बकवर श्रम होगा। इससे न तो उसकी कामना पूर्ण होगी और न ही उसकी कोशिश

सफल होगी। जिस प्रकार अंधियारे से मुक्ति पाने के लिए यदि कोई अंधियारे को हटाने का प्रयत्न करता है तो उसके सारे प्रयास व्यर्थ सिद्ध होंगे। हाँ! यदि ज्योतित दीये को प्राप्त करने का अथवा उसकी रोशनी फैलाने का प्रयत्न किया जाये तो अंधियारा अनायास दूर हो जाएगा।

आज तो जमाने की हवा कुछ ऐसी लग गई है कि लोग मिथ्यात्वी होते हैं पर अपने को सम्यक्त्वी कहते हैं। कीड़े की तरह कीचड़ में पड़े हैं, पर अपने को कमल सा निर्लिप्त बताते हैं। हम सोचें कि हमारे भीतर कैसा दीया जल रहा है हमारे भीतर कैसा बीज है मिथ्यात्व का या सम्यक्त्व का। प्राय कर लोग होते तो हैं मिथ्यात्वी मगर कहते हैं कि हम सम्यग्दर्शी हैं फिर आम कैसे खायेंगे यदि बबूल बोया है तो।

आपने देखा होगा पंडितों को। वे पण्डित लोग अपने को कहते हैं कि हम बड़े पण्डित हैं मगर वे अपनी अन्तरात्मा से ही पूछें कि क्या उनके पास प्रज्ञा है आचरित ज्ञान है? उनके पास ज्ञान है मगर वह ज्ञान अभी तक आचरण में नहीं आया। क्रिया शून्य ज्ञान उनको अनुशासित नहीं कर सकता। विद्या उन्हें अनुशासन नहीं दे सकती। और जो विद्या स्वयं को अनुशासित नहीं कर सकती वह विद्या भी मिथ्यात्व ग्रस्त है। ज्ञात सत्य का आचरण और आचरित सत्य का ज्ञान — दोनों की उपलब्धि में ही पण्डित की पण्डिताई है।

शिक्षा वह चम्मच है जो दूसरों को तो भोजन परोसता है पर स्वयं कहाँ खा पाता है। बच्चन दूसरों को तो कहते हैं कि मधुशाला जाओ, पर स्वयं उससे दूर रहना चाहता है। मैं बताता हूँ आपको बच्चन की एक रुबाई —

> स्वयं नहीं पीता औरों को किन्तु पिला देता हाला
> स्वयं नहीं छूता औरों को पर पकड़ा देता प्याला।
> पर उपदेश कुशल बहुतेरों से मैंने यह सीखा है
> स्वयं नहीं जाता औरों को पहुँचा देता मधुशाला।।

धीरता से ही अपने आपको अभिव्यक्त करते है। अनाचरित वाणी निस्तेज होती है। गधा चन्दन या सादा ढोकर भी उसकी खुशबू कहाँ से पाता है। मात्र उस भी भार ही समझता है। लड्डू खाने से पेट भरेगे लड्डू लड्डू कहने से नहीं। इसलिए हाथी के दांत या पोथी के वचन मिथ्यात्व की ही अभिव्यक्तियाँ है। अंधे पगु के न्याय की तरह कथनी करनी म सगम हो। कथनी की यमुना और करनी की गगा का सगम ही असली प्रयाग है। टन भरके भाषण की जगह कण भर का आचरण अधिक प्रभावशाली है।

मैंने सुना है एक पण्डित यात्रा म रवाना हुआ। उसने सोचा कि चलो मै महाराष्ट्र की यात्रा करके आ जाऊँ। महाराष्ट्र म पहुँचा। वह पूना म पहुँचा और सोचा कि पूना के किसी होटल म ठहरूँगा तो कम से कम एक सौ रुपया कमरे का एक दिन का किराया लगेगा भोजन का अलग लगेगा, दूसरा सारा खर्चा अलग लगेगा। अत क्यो न मैं अपने शिष्य के घर ही चला जाऊँ। उसे याद आया कि पूना मे मेरा एक शिष्य रहता है। पण्डित वही पहुँच गया। पण्डित ने सोचा कि यदि मै शिष्य के यहाँ जाऊँगा तो एक तो मेरा सौ रुपया बचेगा, खाने का अलग बचेगा सेवा मुफ्त मे मिल जायेगी। क्योकि शिष्य सेवक की तरह काम करेगा और शिष्य खुश भी होगा कि मेरे गुरुजी मेरे यहाँ आये।

शिष्य बहुत ही खुश हुआ कि देखो मेरे गुरुजी आये है। जिनसे मैंने शिक्षा पाई थी वे आये है। शिष्य ने उनका बड़ा स्वागत किया। घर म उनको अलग से कमरा दे दिया। सामान वगैरह सब रखवा दिया तो शिष्य ने पूछा पण्डितजी! स्नान करेंगे? व्यवस्था कर दूँ स्नान वगैरह की? पण्डित तो बनारसी-पण्डित थे। कहा भाई! जिसके जीवन म ज्ञान की गगा बहती हो उसको नहाने की क्या जरूरत है? देखो मेरे भीतर तो ज्ञान गगा बहती है तो फिर नहाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मै तो पवित्र हूँ ज्ञान गगा ने मुझे पवित्र कर दिया है। मैं तो सदा सर्वथा शुद्ध हूँ।

चेले ने सोचा कि गुरु तो बड़ा अक्कड़बाज है। स्नान और ज्ञान का कहाँ सम्बन्ध? ये दोनो अलग अलग है। मगर वे कहते हैं कि मेरे जीवन म तो ज्ञान की गगा बह रही है नहाने की जरूरत नहीं। शिष्य ने पत्नी से कहा कि सुनो आज तुम ऐसा भोजन बनाओ जिससे पण्डितजी को बहुत तेज प्यास लगे। पत्नी ने कहा ठीक है। उसने पूड़ी, दाल का हलुआ बड़ा आदि ऐसी चीज बनायी जिनको खाने के बाद बहुत प्यास लगे।

कहते हैं कि बनारसी पण्डित को एक लड्डू मिल जाय तो वह दस

कोस दूर चला जाय मो[illegible] [illegible] [illegible] दूर [illegible]। पण्डितजी
ने हलुआ पूड़ी बड़ा आदि डटकर खाया। पण्डितजी ने जब पूरा खा
लिया तो शिष्य ने कहा कि अब आराम कर लीजिए बहुत दूर से आये हैं।
लम्बी यात्रा करके आये हैं। पण्डित जी ने कहा कि बिल्कुल ठीक कहा
तूने। यह कह कर वे कमरे में सो गये। जैसे ही उनको नींद आने लगी
कि शिष्य ने थोड़ी खुराफात की और बाहर से दरवाजा बन्द कर दिया।
पण्डितजी को नींद आ गयी। एक घण्टे बाद पण्डितजी जगे। प्यास बहुत
जोर से लगी। अब वे कमरे में पानी खोजते हैं मगर कमरे में पानी की एक
बूँद भी नहीं। अब वे दरवाजा खटखटा रहे हैं। पण्डितजी प्यास के मारे
मर रहे हैं। उनका गला सूख रहा है। दरवाजा खटखटाना शुरू किया।
चेला आया बाहर से पूछा क्या बात है पण्डितजी। पण्डितजी ने कहा
बहुत जोर से प्यास लगी है जरा एक लोटा पानी दे दो। उस शिष्य ने
कहा – आप के पास तो ज्ञान की गंगा बह रही है। एक लोटा उसी में से
भर के पी लीजिए।

अब देखिए ज्ञान है मगर उस ज्ञान के द्वारा ही पण्डित ने दुःख को
उत्पन्न किया। चाहे ऐसे पण्डित हो या गृहस्थी, कोई भी हो, ऐसे
विद्यावाले अविद्यावान् है मिथ्यात्वी है। उनको वास्तव में इसका भी
अहंकार है। अपने ज्ञान का भी वे अहंकार करते हैं। इसीलिए वास्तव में
वे दुःख उत्पन्न करते हैं। व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मदमाते ज्ञान
पर भी अपरिग्रह की कैंची चलाए।

इसीलिए महावीर ने मिथ्यात्व को पहला गुणस्थान कहा था। चौदह
गुण स्थानों में मिथ्यात्व पहला गुणस्थान है। हालांकि बहुत से दार्शनिकों
को यह सन्देह हुआ कि महावीर एक तरफ तो कहते हैं गुणस्थान यानी
आत्मविकास की भूमिका और दूसरी तरफ कहते हैं मिथ्यात्वी। हालांकि
बहुत से दार्शनिक उस प्रश्न में उलझे और जो उलझे वे चूक गये। यह
बात तो बिल्कुल साफ है। साफ तो ऐसे है क्योंकि जीव रहता तो इसी
संसार में है। इस संसार से कोई अलग जीव तो रहता नहीं। इसलिए वह
जीव चाहे गलत रास्ते में जा रहा हो या सही। मगर यदि वह जाता है
यात्रा तो उसकी कहीं ही जायेगी। भले ही जाना है उसको कलकत्ता और
चला जा रहा है दिल्ली की ओर मगर है तो गमन की क्रिया। जाने का
काम तो हो रहा है। यह बात अलग है कि वह यात्रा गलत है। मगर
उसका हम यात्रा तो कहेंगे ही। इसीलिए मिथ्यात्व का भी गुण स्थान में

रया गया है।

मरी समग्न से मिथ्यात्व मात्र दृष्टिगम है। यह एक ऐसी गूढ़ दृष्टि की रचना करता है जो व्यक्ति की सारी गतिविधिया को अपने आगे ग उलगाये रखती है अपने सम्मोहन के वश पर। आपने कभी देखा है किसी सम्मोहित व्यक्ति को? आप जादू देखने के लिए किसी मदारी को देखने के लिए जाते हैं। वह क्या करता है ? आदमी को वस सम्मोहित कर लेता है। अपने प्रति आदमी को इस तरह से सम्मोहित कर लेता है कि यदि आप पुरुष है फिर भी स्त्री जैसा महसूस करने लगते हैं। इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि वह व्यक्ति को अपने प्रति सम्मोहित कर लेता है। वह आप को मच के ऊपर बुलाता है और कहता है कि बैठो कूकडू म जिस आसन मे महावीर स्वामी बैठे थे और परम ज्ञान पाया था। जादूगर कहता है कि कुक्डू आसन म बैठ जाओ और वह कुक्डू आसन मे बैठ जाता है। अब देखिए जादूगर किस तरह से सम्मोहन मे लाता है। जादूगर कहता है कि देखिए तुम गाय को दुहने के लिए बैठे हो देखो तुम्हारे सामने गाय खड़ी है उसके स्तना से तुम दूध निकालो। वह आदमी हाथ आगे बढ़ाता है और दूध निकालने लगता है। दुनिया तो यह देख रही है कि वह आदमी कितना मूर्ख है क्योकि सामने तो है कुर्सी। कुर्सी म से दूध निकाल रहा है। मगर जो आदमी सम्मोहित हो चुका है वह समझता है कि मेरे सामने गाय खड़ी है। उसम स दूध निकाल रहा हूँ। इसी को कहते है सम्मोहन। जैसे कोई पति और पत्नी है। यदि किसी पति की कुरूप पत्नी ह मगर उस कुरूप पत्नी स सम्मोहित हो चुका है तो वह उस कुरूप पत्नी से उतना ही प्रेम करता है जितना एक सुन्दर स्त्री से करना चाहिए।

मूल चीज सम्मोहन है। मिथ्यात्व और सम्मोहन दोनो एक ही चीज है। जैसे सम्मोहन व्यक्ति को एक दूसरे के प्रति आकर्षित कर लेता है गुरुत्वाकर्षित कर लेता है वैसे ही मिथ्यात्व अपने प्रति आकर्षित करता है सम्मोहित करता है। आप सम्मोहित हो चुके है धन के प्रति किसी मकान के प्रति किसी स्त्री के प्रति जैसा आपका सम्मोहन हुआ है आप उसके साथ वैसा ही बन गये। मकान निर्जीव है। यह मकान जो पत्थर स बना है फिर भी कहते ह कि यह मकान मेरा है। यह शरीर हाड मास आदि से बना है फिर भी यह कहते है कि यह शरीर मेरा है। यह मेरी बेटी है या मेरी बहन है अथवा यह मेरी स्त्री है। आदमी सम्मोहित हो

दो मुँहा मानव

चिन्तन व्यक्तित्व का सरित् प्रवाह है। उज्ज्वल चिन्तन व्यक्ति के उज्ज्वल व्यक्तित्व का प्रतिनिधि है। व्यक्तित्व को विराट बनाने के लिए चिन्तन की विराटता आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होता है। चूंकि प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है अत उसकी चिन्तन धारा भी स्वतत्र होती है। विश्व मे जितने मनुष्य है उतने ही प्रकार के उनके चिन्तन है। हर व्यक्ति का अपना स्वतत्र चिन्तन होता है। जब चिन्तन प्रौढ सशक्त एव परिपक्व बन जाता है तो उसीसे दर्शन पैदा होता है। दर्शन वास्तव मे सभ्य सस्कृत चिन्तन का परिणाम है। बौद्धिक क्षमता दर्शन की स्पर्धा मे काफी सहायक बनती है।

ससार मे बुद्धिजीवियो की बाढ़ आई हुई है। एक अनपढ व्यक्ति भी स्वय की बुद्धिमत्ता पर अहम् की भूमिका निभाने का प्रयास करता है और वह एक समझदार तथा विद्वान् व्यक्ति को भी चुनौती दे बैठता है। यही कारण है कि विश्व मे आग्रह और हठवाद की बहुत अधिक किलेबदी हुई है। चाहे कोई चिन्तक या दार्शनिक की योग्यता सवहन करने मे समर्थ है या नही, पर कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से इनको अलग नहीं करता। कवि और साहित्यकार तो इस क्षेत्र म काफी आगे है। जब भी किसी कवि या साहित्यकार के कृतित्व की समीक्षा की जाती है तो उसके दर्शन के गुब्बारे विशेषतया उडाए जाते हैं।

मैने भी कविताएँ लिखी है साहित्य सरजा है। पर कवि वास्तविकता को पेश करने मे अधिक सफल नहीं होता। वह अतिशयोक्ति किये बिना कविता को निष्प्राण मानेगा। वस्तुस्थिति को दुगुना चौगुना दसगुना बीसगुना बढ़ा चढ़ाकर कहना तो साहित्यवाले अलकार मानते है। कई बार तो ऐसा होता है कि कवि एक म सौ का गुना नहीं करते वरन शून्य का सौगुना बढ़ाते है। अरे जो चीज जैसी है उसे यदि उसी रूप म

ऋषि मुनिया का दर्शन मात्र बुद्धि की कसरत या मस्तिष्क की खुजलाहट नही है। उनका चिन्तन या दर्शन समार से विरत रहकर गुफाओ मे समाधिस्थ अवस्था मे हुआ अनुभवो का लेखा जोखा है। इसलिए उनके दर्शन को धर्म दर्शन कहना ज्यादा ठीक है। क्योकि धर्म जीवन से प्राप्त होता है और दर्शन प्रयत्न से। एक दर्शन तो अन्तर दृष्टि से सीधा देखा परखा गया है और दूसरा अनुमाना गया है। प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन के बीच विभाजन की यही लक्ष्मण रेखा है।

भारतीय दर्शन आदर्श की एकता से यथार्थ की अनेकता पर उतरते है और दूसरे दर्शन तल की विविधता से आरम्भ करके तर्कश शिखर की एकता की ओर उठते है। प्राच्य दर्शना/भारतीय दर्शना की शुरुआत ऋषि मुनियो से हुई है। उनकी बाते अनुभवमूलक है। तर्क की कसौटी पर उनकी कुछ बाते छोटी सी लग सकती है। वस्तुत वे तर्कवादी नही थे अपितु साधनासिद्ध अनुभववादी थे। इसका मतलब यह नही कि तर्क की दृष्टि से उनकी नीव कच्ची मिट्टी से जमी थी। उनके इरादे ऊँचे थे जमीन आलीशान थी। उनकी बातो के खम्बो को गिराने मे दर्शन के क्षेत्र मे कई जन्म खपाने पडेगे। मेरी समझ से तो उनकी बातो मे दिल और दिमाग चेतन और आचरण का सगम है। इसीलिए भारतीय दर्शना के प्रति मेरी आस्था है।

जो लोग पोथी के बैगन की उक्ति स्वय मे चरितार्थ करते है वे मेरी आस्था के पात्र नही है। जो व्यक्ति अपने दात खाने के और दिखाने के और रखते है उनके प्रति हमारा स्नेह कैसे हो सकता है। हमे मिलावटवाला सोना नही चाहिये। चौबीस कैरेट वाला बिल्कुल खरा सोना हो तो उसकी शुद्धता पर कभी सन्देह ही नही किया जा सकता। लोग उपदेश देते है और बदले मे दक्षिणा लेते है। यह तो वास्तव मे एक सौदा हो गया। बाजार से रुपये देकर सामान खरीदने जैसा हो गया। क्या धर्म कोई बेचनेवाली वस्तु है? जो अपने पेट के लिए धर्म का उपदेश देते है वे मानव आत्मा के शोषक है। जिनके पास सच्चाई की धुधली किरण भी नही उन्हे समाज के सामने बोलने का कोई अधिकार नही है। उनका बोलना अनधिकार है।

उवएसा दिज्जन्ति हत्थे नच्चाविऊण अन्नेसिं।
ज अप्पणा न कीरइ किमेस विक्काणुओ धम्मो?

धर्म कोई विक्रय सामग्री नही है। धर्म तो जीवन की धारना है।

तो दूसरा जन-जन के व्यक्तित्व को मोहता है, भरमाता है और अमरता की पायल ठनकाता है। इसलिए तो यह है कि जिस सत्य को जाना है, सोचा है, उसे जीवन में उतारना जरूरी है और जिस सत्य को जीवन में उतारा है, उसे जानना भी जरूरी है। ज्ञात सत्य का आचरण और आचरित सत्य का ज्ञान ही धर्म दर्शन की जड़ है।

बहुत से दार्शनिक और चिन्तक ऐसे होते हैं, जो शब्द-वीर होते हैं। वे बातों के बाँस चलाते हैं, तत्त्वचिन्ता की इमारती बनाते हैं, मगर उनमें वह माधुर्य और रस नहीं जागता, जो जीवन और मस्तिष्क के अभ्यागी सम्पत्ति में निखरता है। बीन के तारों को हर कोई छेड़ सकता है, पर संगीत का संसार वही जगा सकता है, संगीत के रस पर वन्य हिरणों को लुभा सकता है, जो तानसेन की योग्यता रखता है। इसलिए जिसके जीवन में उसके दर्शन की प्रस्तुति है, वही दर्शन सतत स्थायी बन सकता है। शेष तो कमल पत्र पर सजे ओस की बूँदवाली उम्र है।

यदि दर्शन व्यक्ति का व्यक्तित्व बन जाए, जीवन की अनुगूंज बन जाये, तो उस व्यक्ति की गणना महापुरुषों में हो जाये। अन्यथा कहने में क्या लगता है, असली करनी में है। उपदेशक मात्र बनने से व्यक्तित्व उपलब्धियों भरा नहीं होता। उपदेशक मिठाई बेचनेवाला व्यक्ति है। गाँव गाँव में वह अपने उपदेशों की रेवड़ियाँ बाँटता बेचता फिरता है।

मैं मुनि हूँ, पर मैं उपदेशक नहीं हूँ। हाँ, यदि कोई मुझे प्रवचनकार कहे, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। प्रवचन यानी अच्छे बोल। मेरे मस्तिष्क के रसोईघर में चिन्तन का जो भोजन तैयार होता है, उसे प्रवचन के रूप में आपको परोस देता हूँ। चूंकि मेरे सामने श्रोता है, अतः मैं वक्ता बन जाता हूँ। मैं जो बात कहता हूँ, वह मुँहरखी बात नहीं है। उन्हें मैं भीतर की शिला पर बहुत घिसता हूँ, हृत्तन्त्री पर अनेक बार गुंजाता हूँ। जो बात मुझे भा जाती है, कह देता हूँ। श्रोता को जो-जो बात सुहा जाती है, वह उनका ग्राहक बन जाता है। बाकी का कूड़ा कचरा समझकर वहीं छोड़ जाता है। करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान' के फार्मूले के मुताबिक मैं उस कचरे की फिर से सफाई करता हूँ। यदि सफाई के दौरान मुझे उसमें कुछ सार तत्त्व नहीं दिखता, तो मैं अपने उन विचारों को उठाकर रद्दी की टोकरी में फेंक देता हूँ।

वक्ता होते हुए भी मैं अपने सोच के प्रति हठ, आग्रह या जिद नहीं रखता। मैंने भगवान् की वाणी से यही सीखा है कि उपदेश की   मत

कोई अंगुली उठा लेता या उन्हे देखकर हाथ नहीं जोड़ता तो उसके हा
काट लिये जाते थे। वोटर तो चाहते है कि तीन साल या पाँच साल की
अवधि ज्यादा हो जाती है। यदि हर महीने वोट हो तो क्या कहना। हमारी
सारी जरूरतें पूरी हो जाय। बड़े नेता गाँव में आयेंगे तो गाँव का स्वर्णि
सूर्योदय हो जायेगा। नेता की एक सैर में ही गाँव की छवि उजली हो
जायगी।

जब देश का प्रधानमन्त्री या मुख्यमन्त्री किसी झोपड़ी में रहनेवाले
गरीब के द्वार पर स्वयं जाकर हाथ जोड़े हुए खड़ा हो तो भला किसे न
अच्छा लगेगा। यो द्वार द्वार भटकने से वोट तो मिल जायेंगे पर क्या गरीबी
और बेरोजगारी भी मिट जायगी? खुद की पाँचों अंगुलियाँ जब घी में डूबी
हैं तो उन्हें दूसरों की चिन्ता क्यों होगी। मेरे विचार से तो देश की छवि
को ऊँचा उठाने के लिए कर्णधारों का खरा सोना बनना जरूरी है।

मैं मानता हूँ [illegible] मुख में राम बगल में छुरी वाले व्यक्तित्व
बने। अब आप देखिये धूम्रपान को ही। यह एक जानलेवा लत है। कल एक
महिला कह रही थी कि आपने मेरे पति को धूम्रपान छुड़ाया बहुत अच्छा
किया। उनका छोड़ा धुआँ मुझे भी जबरदस्ती साँस में लेना पड़ता था।
धूम्रपान न करनेवालों का भी साफ सुथरी हवा पर अधिकार है।

आप किसी भी अखबार को उठाकर देखिये हर किसी में
सिगरेट के [illegible] के बड़े बड़े रंग बिरंगे विज्ञापन मिलेंगे। हर एक विज्ञापन
के [illegible] होती है सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।
अब [illegible] में बड़े बड़े [illegible] में सिगरेट पीने से मिलने वाले
[illegible] बताया जाता है वहीं वह स्वास्थ्य के लिए
[illegible] में [illegible] मुश्किल रहता है। सिर्फ
[illegible] है कि [illegible] एक और हमारी सरकार यह स्वीकार करती है
[illegible]

स्वाय जाते है और साठ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा की कमाई होती है।
कितने हैं ऐसे राजनेता जो सिगरेट स अछूत हो। हाँ महाराष्ट्र सरकार ने जरूर इसके विरोध मे कुछ कदम उठाए है।

अभी गत माह मे ही बम्बई म डाक्टरो का एक सम्मेलन हुआ जो मुख्यत धूम्रपान से होने वाले नुकसानो पर रोकथाम करने के सम्बन्ध म था। बात लम्बी चौड़ी हुई भाषण भाड़े गये। सभी के भाषण घिसे पिटे थे। सबके विचार भी अधमरे थे। होग भी क्योकि बोलनेवाले डाक्टर धूम्रपान के आदी थे। कइयो ने सिगरेट पान की बडे रसीले शब्दो मे निन्दा भी की। पर लोगो को तब मुँह की खानी पड़ी जब सम्मेलन समाप्त होने के बाद चाय-नास्ते के लिए सम्मेलन के अध्यक्ष को ढूँढा गया तो वे नदारद थे। आखिर छानबीन करने पर पाया गया कि वे किसी कमरे मे बैठे सिगरेट का धुआँ छोड रहे थे।

व्यक्ति कह बहुत सकता है लेकिन करना हर किसी के बलबूते की बात नही है। अद्यपि प्रत्येक जैन के लिए व्यसन मुक्त होना जैनत्व की पहली पहचान है। पर पचास फीसदी जैन लोग धूम्रपान के व्यसन स जकडे है। एक स्वस्थ समाज के संगठन के लिए जैन समाज को आगे आना चाहिये। उसे दिल जलाने के खिलाफ धूम्रपान निषेधक अभियान छेड़ना चाहिय। जहाँ सिगरट निर्माताओ के एक दूजे की खुशी के लिए जैसे विज्ञापन लगे है वहीं उसके पास आप अपना विज्ञापन लगा दीजिये कैंसर और सिगरेट – एक दूजे के लिए' अथवा साफ-सुथरा रह धूम्रपान न कर।

आए दिन अडे खाने के लिए विज्ञापन आते है। सडे हो या गडे रोज खाओ अडे के नारो की छापेबाजी होती है वही हमारा अहिंसक समाज चुप्पी साधे क्यो बैठा है? धार्मिक संस्कारो को ये विज्ञापन लगातार उखाडते चले जा रहे है और हम उस ओर कुछ ध्यान भी नहीं देते। क्या भारत के किसी जैन समाज ने अडे के विज्ञापनो के विरोध म किसी तरह का विज्ञापन निकाला?

अब यह कितनी हँसी की बात है कि एक ओर हमारी सरकार अहिंसक समाज को खुश करने के लिए पशु कल्याण बोर्ड जैसी संस्थाओ की स्थापना करती है शिकार करने वालो के लिए दण्ड सहिता रचती है वहीं वह बूचडखाने चलाती है लाखो लाखो भोले प्राणियो की गर्दन पर छुरियाँ चलवाकर उनकी बद्दुआएँ लेती है। सरकार ने तो दोहरी नीति अपना रखी है। अहिंसात्मक गाय बछडे को अपना प्रतीक बताती है और हजारो गायो

[illegible] आदमी का [illegible]
[illegible] समस्या [illegible]
[illegible] हो। [illegible]
यदि और कोई [illegible] मनमाना है। और
यदि [illegible] स्थिति पर [illegible]
हम उनसे [illegible] है। [illegible] होता है। आखिर हम सब
भी तो इसी देश के रहते है।

जब हम अपनी ओर अपने सम्पूर्ण परिवेश की ईमानदारी से कसौटी कसेंगे तो आगे और दो मुँह सामने आएंगे। एक मुँह दिखाऊ होगा और दूसरा वास्तविक होगा। दिखाऊ मुँह का वास्तविक मुँह का मुखौटा बना देंगे हम और वास्तविकता पर अपनी कालिख को इस दिखाऊ मुँह म ढक देंगे। करोड़ो की काला बाजारी करना और लाख दो लाख का दान करके समाज की बोलती बन्द कर देगे। सुबह तो साधु सन्तो के पास जाकर त्याग अहिंसा और उपकार की बात उधार लायेंगे और रात होते ही स्वार्थों की तलवारो से त्याग आदि बातो की गरदन उतार लेते है।

जो नेता लोग शांति के कपोत उड़ाते है निरस्त्रीकरण के डके बजाते हैं मानवता की दुहाई देते है पता है वे इसकी ओट म कितने बड़े बड़े शस्त्रो के अम्बार लगाते है? जिस दिन कोई हिटलर उभर जायेगा ससार बेमौत मारा जायेगा। वैसे भी हम सब एक दूसरे का घर दबोचने म लगे है। भाईचारा आत्मीयता प्रेम और करुणा की बाते आज कथनी ही बनकर रह गई है। करनी की दृष्टि से तो लोग इनके गले घोट रहे हैं।

दो वर्ष पूर्व की बात है। हम मद्रास गये थे। वहाँ एक महिला कह रही थी कि तीन माह पूर्व मेरे पति दुर्घटना म मारे गये। मेरा भाई दौड़ता हाँफता मेरे पास आया। मै खाना पका रही थी। उसने मुझे कहा बहिन ! चौराहे पर जीजाजी एव भानेज दोनो ट्रक के नीचे आकर मर गये। तुम्हे उनका अंतिम मुँह देखना हो तो दौड़कर चली जा। फिर तो पुलिस ले जायगी। भाई की बात सुनकर वह महिला स्तब्ध सी रह गयी। वह दौड़ी-दौड़ी चौराहे पर गई। पीछे से उसके भाई ने बहिन के घर मे पड़ा सोना जेवर रुपया एक सूटकेस म डाला और मद्रास भाग गया। उस महिला के चार पाँच बच्चे। अब आप सोचिये कि माँ-जाये भाई का बहिन के साथ ऐसा व्यवहार होगा तो बहिन की कितनी दयनीय अवस्था बनेगी। फिर मैंने वहा के समाज वालो से कहा और उन्होने उसके एव उसके बच्चो

[illegible] है। [illegible]
पर [illegible] है। [illegible]
[illegible] ही सत्य [illegible]
परमात्मा [illegible]।

क्या आप तैयार [illegible] की राह पर [illegible] के लिए? सत्य कोई विज्ञापन की [illegible] शिखर म [illegible] की [illegible] है। इसकी सर्वोच्चता के पथ [illegible] के लिए हमें भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है। आप सब सत्य के [illegible] अपना [illegible] और साहस को बटोरिये। आपके मन मन्दिर म परम सत्य और परमात्मा का दीया जरूर जगमगाएगा।

सत्य की राह पर [illegible] के लिए साहस और सकल्प चाहिये। और ये तब तक नहीं होग जब तक व्यक्ति नि सशय नहीं होगा। सशय सकल्प की रीढ़ को हथोड़ मारता है। टूटते बिखरते सकल्प के शीशे म सत्य की छवि भी टूटी बिखरी लगती है। सत्य है सशय के पार।

मनुष्य जब दुविधा म फँसा रहता है तब यह समझिये कि वह सशय मे है। मुहावरे की भाषा मे मै इसे दो नावो पर चढ़ना कह सकता हूँ। सशय ज्ञान का ही एक प्रकार है। ज्ञान के तीन प्रकार हो सकते हैं। प्रमा, भ्रम और सशय। जो चीज जैसी है उसका उसी रूप मे ज्ञान करना प्रमा है। यह प्रमा ही सत्य है। जो चीज वस्तुत जैसी नहीं है उसे दूसरे रूप मे समझना भ्रम है। जैसे रस्सी को साँप समझ लेना यही भ्रम है। और जो चीज जैसी है उसे उस रूप मे और दूसरे रूप मे भी समझना सशय है।

सशय अधियारा है सत्य प्रकाश स्वरूप है। ससार अधा अभिशप्त है। अत वह अधियारे की पूजा ज्यादा करता है। जो उल्लू है वे प्रकाश की फूटी किरण को बाण समझते है। पर जो वास्तव मे अन्धे है उनके लिए तो सत्य की किरण रामबाण है, अधेपन को दूर करने के लिए।

ससार के अधियारे को दूर भगाने के प्रयास भी होते है, पर उसे भगाना मुश्किल है। अधियारे पर तलवारे चलाओ हटर मारो बन्दुके दागो पर अधियारा या नहीं भगता। अधियारे को प्रभाव हीन करने के लिए ससार म एक ही साधन है और वह है प्रकाश। सशय के अधियारे को तब तक नहीं खदेड़ा जा सकता जब तक सत्य का प्रकाश हाथ न लगेगा। अधियारा आँखो को ठहक देता है। रात अधियारे की माँ है। इसलिए रात आँखो की रोशनी को ठगाई पिलाती है। आँखो की रोशनी को कायम रखने के लिए

के वल्मतृण को छोलते करोमासे सगय व दीमक को वाहर निकाला। महावीर के अन्तर घर म विरज का मगविनार जन्मा जिसकारियां भरता था। इसलिए उन्हा गौतम के मन मस्तिष्क को भाँप लिया। गौतम को शका थी कि आत्मा है या नहीं। गौतम के जीवन मे महावीर पहले पुरुष थे जिन्होने बिना पूछे-कहे उनकी शका को उजागर किया। गौतम स्तब्ध रह गये। महावीर ने कहा गौतम! तुम उस पर शका ग्रस्त हो जिसके अस्तित्व पर शका करके आगे बढ़ना असम्भव है। और किसी के अस्तित्व के प्रति सन्देह किया जा सकता है, पर सन्देह म सन्देह करना तो सम्भव नहीं है। सन्देह का अस्तित्व सन्देही से अलग नहीं है। सन्देह करना विचार करना है और बिना विचारक के विचार नहीं हो सकता। म विचार करता हूँ अत मै हूँ। तुम विचार करते हो अत तुम हो। आत्मा का अस्तित्व तो स्वयसिद्ध है। तुम्हारे जैसा सचेतन प्राणी ही तो यह सोच सकता है कि मै ठूंठ हूँ या पुरुष। आत्मा के अलावा सशय करनेवाला कोई नहीं है गौतम! कोई नहीं है। आत्मा ही आत्मा के बारे म सशय कर रहा है। जो चिन्तन कर रहा है, वह स्वय ही आत्मा है। सशय के लिए किसी तत्त्व की जरूरत है जो उसका आधार हो। बिना अधिष्ठान के ज्ञान नहीं जन्मता बिना व्यक्ति के व्यक्तित्व नहीं बनता। गौतम यदि सशयी ही नहीं है तो आत्मा है या नहीं है यह सशय ही कैसे उत्पन्न होगा? हाथ म कगन है तो आरसी क्या दिखाऊं? आत्मा है। तुम भी एक आत्मा हो और इसी जन्म मे मुक्त भी होनेवाली हो।

महावीर ने गौतम के हर सशय का समाधान किया। गौतम जसे ही सशय मुक्त बने, उन्होन सत्य को पहिचान लिया। द्विजोत्तम होते हुए भी क्षत्रिय कुल म जन्मे महावीर के चरण चूम लिये और न्यौछावर कर दिया अपने जीवन के अर्घ्य को।

स्वामी विवेकानन्द को स्वामी बनाने म भी सशय का हाथ रहा है। घटना उस समय की है जब वे नरेन्द्र के रूप म थे। सशय की दृष्टि से गौतम और विवेकानन्द दोनो को भाई भाई समझिये। विवेकानन्द यानी नरेन्द्र को ईश्वर के अस्तित्व के प्रति सशय था। नरेन्द्र ने अनेक ऋषि मुनियो गुरुओ से ईश्वर के बारे मे पूछा। वह रवीन्द्रनाथ टैगोर के दादा के पास भी गया। टैगोर के दादा जाने माने महर्षि थे।

नरेन्द्र उनकी किश्ती मे आधी रात म पहुँचा। टैगोर के दादा ध्यानमग्न थे। नरेन्द्र ने उन्हे झकझोरा और पूछा बोलिए ईश्वर है? महर्षि

तक पहुँच जाएगा। जो सत्य को जाने बूझे विना सीधे श्रद्धा से जुड़कर यात्रा शुरू करेगा, वह या तो आगे बढ़ेगा ही नही या फिर उसकी श्रद्धा खोखली हो जाएगी और वह सशय के धरातल मे गिर पडेगा।

हालाकि अनेक चिन्तक मनीषी सशय की सर्वथा अवहेलना करते है पर मेरी समझ से जिस ज्ञान के उपजने से पहले सशय अपना अस्तित्व ले लेता है तो ज्ञान के अभ्युदय मे सहायता मिलती है। पर ज्ञान तभी जनमता है, जब सशय के साथ जिज्ञासा भी हो। ज्ञान की बाती को उक्साने के लिए सत्य का बोध झकृत करने के लिए सशय से यात्रा शुरू होती है पर समाप्त नही होती । समाप्त तो परम श्रद्धा पर होती है।

अनेक चिन्तक लोग सशय को उसके अन्तिम छोर तक पूरी तरह समझ नही पाए। पथ पर तो दोनो ही चल रहे हैं सत्यात्मा भी और सशयात्मा भी। एक का मार्ग प्रशस्त और दूसरे का मार्ग दिग्भ्रमित है। सशयात्मा भी सत्य का खोजी हो सकता है। लोगों ने बुद्ध को सशयवादी/सदेहवादी मान लिया। वस्तुत यह समझने मे भूल हुई है। जैसे जैन धर्म मिथ्यात्व को गुणस्थान कहता है वैसे ही बुद्ध ने सशय को ज्ञान और धर्म मे प्रोत्साहन दिया।

यदि सशय नही होगा तो जिज्ञासा ही नही जन्मेगी। सोना खरा है कि खोटा यह सशय होगा, तभी तो जिज्ञासा होगी सोने को कसौटी पर कसने की। जब जिज्ञासा होगी, तभी तो हम गुरु की तलाश करेगे, विशेषज्ञ से मार्गदर्शन पाएँगे।

पर एक बात ध्यान रखियेगा कि सशय मे ही पड़े रहना खतरनाक है। सशय से उबरने की ईमानदारी से चेष्टा होगी, तभी सशय सत्य से साक्षात्कार करवाने मे सहायक होगा ज्ञान की सीढ़ियो पर चढ़ाएगा। यदि हम सशय से उबरेगे नही तो सशय हमे भीतर ही भीतर खोखला करता जाएगा। जैसे दीमक पेड़ को भीतर ही भीतर खोखला कर डालती है वैसी ही स्थिति हमारी सशय मे हो जाएगी।

इस स्थिति मे हमारी स्थिति उस नाविक की तरह हो जाएगी जो स्वय अकेला पर नावें दो हैं। उसकी दशा शराब पीकर सड़क पर अशिष्टता करने वाले आदमी की हो जाएगी। सशय उसकी जागृति और होश की आँखो पर पट्टी बाँध देगा। सशय की नौका छोड़ने के बाद ही सत्य के तट पर कदम रखा जा सकता है। उस पार पहुँचने के लिए नौका सहयोगी है। सशय को नौका समझ लीजिये। तट पर विहार तभी होगा जब नौका को

जलती रहे मशाल

विश्व व्यक्तित्व तरगा का सागर है। इसम भिन्न भिन्न रूप वाले व्यक्ति हैं। एक रूप के दो व्यक्ति नही होते हैं। यद्यपि करोडो लोगो की *आँखे नाक, मुँह, कान, हाथ पैर आदि सब समान है।* पर *समान* होते हुए भी हमशक्ल का कोई भी नही है। कुछ-न-कुछ वदलाव जरूर मिल जायेगा। कभी-कभी जुडवे लोगो मे थोड़ी एकरूपता नजर आती है फिर भी गौर से देखने पर दोनो मे भेद स्पष्ट हो जाता है। गिनेश बुक आफ रिकार्डस म जुड़वे बच्चो का जो विश्व रिकार्ड आँका गया है वह है एक साथ एक माँ के पेट से छह बच्चो का जनमना। गहराई से देखते है तो छह-के छह बच्चो मे भेद की रेखाएँ शीशे की तरह साफ-साफ झलकती दिखाई देती हैं। जव रूप की यह वात तो वाणी और कर्म मे तो और ज्यादा भिन्नता होगी। इतनी भिन्नता होगी, मानो वीच मे लक्ष्मण रेखाएँ खीची हो। मुर्गे की कुकडु-कू को सुनकर आप यह पहचान नही सकते कि यह किस मुर्गे की आवाज है। किसी डाल पर दो कोयले बैठी हो और उनमे एक कूक उठे तो क्या आप पहचान लेंगे कि यह किस कोयल की आवाज है? लेकिन व्यक्ति इसका अपवाद है। प्रकृति ने यह विकल्प वनाया है। जव रिकार्ड वजता है, तो आप कह उठते है यह तो लता की आवाज है कि मुकेश या किशोर के बोल है। आवाज तो आवाज है। पैर की ध्वनि सुनते ही आप समझ जाते हैं कि यह अमुक आदमी है। दरवाजे की खटखटाहट सुनकर भी आप पहचान जाते हैं कि कौन खटखटा रहा है।

मनुष्य के रूप और गुण धर्म मे बुनियादी फर्क हैं। फलस्वरूप व्यक्ति का व्यक्तित्व भी विशेषता लिये होता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होता है। मनुष्य का व्यक्तित्व स्थायी नही होता। प्रयास से उसमे विकास और ह्रास के ज्वारभाटे उभरते रहते हैं। व्यक्ति प्रतिक्षण विगडता और बनता है। हर क्षण वह मरता है और जीता है। व्यक्ति के विनाश होने

के बाद भी व्यक्तित्व का विनाश नही होता। व्यक्ति तो पानी का बुलबुला है पर व्यक्तित्व सागर की लहरो की तरह अनन्तता को, अमरता को अपने आँचल म समेटे रहता है।

व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए बहुत कुछ [illegible] देनी पडती है। व्यक्तित्व निर्माण का कार्य मनुष्य के लिए अतिशय टेढ़ी खीर है। प्रकृति ने तो मनुष्य को छोडकर दूसरे प्राणियो को जैसा जिसे चाहा वैसा व्यक्तित्व दे दिया। शेर को हिंसक बना दिया, गाय को शाकाहारी बना दिया। मगर मनुष्य को कुछ नही बनाया। उसने उसे यह छोड दिया कि जैसा तुम्हे बनना पसन्द हो, स्वय को वैसा ही बना लो।

एक चूहे के बच्चे को नदी की धारा म डाल दीजिये या कुत्ते के [illegible] तालाब म फेंक दीजिये तो वह अपने आप तैरकर बाहर निकल [illegible] उसे किसीने तैरना नही सिखाया। पर मनुष्य के बच्चे की बात तो छोड दीजिये नौजवानो को भी यदि तैरना न सिखाया जाये तो वह [illegible] धार न गिरने से डूबेगा ही उबरेगा नही। जो लोग तैराक नही है [illegible] पानी देखते ही डर लगेगा। कोई पानी म धक्का भी दे दे तो उसे [illegible] याद आ जाती है।

मुझे याद है कि एक नौजवान पलग पर लेटे लेटे हाथ पैर मार [illegible] था। जब किसी ने पूछा कि भैया! यह क्या कर रहे हो? तो उसने [illegible] यार! तैराकी सीख रहा हूँ। पूछनेवाले ने फिर पूछा कि यही बात है तो नदी किनारे क्यो नही चले जाते? घर मे बिस्तर पर हाथ-पैर [illegible] तैराकी सीखोगे? क्या आप जानते है कि उसने क्या उत्तर दिया। उसने [illegible] कि [illegible] मै नदी किनारे जाने से डरता हूँ। कही डूब गया तो!

सच पूछिये तो उसका यह उत्तर मनुष्य की प्रकृति का ही [illegible] करता है। प्रकृति ने मनुष्य को बुद्धि देकर उसके सारे गुण [illegible] है। उस अपनी बुद्धि से ही अच्छाई और बुराई की बनावट करनी [illegible] प्रकृति [illegible] मात्र देती है [illegible] करती है।

हर [illegible] की तीन अवस्थाएँ होती है — प्रकृति विकृति और [illegible] [illegible] को [illegible] बाजार म वह [illegible] म [illegible] है [illegible] है। यह अवस्था उसे प्रकृति से [illegible] है। [illegible] घर [illegible] है। [illegible] [illegible] हो जाता है [illegible] [illegible] उसकी [illegible] है। [illegible]

को साने के लिए मनुष्य को श्रम करना पड़ता है। थोड़ा सा भी ध्यान डिग जाये, तो चावल जल सकता है या अधिक गलकर अपना अस्तित्व भी लुटा देता है। इस तरह उसमें अनेक विकृतियाँ आ सकती हैं। वस्तु म विकृतिया के आने के अनेक प्रवेश द्वार है। वह कीड़ा का शिकार हो सकता है सड़ सकता है गल सकता है जल सकता है और मिट्टी भी बन सकता है। मिट्टी के ढेले बड़े हत्यारे है। वे सबको निगलने के लिए सदा मुँह खोले रहते हैं।

मनुष्य भी इन तीनो दायरो से बाहर नही है। कभी प्रकृति तो कभी विकृति, तो कभी-कभी सस्कृति के उतरते चढते सोपानो पर अपने चरण रखता है। मनुष्य स्वभाव से ही विकृति प्रेमी होता है। उसे गन्दी बाता और बुरे कर्मों मे बड़ा मजा आता है। अच्छे शब्द और अच्छे कर्म उसे सीखने पड़ते है। सीखते समय उसका मन ऊबता है, उचटता है भागता है। बड़ी देख रेख और बड़े श्रम के बाद अच्छाइयाँ उसके व्यक्तित्व म प्रतिष्ठित होती हैं। सभी चाहते हैं कि समाज मे हम अच्छे कहलाय सब हमारा सम्मान करे सभी हमे सत्यवादी हरिश्चन्द्र मानें। किन्तु ऐसा होता नही है। अच्छा बनना या अच्छा कहलाना बात की बात मे नही होता। समाज इतना बुद्धु नहीं है। समाज तो जिसको जिस रूप मे देखता है उसका उसी रूप म मूल्याकन करता है। अच्छे बनने के लिए हम अपने विषपायी व्यक्तित्व को तलाक देना होगा और अमृतवाही व्यक्तित्व को अपना जीवन साथी बनाना होगा। जलानी होगी हमे अपने व्यक्तित्व की ज्योतिर्मय मशाल को जिसकी आभा म ही हम अपने पूर्व सकल्पित स्वरूप को पा सकते है।

व्यक्ति एक मशाल है। उस मशाल की आग ही व्यक्तित्व है। यदि आग बुझ गई तो मशाल एक लकड़ी का डडा मात्र रह जाएगी। मशाल की उपयोगिता उसकी आग और रोशनी के कारण ही है। व्यक्ति की ज्योतिर्मयता भी उसके व्यक्तित्व पर ही टिकी है। बिना व्यक्तित्व का व्यक्ति निष्प्राण है निस्तेज है चलता फिरता शव है।

व्यक्तित्व वैयक्तिक जीवन का एक आदर्श है। वह डींग हाकना नही है सौन्दय का प्रदर्शन नही है वह तो यथार्थ की जीवन म झकृति है। महान् व्यक्ति वे ही माने जाते है जो महान् व्यक्तित्व के स्वामी होते है। व्यक्ति के कृतित्व की समीक्षा भी उसके व्यक्तित्व के आईने से ही होती है। ससार किसी व्यक्ति का आदर भी देता [illegible] व्यक्तित्व के कारण ही देता है। उसके [illegible] व्यक्ति नही [illegible] व्यक्तित्व मुख्य

तक पहुँच सके। जीवन इतना बोझिल बनता जा रहा है कि दबदबा और त्राहि त्राहि महसूस होती है। व्यक्तित्व की आभा धुंधली होती जा रही है। जैसे राम और महावीर ने अपने व्यक्तित्व को सजाया सँवारा निखारा वैसे ही हमारे भी कदम बढ़ाएँ। उन्होंने अपने व्यक्तित्व की मशाल से जैसे जनमानस को उजला किया वैसे ही हम भी करें। जहर का पान करते-करते तो कई जन्म बीत गये अब पीना है अमृत को, अमरत्व को ज्योतिर्मयता को। हम सबसे फार्मूले को। यदि हम अपने व्यक्तित्व के तरुवर का सिंचन नहीं करेंगे, तो वह ठूँठ बन जायेगा, अस्थि-कंकाल मात्र रह जायेगा। मनुष्य को अपने व्यक्तित्व का विकास करना पड़ता है। उसका विकास अपने-आप नहीं होता जैसा घास फूस का होता है। प्रकृति और मनुष्य में यही बुनियादी भेद है। प्रकृति का विकास होता है और मनुष्य को अपना विकास करना पड़ता है। डार्विन के सिद्धान्त मनुष्य पर कभी लागू नहीं हो सकते। प्रकृति का जो विकास होता है वह स्वाभावतया हो जाता है। मनुष्य का जो विकास होता है उसमें पुरुषार्थ के स्वर सुनाई देते हैं। इसलिए मनुष्य द्वारा जो होता है वह विकास नहीं वरन क्रान्ति है। हमें करनी है जीवन के रग रग में क्रान्ति महाक्रान्ति।

जो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को भारमुक्त और स्वस्थ करना चाहता है। उसे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए कुछ करना होगा। करने के लिए जोश जरूरी है मगर सोडावाटरी उफान भरा जोश काम नहीं देगा। समुद्र की लहरों की तरह निरन्तर जोश रहेगा तभी व्यक्तित्व विकास हो सकेगा।

हम सब व्यक्ति हैं। व्यक्तित्व हमारी चाँदनी है। हमें अपने व्यक्तित्व के विकास एवं स्वातन्त्र्य में किसी तरह का न तो शक रहना चाहिये और न किसी तरह का डर। निःसंशयशीलता और निर्भयता व्यक्तित्व विकास की पहली सीढ़ी है। व्यक्तित्व विकास के लिए व्यक्ति को निरन्तर कर्मयोगी बनना पड़ेगा। उसका काम कर्म करना है, उसके फल की आशा सँजोए रहना नहीं है। स्वार्थ एवं चाह की चाय की लत छोड़ने से ही व्यक्तित्व में लोक-कल्याणी स्रोत उभरेंगे। व्यक्तित्व के विकास के लिए हमें न तो अपनी डींगे हाँकनी चाहिये और न ही अपनी भलाई करने वाले के साथ बुराई करनी चाहिये। यदि स्वयं से कोई अपराध हो जाये, या खुद की कोई कमी हो तो उसे दूसरों के समक्ष रख दें किन्तु औरों की बुराइयों का ढिंढोरा न पीटें। जो व्यक्ति दूसरों पर एक अंगुली दिखाता है तो उसकी स्वयं की ओर तीन अंगुलियाँ आएँगी। दूसरों के दोष-दर्शन से अपने व्यक्तित्व को

होते है, मूर्खता के गुलाम होते है कि वे गोबर के गणेश बने रह जाते है। गोबर गणेश यानी जड बुद्धि महामूर्ख। ऐसे लोग अपने व्यक्तित्व के विकास के बारे मे पहल नही करते।

बहुत से व्यक्ति ऐसे होते है जो अपने व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने के लिए उसे एवरेस्ट तक चढ़ाने के लिए मेहनत कई बार करते हैं पर उन्हे सफलता नही मिल पाती है। यह रास्ता तो सचमुच काई भरा है फिसलन भरा है।

व्यक्तित्व विकास के यात्री प्राय ढुलमुल यकीन वाले होते है। वे व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए कदम तो मजिल की ओर बढ़ाते है पर उन्हे मजिल के प्रति शक रहता है। इसलिए वे वापस तीसरी सीढ़ी से नीचे लौट जाते है।

जबकि अपने व्यक्तित्व को सही मायने म व्यक्तित्व का रूप तभी दिया जा सकता है जब व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की उज्ज्वलता के प्रति लगनशील होगा। व्यक्तित्व के विकास की भूमिका पर आरोहण करने के लिए यह चौथा दर्जा है। ऐसे लोग कुछ करते धरते दिखाई नहीं देते वे मात्र अपने अन्तर्-व्यक्तित्व के पत्थर को ठोकते पीटते रहते हैं। उसे ईश्वरीय मूर्ति बनाने की आशाओ को सजोए रहते है।

पर मात्र लगनशील होने से ही कुछ नही होगा। उसे कर्तव्यशील भी बनना पड़ेगा। व्यक्तित्व विकास की पाँचवी सीढ़ी पर पैर रखते ही व्यक्ति कर्मयोगी बन जाता है। कर्त्तव्यशील और कर्मयोगी हो जाने से उसे पूर्व की कक्षाएँ कीचड सनी लगती हैं। वह जान जाता है जब मै पूर्व कक्षाओ मे था तो खारा जल पीता था। अब मुझे मीठा जल मिल रहा है तो खारे जल का सेवन करना बेवकूफी नहीं तो और क्या है? व्यक्तित्व की इस पाँचवी कक्षा मे पढ़नेवाला आदमी स्वय को तो सस्कृत बनाने मे लगा ही रहता है। दूसरो को आगे बढ़ाने और सच्चाई को कायम करने म भी वह अपनी शक्तियो को समायोजित कर लेता है। उसके कदम उड़ान भरने लगते हैं महकते बदरी-वन की ओर।

आगे उसकी यात्रा तो होती है पर यात्रा करते-करते परिश्रान्त भी तो हो जाता है। मजिले अपनी जगह रहती है रास्ते अपनी जगह रहते हैं अगर कदम ही साथ न देगे तो मुसाफिर बेचारा क्या करेगा? इसलिए विश्राम के लिए इस छट्ठे मील के पत्थर के पास एक विश्राम गृह है आरामगाह है। यहाँ रुककर आदमी थोडा दम भरता है चैन की साँस लेता

है पर यहाँ रहकर आदमी पूरी तरह रहता नहीं है। वह आगे की यात्रा के लिए सामग्री सँजोता समेटता है । विश्राम गृह तो मात्र रात बिताने का आरामगाह है।

सातवीं कक्षा यानी सूर्योदय । प्रभातकालीन सात बजे के टकोरे। इस व्यक्ति स्वयं को पूर्ण तन्दुरुस्त समझता है। अप्रमत्त वेग से उसके कदम आगे से आगे बढ़ते है। वह भारण्ड पक्षी की तरह जागरूक रहता है । उनके व्यक्तित्व को प्रगति के पथ पर आगे से आगे बढ़ाने के लिए उसके कदम बेमिसाल हो जाते है। उसका कृतित्व कमाल का बन जाता है। इस दर्जे में पहुँचने वाले लोगो का दर्जा भी काफी ऊँचा होता है । वे फिर सही अर्थ मे वी आई पी हो जाते है। उन्हे खास शब्दो मे ' वेरी इम्पोर्टेन्ट पर्सन' कह सकते है। इस दशा म व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली हो जाता है कि उसकी रग रग से उज्ज्वलता की किरणे फूटने लगती है। जैसे सूर्य की किरणो से फूल खिल जाते है वैसे ही उसके सम्पर्क से दुनिया की मुरझाई कलियाँ किलकारियाँ मारने लगती हैं। उसके पास बैठने मात्र से ही व्यक्ति के मन की वीणा संगीत झंकृत करने के लिए मचलने लगती है । यह सोपान वास्तव मे व्यक्तित्व के परिवेश मे एक महान् क्रान्ति है ।

अब तक हमने सात सोपानो के संगमरमरी सौंदर्य का रसास्वादन किया। अब हम चढ़ेंगे स्वर्णिम हिमाच्छादित बुद्धत्व की ओर व्यक्तित्व के चरम लक्ष्य की ओर। अब तक की यात्रा से व्यक्तित्व की आभा आठवें दर्जे से गुजरने से ही सुपरित होती है। व्यक्ति को यहाँ आन्तरिक शक्तियों का पता लगने लगता है । उसका चेहरा मुरझाया हुआ नही होता है। उसके चेहरे पर हमेशा राग सी मुस्कान रहती है। कोई उन्हे तकलीफ भी दे दे पेड़ पर औंधे मुँह भी लटका दे, तो भी उन पर असर नही होता। उनका व्यक्तित्व आत्मदर्शी बन जाता है ।

आत्मदर्शी जब समदर्शी बन जाये, तो उसके व्यक्तित्व मे चार चाँद लग जाते हैं। नौवें मंच मे अहम् संघर्ष नही रहता। वे बाहुबली की तरह मन म रहने वाली अहंकार की बेड़िया को पहचान लेते है। व्यक्ति समदर्शी का व्यक्तित्व तभी पा सकता है जब आदमी अहंकार के मदमाते हाथी से नीचे उतरेगा। अहं के हाथी पर चढ़े चढ़े क्या व्यक्तित्व मे पूर्णता आ सकती है?

बाहुबली ने संयम लिया घोर तपस्या मे लीन हो गये। पर घोर तपस्या करने मात्र से व्यक्तित्व पर आनेवाली धुंधलाहट समाप्त नही हो सकी। व्यक्तित्व पूर्णता के लिए तभी सफल बन पाता है, जब हम

व्यक्तित्व विकास की इस नौवी कक्षा मे अध्ययन करता है। समदर्शी बनकर व्यक्तित्व को निखारता है ।

बाहुबली का व्यक्तित्व पूर्णता कैसे पाता मन मे अहम् और कुठा की ग्रन्थियाँ जो अटकी थी। बाहुबली की बहिने ब्राह्मी और सुन्दरी उनके पास जाती हैं। वे बोली भाई! हाथी से नीचे उतरो अपने पैरो पर खड़े होओ।

बाहुबली बहिनो की आवाज सुनकर चौक गये। सोचा अरे! मै और हाथी पर चढ़ा हुआ? उनके व्यक्तित्व की नौका को गहरा धक्का लगा। उन्हाने स्वय को अहकार के मदमाते हाथी पर बैठा पाया। जैसे ही समदर्शिता उभरी, थोड़ी ही देर मे उन्होने स्वय के व्यक्तित्व को सम्पूर्ण पाया।

दसवे घर का जो लोग दरवाजा खटखटाते हैं उसमे प्रवेश कर लेते हैं, ससार उस ओर उमड़ता है। इस गृह त्यागी के दर्शनमात्र से लोगो को खुशी होती है।

ग्यारहवी सीढ़ी बहुत खतरनाक है। ऐसा समझिये इस सीढ़ी पर केले के छिलके पड़े हैं। पैर रखा कि फिसला। यह काम करती है — दमित क्रोध मान माया, लोभ की चाण्डाल चौकड़ी। यह दबी हुई माया हमारे मुँह पर थप्पड लगाती है। इसलिए व्यक्तित्व विकास की पगडडी पर चलने वाले व्यक्ति को ग्यारहवी सीढ़ी पर पैर नही रखना चाहिये। इसे फाँदकर आगे बढ़ना है, पर फाँद वही सकता है जिसने चाडाल चौकड़ी को कभी पास नही फटकने दिया।

बारहवे स्थान म उसी का आसन लग सकता है जिसने स्वार्थ की रत्ती रत्ती भस्मीभूत कर डाली। उसका व्यक्तित्व फिर खुद के लिए ही नही, अपितु दुनिया के लिए वरदायी बन जाता है। यहाँ व्यक्ति व्यक्ति ही नही रहता, वह महापुरुष बन जाता है। अन्तर व्यक्तित्व मे छिपी ईश्वरीय शक्तियाँ जग जाती हैं। ता ते मानी खुदाय दर ख्वाबस्त तो न मानी चु ओ शनद बेदार —— यदि व्यक्ति मैं मैं करेगा तब तक ईश्वर हममे सोया रहता है। जब मै मैं छूट जाएगी तो भीतर का ईश्वर जाग जाएगा। यानी व्यक्तित्व विकास की पूर्णता की देहरी पर कदम रख देगा। यह स्थान हमारे व्यक्तित्व की परिपक्व अवस्था है। यहाँ खतरा नही है अन्तर तृप्ति है। आनन्द का सागर हिलोर लेने लगता है। ससार पर करुणा की अमी धारा उससे बरसने लगती है।

व्यक्तित्व के तेरहवें माले पर पहुँचने वाले भाग्यशाली हैं। ए
व्यक्तित्व की सर्वोन्नता है, चित्त मुस्काता है, प्रकाश के आवरण
छिन्नभिन्न होता है। इससे ऊँचा व्यक्तित्व मानव द्वारा सम्भव नहीं है। वे
कुछ भी कहते हैं, उनके व्यक्तित्व की गहराई पर कृपा है। उनकी वा
सच्ची होती है, सीधी होती है पर पैमाना अपूर्व होता है। जैसे ही
वह व्यक्ति वहाँ से गुजरेगा, तो सारा समा ही बदल जायेगा। उनके
व्यक्तित्व के गुलाबी फूलों से सारा वातावरण सुरभित हो जाता है।

चौदहवीं सीढ़ी मंजिल को छूई हुई है। यात्री की यात्रा पूरी हो
जाती है, उसे गंतव्य मिल जाता है। उसका व्यक्तित्व सिद्ध बन जाता है।
विश्व उसकी चरण धूलि को पाकर स्वयं को कृतार्थ समझता है। समर्पित हो
जाते हैं उनके चरणों पर अगणित श्रद्धा पुष्प।

इस तरह जो व्यक्ति जागा जागो से विषपायी होता है, वही
अमृतपायी बन जाता है। कुदरत उसके व्यक्तित्व के लघुकोणों के हर एक
कोने में सूरज साकार कर देती है। ऐसे व्यक्तित्व ही बनते हैं अवतार,
ईश्वर, तीर्थंकर, बुद्ध। काश! हमारा व्यक्तित्व भी ज्योतिर्मय होकर इनके
योग्य बन पाता।

बिन सिंचन तरुवर कंकाल

बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा चरैवेति चरैवेति। चलते रहो चलते रहो, चलते ही रहो। महावीर ने भी अपने शिष्यों को बताया कि एक जगह बैठे मत रहो, विहार करते रहो। चलने की शिक्षा सभी ने दी है। मन्दिर में जाने वाले दर्शनार्थी को मन्दिर की परिक्रमा करनी चाहिये। अपने पापों को प्रक्षालित करने के लिए प्रतिक्रमण करना चाहिये। क्रम का मतलब है पाँवों को आगे-पीछे बढ़ाना। यदि क्रम टूट गया तो अड़ियल टट्टू बन जायेंगे।

भारतीय सभ्यता में चलने की अपनी महिमा है रुँधने की नहीं। जो रुँध गया, वह गड्ढे में सड़ गया, दुर्गन्धित हो गया। जो चलता रहा वह नदी की धारा की तरह है। वह सागर का विराट् रूप धारण कर लेता है। ऋषि मुनियों ने कहा है कि जागो उठो अच्छी चीजों को पाकर कुछ सीखो उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत। चलने में बहुत सी अच्छी-अच्छी बातों की सीख भरी है। चलोगे तो आँख खुली रहेगी। आँख का काम आगे का मार्ग दिखाना है। इसलिए हम चलकर ही दूरदर्शी बन सकते हैं। रास्ते पर चलने वाला यदि आँख मूँद ले तो सम्भव है सदा के लिए उसकी आँख बन्द हो जाय। कारण सामने ट्रक आ रहा है। यदि ट्रक के नीचे न भी आया, तो बिजली के खंभे से टकराने से कौन रोक सकता है। अस्पताल की खड़ियल खटिया पर जाकर सोना हो तो चलिये आँख मूँद कर।

चलने का यह अर्थ है कि जिस स्थान पर हो उस स्थान को छोड़कर अगली सीढ़ी पर कदम रखो। आँख तो केवल आगे की जमीन की बात बताती है कि आगे की जगह कैसी है। वह ऊबड़ खाबड़ है या कीचड़ को थामे है अथवा सीधी है। आँख तो उपलक्षण मात्र है। संसार गतिशील है जीवन गतिशील है। इस गतिशील वातावरण में व्यक्ति की गतिशीलता इस बात पर निर्भर है कि वह अपने मस्तिष्क से, अपने विवेक से यह समझे कि

हम जिस भूमि पर हैं। हम क्या कर रहे हैं, आखिर इसका परिणाम क्या होगा। यदि हम कषाय की धाग्वाल चौकड़ी से घिरे हैं, तो उसका भविष्य कदापि बढ़िया नही होगा। यदि हम यह चाहते है कि हमारा भविष्य सुखमय हो, तो हमे अपनी वर्तमान की भूमि को साफ सुथरा करना होगा। अपने भीतर के सागर मे पैठे विकारो से अपना पिंड छुड़ाना होगा। हमारा भविष्य हमारे वर्तमान मे है। वर्तमान के गर्भ से ही भविष्य का बालक जन्मता है।

आपने स्टेशन पर ऐसे डिब्बे भी देखे होगे, जिससे इजन का सम्बन्ध तो कट गया है किन्तु डब्बा पटरी पर कुछ देर तक चलता रहता है। डब्बे की गति धीरे धीरे ढीली होती है रुकती है। इजन ने जो उसे गति दी उसी गति के बल पर वह डिब्बा भविष्य मे भी चलता रहता है। लोहा आग मे निकलकर काफी देर तक गर्म रहता है। उसमे ललाई रहती है। उसकी लाली और गर्मी धीरे धीरे मन्द पड़ती है। क्योकि वर्तमान और भविष्य का सम्बन्ध घनिष्ठ है।

व्यक्ति का पापी मन एक मिनट मे निष्पाप नही होता। अथवा उसका शुद्ध मन एक मिनट म दूषित नही होता। उसकी पूर्वापर भूमिका रहती है। वर्तमान और भविष्य के किसी अविभाजनीय सम्बध को उनके रिश्ते नाते को जताने के लिए ही चलने की और वह भी आँख खोलकर चलने की शिक्षा ऋषि मुनियो ने दी है।

जब आदमी चलता है यदि वह काना नही है तो उसकी दोनो आँखें खुली रहती है। प्रकृति ने तो हमे दो आँख दी हैं। पर दो आँख होने से हम एक वस्तु को दो रूपो म नही निहारते है। दोनो आँखे मिलकर हमारे लिए एक ही सचाई उपस्थित करती है। इन दोनो आँखो मे एक बायी है तो दूसरी दायी। यह ससार भी दो रूपो म है। कुछ दुश्मन बनकर रहते हैं तो कुछ दोस्त बनकर। हम कुछ प्यारे लगते है तो कुछ फूटी आँख भी नहीं सुहाते। चलना हमे बताता है कि इन दोनो दुश्मन दोस्तो मे एकरूपता लाओ। जब तक दोनो मे अलग-अलग दृष्टि रहेगी तब तक हमारा मन उथल-पुथल रहेगा राग द्वेष मे जकड़ा रहेगा। जब हम एकरूपता रखेंगे, हमारी बुद्धि समभाव पर टिकी रहेगी तब हम निष्कप दीया बनेंगे। स्वयं में स्थितप्रज्ञ बनेंगे दुनियावी पचड़ो से दूर रहेगे। नेत्रो की एक दृष्टि ही समदृष्टि की कहानी कहती है। चलने मे हमारे पैर भी इसी भाव को पुष्ट करते हैं। चलते तो हम दो पैरो से हैं पर पगडडी एक ही बनती है। दो

होता कि बाये पैर की पगडण्डी अलग हो और दाहिने पैर की पगडंडी
ा हो। चलना जरूरी है बहना जरूरी है। रुँधा पानी गन्दा है और
ा पानी नहीं है। सब जानते हैं पानी तो चलता भला जोगी तो रमता
।

रुँधना निष्क्रियता है चलना सक्रियता है। कृष्ण और महावीर ने
ने की प्रेरणा नहीं दी। व निष्कर्म होने की बात ही नहीं करते। उनकी
जीवन शैली कर्मयोग के धरातल पर है। वे भाग्यवादी मात्र इसलिए नहीं
क्योंकि व भविष्य को मात्र अंधेरा नहीं मानते। भविष्य की मीनारा के
दीप भी जगमगाते हैं। इस मच पर कृष्ण और महावीर का अनोखा
न है। जीवन को एव भविष्य का प्रशस्त बनाने के लिए कर्मयोग से बढ़
कोई तकनीक नहीं है।

हमारे कदम वर्तमान की धरा पर हैं। हमारा वर्तमान ही हमारे
ष्य की नींव है। अत हमारा पहला कदम सही होगा तो ही हजारो
ी की यात्रा सही होगी। जो वतमानजीवी हैं उन्हे भविष्य अधा कूआ
ता है। जो आशा की मशाल को हाथ थाम है उन्हे भविष्य इन्द्रधनुषी
ता है। भविष्य के आलिफिक का हीरो वही बनेगा जो कर्मयोगी है।

सही दिशा म योजित कर लूँ
अपने सारे व्यवहारा को ।
जिससे यह जीवन रथ पकड़े
अशुभ नहीं शुभ की राहा को ।
हो सकल्प शिखर से ऊँचा
सत्य पथ का वरण करूँ मैं ।
बढ़ते रहे कदम सत्पथ पर
सघर्षों से नहीं डरूँ मैं ।
नीति धर्म की पगडडी पर,
विघ्ना म भी अचल रहूँ मैं।
विष के घूँट गटागट पीकर
सचाई पर अटल रहूँ मैं।

कर्मयोगी को सम्भव है शुरुआत मे विष के
के अन्त करण म अमृत स्रोत फोड डालेगा।
गे और हम शिव शकर की तरह अमरता
के लिए देव-दुन्दुभि बजायेगा काल भैंस पर

नहीं हुआ कि बायें पैर की पगडंडी अलग है और दायें पैर की पगडंडी अलग हो। चलना जरूरी है रुकना जरूरी है। कौन नहीं गहरा है और बहता नहीं नहीं है। सब जानते है नहीं तो चलना भला लोगों तो रुकना भला।

वैसा निश्चित है भविष्य अनिश्चित है। कृष्ण और महावीर ने रुको व देखना नहीं दी। वे निष्कामी हैं न फल की आस ही नहीं रखते। उनकी ता सीख नैतिक कर्मयोग के धरातल पर है। वे भविष्यवादी मात्र इसलिए नहीं है क्योंकि वे भविष्य को मात्र अंधेरा नहीं मानते। भविष्य की मीनारा के पीछे दीप भी जगमगाते है। इस पथ पर कृष्ण और महावीर का अनोखा मन्त्र है। ईश्वर को एवं भविष्य का प्रश्न बाद में किन्तु कर्मयोग से बढ़ कर कोई तकनीक नहीं है।

हमारे कदम वर्तमान की धरा पर है। हमारा वर्तमान ही हमारे भविष्य की नींव है। अत हमारा पहला कदम सही होगा तो ही हमारा मील की यात्रा सही होगी। जो वर्तमानजीवी है उन्हें भविष्य अंधा कूआ लगता है। जो आज की मशाल को हाथ थामे है उन्हें भविष्य स्वर्णयुगी लगता है। भविष्य के आलिंगन का हीरो वही होगा जो कर्मयोगी है।

सही दिशा म योजित कर लूँ
अपने सारे व्यवहारा को ।
जिससे यह जीवन रथ पकड़े
अशुभ नहीं शुभ की राहा को ।
हो सकल्प शिखर स ऊँचा,
सत्य पथ का वरण करूँ मैं ।
बढ़ते रहे कदम सत्पथ पर
सघर्षों से नहीं डरूँ मै ।
नीति धर्म की पगडडी पर
विघ्नो म भी अडल रहूँ मै।
विष के घूँट गटागट पीकर
सचाई पर अटल रहूँ मै।

कर्मयोगी को सम्भव है, शुरूआत मे विष के घूँट पीने पड़े पर भविष्य उसके अन्त करण म अमृत स्रोत फोड़ डालेगा। विषैले घूँट अमृत मे बदल जायेगे और हम शिव शकर की तरह अमरता की छाँह पा लेगे। भविष्य उसके लिए देव दुन्दुभि बजायेगा काले भैसे पर सवार होकर काल/यमराज

की तरह गी जायेगा।

आप इसे समझे। यह ससार कालचक्र के रथ पर चलता है। इस काल को मोटे तौर पर हम तीन भागो मे बाँट सक्ते है भूत, वर्तमान और भविष्य। इनमे भूतकाल की लम्बाई बहुत बडी है। वैज्ञानिक इसको सीमा मे बाँधने की बहुत माथा पच्ची करते है। फिर भी वह असीम दिखाई पडता है। इस भूतकाल का अन्तिम छोर तो हमारे सामने है लेकिन उसका आदिम छोर इतना अधिक लम्बा है कि वह हमारी बुद्धि से परे है।

जब मनुष्य का बुद्धिबल जनमा उसके पहले भी भूतकाल का अस्तित्व था। ऐसी ही बात भविष्यकाल के लिए भी कही जा सकती है। वर्तमान के लिए भी कही जा सक्ती है। वर्तमान के बाद भविष्य ही है। भविष्य का भी आदिम छोर तो हमारी आँखो के सामने है। पर उसका अन्तिम छोर अधियारे की ओट म है। कहा नही जा सक्ता कि यह भविष्य कितना लम्बा होगा। यदि वाणी म भविष्य को बाँधना ही हो तो ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहा जा सक्ता है कि भविष्य का फैलाव इस सृष्टि के अन्त तक रहेगा।

तात्त्विक चिन्तन के दृष्टिकोण से तो भविष्य अनन्त है। एक बार नही अनन्त बार भी ससार बन जाये खतम हो जाये तो भी भविष्य का अस्तित्व सदा सदा विद्यमान रहेगा। इन अनन्त अपरिमीमित भूत और भविष्य के बीच मे पडा हुआ है दुबला पतला लकी छाप वर्तमान। वह बुलबुले की तरह क्षण स्थायी है। आया हुआ क्षण देखते देखते भूतकाल के अथाह समुद्र म विलीन हो जाता है और भविष्य का नया क्षण आकर वर्तमान का मुखौटा पहन लेता है।

सत्य तो यही है किन्तु कुछ स्थूल दृष्टि वाले व्यक्ति वर्तमान को भी खींचतान कर व्यक्ति के पूरे जीवन म ले जाते हैं। वे बतलाते हैं कि मनुष्य जब से होश सम्हालता है और जब तक इस दुनिया म जीता है तब तक वर्तमान की ही लम्बाई है। वर्तमान को किसी तरह सुखी बनाना व मनुष्य का परम कर्तव्य समझते है। उनके अनुसार यही मानवीय धर्म है। ऐसे लोगो की दृष्टि म इस पच भौतिक शरीर के अतिरिक्त इसम और कुछ नहीं है। चेतना तो मद्य की मादकता की तरह इसी शरीर का धर्म है। आत्मा या परलोक तो केवल स्वार्थी बुद्धिवादियो की कपोल कल्पना है। वर्तमान को सुधारना ही व्यक्ति का परम कर्तव्य है। नैतिक या अनैतिक सत्य या असत्य सदाचार या दुराचार आदि के बीच म कोई लक्ष्मण रेखा नहीं है।

जिस कार्य से इस शरीर का पोषण होता है वही आचरणीय है वही धर्म है वही विहित कर्म है। उनके यहाँ चोरी या कर्ज से मिले धन से भी शरीर की पुष्टि चाही जाती है। त्याग, तपस्या उपवास व्रत आदि जो शरीर को कृश बनाते है, वे सब त्यागने योग्य है। यदि हिंसा से भी व्यक्ति के शरीर की रक्षा और पुष्टि होती है तो वह भी सहर्ष गले लगाने योग्य है।

जिन विचारको ने ऐसी बाते जिस समय कही थी वह समय बिल्कुल भिन्न था। आज के सामाजिक जीवन मे ये बाते अभिशाप है। राज्य की ओर से उन्हे अपराधी माना जाता है दण्ड दिया जाता है। आज के युग मे कोई भी ऐसी बाते कहने का साहस भी नही कर पाता। आज तो हम विकसित समाज मे जीते है। नियम और कानूनो से बधे है। व्यक्ति के अधिकार और कर्तव्य सुनिश्चित है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मो की श्रेष्ठता साबित करके ही उसका फल चाहता है। जो व्यक्ति अनुचित और अनैतिक माध्यमो द्वारा अपने वर्तमान कालिक जीवन को सुख की दिशाएँ देने मे लगा है, न्यायालय के कठघरे उसे बहुत जल्दी अपनी गोद मे बुला लेते है।

भविष्य नई दिशा है नई आशा है। वर्तमान भोग्य है पर भविष्य नये भोगो की खेतीबाड़ी है। जिस भोग से भविष्य सुखद बनता हो वही वर्तमान भोग्य है। खुजली का रोगी खुजलाते समय आनन्दित होगा पर जब मवाद खून निकलेगा, तो उसे भोग्य कृत कार्य पर गुस्सा आएगा। एक डाकू डाका डालकर अपना वर्तमान तो सुखद बना सकता है किन्तु ऐसा करके वह स्वय को सुरक्षित नही रख सकता। उस वर्तमान से कभी भी दोस्ती नही करनी चाहिये जो भविष्य मे भय, शत्रुता और असुरक्षा पैदा करे।

मैने बचपन मे एक घटना पढ़ी थी। विलियम शहर मे चूहो का प्रभुत्व था। नागरिक उनसे काफी परेशान थे। नगरपालिका ने भी चूहो के विनाश के लिए अनेकश प्रयास किये किन्तु उसके सारे प्रयास निष्फल चले गये। न विष की गोलियाँ काम कर पायी, न बन्दुको के कारतूस उन्हे खत्म कर पाये, न चूहे पकडने के पिजड़े लाभकारी सिद्ध हो पाए। विष की गोलियाँ खाने से उनके शरीर मे रहनेवाले रोग दूर हो गए। निशानेबाज उन पर निशाना लगाते पर निशाना लगते-लगते वे खिसक जाते। और वे चूहो को पकडने के पिजड़ो को उठाकर ही ले जाते।

उलझन बढ़ गयी। जनता भड़क उठी। उसने नगरपालिका को धमकी दी कि यदि एक सप्ताह मे नगर से सारे चूहे नदारद नही हुए तो हम नगर पालिका को और उसके अधिकारियो को जिन्दा जला डालेगे। अधिकारियो

पर ने हिसाब की आ पनी। छट दिन बीत गये, एक दिन बचा। सारे अधिकारी बेचैन थे।

सातवे दिन एक बासुरीवाला पाइपर नगरपालिका के दफ्तर म आया और उसने कहा कि म तुम्हे चिन्ता से छुटकारा दिला सकता हूँ। यदि तुम मुझे दस हजार रुपये दो तो म नगर के सारे चूहे हटा सकता हूँ। अधिकारिया ने पूछा कैसे हटाओगे? पाइपर ने कहा यह जिम्मेदारी मेरी है। अधिकारी बोले तो ठीक है हजार रुपये ले लो। पर पाइपर एक कौडी कम लेने के लिए तैयार न हुआ। मरता क्या न करता। आखिर प्रमुख अधिकारी ने हामी भर ली।

पाइपर पहुँचा नगर के बीच और अपनी बासुरी बजाने लगा। उसकी मुरली कृष्ण कन्हैया जैसी और तानसेन जैसी मीठी सुरीली थी। पता नहीं उसमे ऐसा कौन सा जादू था कि उसकी आवाज नगर के कोने-कोने तक चली जा रही थी और चूहे भी उस पाइपर के पास आ रहे थे। स्वर का गुरुत्वाकर्षण बढ़ता गया। पाइपर जहा खडा था वहाँ अब चूहे ही चूहे हो गये। नगर के सारे चूहे उसके पास आ गये।

अब वह रवाना हुआ। आगे-आगे वह जा रहा है और पीछे पीछे चूहो की जमात। नगर की जनता यह सब कुछ देख रही है आश्चर्य के साथ। वह पाइपर पहुँचा सागर तट पर और कूद पडा सागर मे। भेड धसान की तरह चूहो ने भी उसका अनुसरण किया और वे भी कूद पडे सागर मे। एक चूहा और एक चूहिया बच गये जो लगडे थे। आज जितने चूहे हैं, लगता है वे उसी लगडे दम्पति के वशज है।

कुछ देर बाद पाइपर सागर से बाहर निकल आया। चूहे मर चुके थे। वह पहुँचा नगर पालिका के दफ्तर म। उसने अपनी राशि मागी। अधिकारिया के मन म पाप आ गया। उन्होने सोचा कि चूहे तो अब मर चुके है अब इसे क्या पैसा देना। अत वे पैसे देने से मुकर गये। बिचारे अधिकारिया को क्या पता था कि यो नटो से लेने के देने पड सकते है। पाइपर बौखला गया। बोला तुम लोग धोखेबाज हो। मैने तुम लोगों को मरते मरते बचाया है। अब यदि तुम मुझे एक लाख नहीं देते हो तो तुम्हे भारी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी।

अधिकारियो ने कहा तुम्हे जो करना हो कर लो। पैसा टक्का एक भी नहीं मिलेगा।

पाइपर वहाँ स रवाना हो गया। जाते जाते कह गया कि अब एक

लाख नही लूँगा लूँगा तो पूरे दस लाख ही लूगा। जिस समय तुमको देना हो मेरे पास आ जाना। पाइपर वहाँ से सीधा पहुँचा बाजार मे और बीच बाजार म खड़े होकर अपनी बासुरी बजाने लगा। लोगो के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। नगर के सभी बच्चे पाइपर के पास आकर इकट्ठे होने लगे। जिसके हाथ मे बच्चा था उसके हाथ से बच्चा छूट गया और वह बाजार की ओर आने लगा। दो माह का बच्चा पर वह बाजार की ओर आ रहा है। जिधर मे जितने भी बच्चे थे सब बाजार म आकर इकटठे हो गये। सारा बाजार बच्चो से भर गया। अब पाइपर वहा से रवाना हुआ। सारे के सारे बच्चे भी उसके पीछे रवाना हो गये। सब लोग घबड़ाये। लोग पहुँचे अपने बच्चो को रोकने के लिए लेकिन जैसे ही वे बच्चे को गोद म लेते वह मेढ़क की तरह उछल कर वापस उसी जमात म मिल जाता।

वह पाइपर चला जा रहा था सागर की ओर। लोग समझ गये कि अब पाइपर क्या करने जा रहा है। यह हमारे बच्चो की भी वही हालत करने वाला है जो उसने चूहा की की थी। सब लोग पहुँचे नगरपालिका वालो के पास और कहा कि पाइपर को दस लाख रुपये ले जाकर दो नहीं तो तुम लोगो को जिन्दा जला डालेगे यही पर। तुम हमारे बच्चो को बचाओ। यह तो पहले से भी बडी भयकर आफत है। नगरपालिका वाले दौड़े-दौड़े गये दस लाख रुपये लेकर। उसे मुँह मागा रुपया दिया और सारे बच्चो को मौत से छुडाया।

नगरपालिका वालो ने भविष्य की उपेक्षा कर दी। सोचा था चूकि चूहे मर चुके हैं अब पैसे क्यो दे। पर जब भविष्य आया बच्चे दाँव पर लग गये तो उन्हे दस गुनी कीमत चुकानी पडी।

भविष्य म सुख की कामना से ही बैंक म लोग स्थायी खाता खोलते हैं। आज तो वह कमा रहा है पर कही भविष्य मे पगु न हो जाये। या जीवन से हाथ न धो बैठे, इसीलिए पूजी जमा करता है। जो बचत नही करते सम्भव है उन्हे भविष्य म प्रतिकूलताओ और कठिनाइयो का सामना करना पडे। जो भविष्य द्रष्टा नहीं है, वे उस व्यक्ति की तरह है जो मधु पान करने के लिए वृक्ष पर लटकता है। वह यह नही सोचता कि भूतकाल के चूहे उस डाल को काट रहे है और भविष्य काल का हाथी उस पेड को तोड रहा है। मधु पान मे रस मे लीन होकर बस वह लटका है।

आप लोगो ने कई बार मधु बूद का चित्र देखा है। आदमी पेड की टहनी को हाथ से पकडकर लटका हुआ है। टहनी पर शहद का छत्ता है।

उससे रह रहकर रिस रिसकर एक एक बूँद एक एक बूँद शहद गिर रहा है। टहनी पर लटका हुआ आदमी उसे नीचे नहीं गिरने देता और लटका लटका उसे मुंह मे लेने की कोशिश करता है। जबकि हाथी उस पेड को जड से उखाड़ने मे लगा है। आदमी जिस टहनी पर लटका हुआ है उसे चूहा काट रहा है। जिस टहनी पर आदमी लटका है उसके नीचे है एक गहरा कुआँ। कुएँ म बैठा है एक भूखा अजगर जो भोजन की तलाश म है। हालाकि आदमी इस सारी भावी विपत्ती को जानता है। मगर जानते हुए भी वह टहनी को छोड़ता नहीं है। सोचता है एक बूँद तो और ले लूँ। चूकि बूँद तो लगातार गिरती जा रही है और मधु बूँद के प्रति मोहातुर हुआ आदमी उसे छोड नही पाता है। वह बचना चाहे तो बच तो सकता है पर वह मोहमयी माया उसे बचने नहीं देती और भविष्य उसे मौत की पीड़ा से पीडित कर देती है।

लोग खुजली करते है। खुजली हो गयी, यह हुआ अतीतकाल। खुजलाना यह हुआ वर्तमान काल। खुजला रहा है, तो बडा आनन्द आ रहा है। बड़े प्रेम से खुजला रहा है। लेकिन जो केवल वर्तमान की तरफ ध्यान रखता है भविष्य की तरफ ध्यान नहीं रखता, उसे शोक करना पड़ता है। जब उसमे से मवाद निकलता है तो आदमी को बड़ा दुःख होता है। यदि खुजली को न खुजला कर दवा का उपयोग करे तो खुजली बाद मे भविष्य काल म कभी भी तड़पायेगी नही जलन नही पैदा करेगी।

खुजलाते समय व्यक्ति को सुख जरूर मिलता है पर हकीकत मे वह सुख नहीं है। वह धोखा है। यहाँ जीवन मे धोखेबाजी का सिलसिला ही ज्यादा है। इस खुजलाने मे और इन्द्रिय विषयो को भोगने मे फर्क नहीं है। खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुख को भी सुख मानता है वैसे ही वर्तमान भोगी मोहातुर मनुष्य कामजन्य दुख को सुख मान बैठता है। वह अध्यात्म म अपने कर्मयोग को न जोड़कर, भोगो म जोड़ लेता है। उन भोगो को जुटाने मे उन भोगो म ही अपनी सारी चैतसिक ऊर्जा को व्यय कर डालता है। सच्चाई का पता लगाओगे तो लगेगा कि इन्द्रिय विषयो म कोई सुख नहीं है। जो सुख दिखाई देता है वह वास्तव म सुख है नहीं वरन् लगता है। मूर्च्छा के कारण दुख भी सुख लगता है। ढूँढो क्या केले के पेड़ म कोई सार दिखाई देगा ? अरे इस सुख से तो सपनो का सुख अच्छा। दिखाने में बहुत होता है पर खाते कुछ भी नहीं है। पर इसमें हम खोना ही खोना है।

लोग खो खो कर भी यही समझते है कि पाते ही पाते जा रहे है। यदि कुछ पाते भी है, तो वह दुख के अलावा क्या पाते है? कुत्ता सूखी हडडी को चबाता है सोचता है हडडी मे मास-रुधिर है। पर हडडी म भला मास रुधिर होता है ? सत्यत कुत्ता हडडी को चबाता है हडडी उसके गाल से टकराती है तो उसके ही जबड़ा से जीभ से तालू से खून निकलता है। पर कुत्ते को यह भ्रान्ति रहती है कि हडडी से रस आता है।

एक सेठ के घर म एक नौकर था। सेठ ने उसे चाबियाँ भी सौप रखी थी। एक दिन नौकर ने सेठ से कहा सेठजी! मै नोकरी छाडना चाहता हूँ। सेठ ने पूछा क्यो भाई ? नौकर बोला साहब! मुझे आपके पास नौकरी करते पच्चीस साल हो गये मगर अभी तक आपको मुझ पर विश्वास नही है। सेठ ने कहा तेरी बुद्धि तो कही सठिया नही गई है? अरे! जरा होश मे आ। मैने तुम्हे तिजोरी की भी सभी चाबियाँ सौंप दी है। इससे ज्यादा विश्वसनीयता क्या हो सकती है ? नौकर बोला साहब! बुरा मत मानियेगा। उसमे से तो एक भी चाबी तिजोरी म नहीं लगती।

सच्चाई यही है। जिस सुख को पाने के लिए चाबियाँ कन्दोरे मे लटकाई हुई है जरा टटोल लो कि वे नकली हैं या असली। चाबियाँ है ससार की और ताले हैं अध्यात्म के। कैसे खोलेगे ? ये चाबियाँ सजावट की होगी, तालो को खोलने की नही। किन्तु चाबियो की खनखनाहट लोगो को इतनी अच्छी लगती है कि घर म ताले दो ही हो फटे हाल हो फिर भी बीसा चाबियो का गुच्छा लटका रखा है। क्या किया जाये लोगा को खनक की आवाज सुख देती है। मै तोड़ना चाहता हूँ इस भ्रान्ति को। जो लोग भ्रान्ति म रहेगे उन्हे बाद मे पछताना पडेगा।

कई बार ऐसा होता है कि लोग उस समय मेरे पास दौड़े-दौडे आते हैं जब उनके पिता या और कोई बहुत बीमार पड जाता है। जब डाक्टर जवाब दे देते हैं तो भागे आते हैं धर्म के दरवाजे पर।

एक बार एक युवक मेरे पास आया और कहा कि मेरे पिता सख्त बीमार हैं। आप चलिये और उन्हे मगल पाठ सुना दीजिये अपना आशीर्वाद दे दीजिये। मैंने उससे पूछा भाई! आप आये आपका स्वागत है पर धर्ममन्त्र से आपके पिता का क्या रिश्ता। वे तो नास्तिक जो ठहरे। उसने कहा क्या मालूम धर्म सही हो। मरण घड़ी मे तो धर्म मन्त्र उन्हे सुना ही देना चाहिये।

आप देखिये कि आदमी मरणान्त काल म शोक कर रहा है। वर्तमान

उससे रह रहकर रिस रिसकर एक एक बूँद एक एक बूँद शहद गिर रहा है। टहनी पर लटका हुआ आदमी उसे नीचे नहीं गिरने देता और लटका लटका उसे मुह मे लेने की कोशिश करता है। जबकि हाथी उस पेड को जड से उखाड़ने मे लगा है। आदमी जिस टहनी पर लटका हुआ है उसे चूहा काट रहा है। जिस टहनी पर आदमी लटका है उसके नीचे है एक गहरा कुआँ। कुएँ म बैठा है एक भूखा अजगर जो भोजन की तलाश मे है। हालाकि आदमी इस सारी भावी विपत्ती को जानता है। मगर जानते हुए भी वह टहनी को छोड़ता नही है। सोचता है एक बूँद तो ओर ले लूँ। चूकि बूँद तो लगातार गिरती जा रही है और मधु बूँद के प्रति मोहातुर हुआ आदमी उसे छोड नही पाता है। वह बचना चाहे तो बच तो सकता है पर वह मोहमयी माया उसे बचने नही देती ओर भविष्य उसे मौत की पीडा से पीडित कर देती है।

लोग खुजली करते है। खुजली हो गयी, यह हुआ अतीतकाल। खुजलाना यह हुआ वर्तमान काल। खुजला रहा है तो बडा आनन्द आ रहा है। बड़े प्रेम से खुजला रहा है। लेकिन जो केवल वर्तमान की तरफ ध्यान रखता है भविष्य की तरफ ध्यान नही रखता, उसे शोक करना पडता है। जब उसम से मवाद निकलता है तो आदमी को बडा दुख होता है। यदि खुजली को न खुजला कर दवा का उपयोग करे तो खुजली बाद म, भविष्य काल मे कभी भी तडपायेगी नही, जलन नही पैदा करेगी।

खुजलाते समय व्यक्ति को सुख जरूर मिलता है पर हकीकत मे वह सुख नही है। वह धोखा है। यहाँ जीवन म धोखेबाजी का सिलसिला ही ज्यादा है। इस खुजलाने मे और इन्द्रिय विषया को भोगने मे फर्क नही है। खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुख को भी सुख मानता है, वैसे ही वर्तमान भोगी मोहातुर मनुष्य कामजन्य दुख को सुख मान बैठता है। वह अध्यात्म म अपने कर्मयोग को न जोड़कर भोगा मे जोड़ लेता है। उन भोगो को जुटाने म उन्हे भोगने मे ही अपनी सारी चैतसिक ऊर्जा को व्यय कर डालता है। सच्चाई का पता लगाओगे तो लगेगा कि इन्द्रिय विषयो म कोई सुख नही है। जो सुख दिखाई देता है वह वास्तव म सुख है नहीं वरन् लगता है। मूर्च्छा के कारण दुख भी सुख लगता है। ढूँढो क्या केले के पेड़ मे कोई सार दिखाई देगा ? अरे इस सुख से तो सपनो का सुख अच्छा। जिसम अहसास बहुत होते है पर खोते कुछ भी नही है। पर इसम तो खाना ही खाना है।

लोग खो खो कर भी यही समझते है कि पाते ही पाते जा रहे है। यदि कुछ पाते भी हैं तो वह दुख के अलावा क्या पाते हैं? कुत्ता सूखी हड्डी को चबाता है, सोचता है हड्डी म मास-रुधिर है। पर हड्डी मे भला मास रुधिर होता है ? सतत कुत्ता हड्डी को चबाता है हड्डी उसके गाल से टकराती है तो उसके ही जबड़ो से जीभ से तालू से खून निकलता है। पर कुत्ते को यह भ्रान्ति रहती है कि हड्डी से रस आता है।

एक सेठ के घर म एक नौकर था। सेठ ने उसे चाबियाँ भी सौंप रखी थी। एक दिन नौकर ने सेठ से कहा सेठजी! मैं नौकरी छोड़ना चाहता हूँ। सेठ ने पूछा क्यो भाई ? नौकर बोला साहब! मुझे आपके पास नौकरी करते पच्चीस साल हो गये मगर अभी तक आपको मुझ पर विश्वास नही है। सेठ ने कहा तेरी बुद्धि तो कहीं सठिया नही गई है? अरे! जरा होश में आ। मैंने तुम्हे तिजोरी की भी सभी चाबियाँ सौंप दी है। इससे ज्यादा विश्वसनीयता क्या हो सकती है ? नौकर बोला साहब! बुरा मत मानियेगा। उसमे से तो एक भी चाबी तिजोरी म नही लगती।

सच्चाई यही है। जिस सुख को पाने के लिए चाबियाँ कन्दोरे म लटकाई हुई है जरा टटोल लो कि वे नकली हैं या असली। चाबियाँ हैं ससार की और ताले हैं अध्यात्म के। कैसे खोलगे ? ये चाबियाँ सजावट की हागी ताला को खोलने की नहीं। किन्तु चाबियो की खनखनाहट लोगो को इतनी अच्छी लगती है कि घर मे ताले दो ही हा फटे हाल हा फिर भी बीसो चाबियो का गुच्छा लटका रखा है। क्या किया जाये लोगा को खनक की आवाज सुख देती है। मैं तोड़ना चाहता हूँ इस भ्रान्ति को। जो लोग भ्रान्ति मे रहेगे उन्हे बाद मे पछताना पड़ेगा।

कई बार ऐसा होता है कि लोग उस समय मेरे पास दौड़े-दौड़े आते हैं जब उनके पिता या और कोई बहुत बीमार पड़ जाता है। जब डाक्टर जवाब द देते हैं तो भागे आते हैं धर्म के दरवाजे पर।

एक बार एक युवक मेरे पास आया और कहा कि मेरे पिता सख्त बीमार हैं। आप चलिये और उन्हे मगल-पाठ सुना दीजिये अपना आशीर्वाद दे दीजिये। मैंने उससे पूछा भाई! आप आये आपका स्वागत है पर धर्ममन्त्र से आपके पिता का क्या रिश्ता। वे तो नास्तिक जो ठहरे। उसने कहा क्या मालूम धर्म सही हो। मरण घड़ी मे तो धर्म मन्त्र उन्हे सुना ही देना चाहिये।

आप देखिये कि आदमी मरणान्त काल म शोक कर रहा है। वर्तमान

काल मे वह चाहे जैसे रोले, चाहे जैसे विरोध करे, जब मृत्यु का काल आता है तो उसी समय हर आदमी सावधान होता है। हर आदमी उसी समय जगता है जब मृत्यु आ जाती है। मगर मृत्यु आने के बाद तो केवल पछतावा ही रहता है। जैसे यदि कृषि सूख गयी और उसके बाद यदि वर्षा बरसती है तो वह वर्षा किसी काम की नहीं है। चिड़ियाये यदि खेत मे आ गयी है और सारे खेत को चुग गयीं, उसके बाद किसान उसे उड़ाने दौड़ता है तो यह उसका बेकार का श्रम हुआ।

इसलिए हम जगना है वर्तमान के बीतने से पहले, भविष्य की सूरत दीखने से पहले। भविष्य का आकाश विशाल है, वर्तमान का क्षितिज सीमित है। हर वर्तमान अतीत बनता है और हर भविष्य वर्तमान। कालचक्र अनित्यता की धुरी पर चलता है। जन्म लेते जीव को सबसे पहले अनित्यता ही अपनी गोद मे स्वीकार करती है, धरती और धाय अथवा माता बाद मे। मृत्यु आने के बाद तो देव भी शरण नहीं है, फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है ? जीव कर्मों के भार से लदा है। योग छिद्रो से आये हुए कर्म जल से भरा हुआ यह जीव जहाज की तरह ससार रूपी दुःख समुद्र मे डूब रहा है। पता नही, वह किस क्षण डूब जाए। इसलिए भविष्य की बीमा जरूरी है।

इस सन्दर्भ मे मैने उत्तराध्ययनसूत्र मे एक कहानी पढ़ी है। एक मालिक के घर मे तीन पशु थे। एक थी गाय, एक था बछड़ा और एक था मेमना। बछड़ा गाय को कहता कि माँ! तुम इन लोगो को दूध पिलाती हो पर उसके बदले मे ये लोग केवल सूखी घास देते है और यह मेमना इन लोगो को कुछ भी नही देता, फिर भी इसे देखो। कितने अच्छे अच्छे पक्वान मिलते है। तुम्हारा दूध भी इस मेमने को पीने के लिए मिलता है। माँ! हमने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि हम दूध देने के बदले मे केवल सूखी घास मिलती है। माँ ने कहा बेटा! तू इतना घबराता क्या है ? तू अपने भाग्य को कभी मत कोस। जो हम मिल रहा है, वह बिल्कुल ठीक है। आज हम भले ही सूखी घास मिल रही है, मगर हमारा भविष्य बिल्कुल सुरक्षित है और आज इसे भले ही खाने पीने को माल मलीदे मिल रहे है, लेकिन इसका भविष्य खतरे मे है। बेटे ने कहा माँ! मै समझा नही। गाय बोली बेटा। तुम अपने आप मालूम पड़ जायेगा थोड़े ही दिनो मे। बेटा चुप हो गया।

एक दिन पाहुने आये। जैसे ही पाहुने अतिथि पहुँचे तो घरवालो

नेस्हा अरे! आज तो सगे-सम्बधी आये है। हमारे निकटवर्ती रिश्तेदार है। इनको विशिष्ट प्रकार का भोजन खिलाना होगा। फिर अपने हाथ म एक छुरी लेकर मालिक उस बाडे मे पहुँचा। मेमने को दोनो हाथो से पकडा अपने बेटे से कहा कि इसके पैर पकड लो। गाय और बछडा एक किनारे खडे हैं और देख रहे हैं यह सारी लीला। अचानक परमालिक न उस मेमने की गरदन पर अपनी छुरी चला दी। सर अलग हो गया। बछडा काँप उठा कि अरे यह क्या ? माँ ने कहा बेटा! तू मत घबरा। हम घास खाते है भले ही वह घास है मगर हमारा भविष्य सुरक्षित है। इसको मारने क लिए ही मोटा किया गया।

अत कर्मों से भारी बना हुआ केवल वर्तमान को ही देखने वाला जीव मरणान्त काल म उसी प्रकार शोक करता है जिस प्रकार पाहुने के आन पर मेमना।

जा लोग भविष्य से आँख मुँदे रहत है भविष्य उन्ह कभी भी क्षमा नहीं करेगा। हम यदि वृक्ष से फल पाते रहेगे खाते रहगे पर वृक्ष का सिचन नही करेग तो आने वाली पीढी क्या खायेगी ? उसे खाने को मिलगे काँटे पत्ते, सूखी डालियाँ।

सिंचन रोपण काट छाँट से हाथ सिकोड़ेगे हम।
झाड और झखाड छोड़कर ता क्या छोड़ेगे हम।।

यद्यपि भविष्य को स्वप्न-लीला कहा जा सकता है पर स्वप्न साकार भी होते हैं। जो अपने सपना को साकार करने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न करता है भविष्य उसके चरण चूमने जरूर आयेगा। वर्तमान ता दुख मे डूबी निगाह है भविष्य आशा की चमक है। भविष्य के प्रति आस्था रखना अपनी आशा के दीये को सिंचित करते रहना है। भविष्य हो उज्ज्वल से उज्ज्वलतम जीवन की ऊँचाइया एव गहराइयो को छूने के लिए। •

आदमी अपने भाई से जितना प्रेम करेगा उससे भी ज्यादा दोस्त से करेगा। ससार एक मेला है भीड़ भरा है इसलिए चित्त को इस मेले मे दोस्तो का लम्बा चौड़ा काफिला मिल जाता है। पर यह दोस्ती बड़ी खतरनाक है। इस दोस्ती म व्यक्तिगे दुनियाई दोस्तो से पाया कुछ भी नही खोयेगा ही खोयेगा। और जो पायेगा वह धोखा होगा।

चित्त घूमता है धोखेबाजो के साथ। उसे बाहर मिलेगा भी भला क्या? इसलिए लौट आओ अपने मे। चित्त बाहर विचर रहा है उसे आकर्षित करे। बिखरते हुए चित्त को रोकना और बिखरे हुए चित्त को बटोरने का नाम ही योग है।

यदि हम चित्त को बाहर से जायेंगे तो जरा सोचिये कि बाहर कहाँ तक ले जाएँगे। बाहर की पगडडियाँ असीम है। उसका कोई ओर छोर नही है। बाहर तो क्षितिज के पार क्षितिज है। सत्य तो यह है कि क्षितिज मात्र दृष्टिभ्रम है। आकाश की कोई सीमा नही है ब्रह्माण्ड का कहीं अन्त नही है। इसलिए बाहर की यात्रा भटकावभरी है। पूरे ससार की यात्रा करने के बाद आखिरी शरण तो अपने घर म ही मिलेगी। अपने स्वय के कक्ष म भी बाग-बगीचे हैं उसम भी महल सजे हैं दीये जलते है। निहारे अपने घर को, अपने परमात्मा को अपने मन मन्दिर मे।

शत्रु ने हमला किया आक्रमण किया। हमने उस पर जवाबी हमला किया। यानी यह प्रत्याक्रमण हुआ। शत्रु को हमने खदेड़ा। खदेड़ते-खदेड़ते हम पहुँच गये शत्रु की राजधानी म। शत्रु ने आत्मसमर्पण कर दिया। पर हम लौट न सके। वहाँ के लुभावने दृश्यो ने हमे वापसी से रोका। हम वही रह गये। भूल गये अपने घर को अपनी बीवी को अपने बच्चो को। यह अतिक्रमण हुआ। अब तो शत्रु हमारा भाई जैसा हो गया। क्रोध मान माया लोभ की चाण्डाल चौकड़ी को हमने अपना घर समझ लिया और उसीमे बसने लगे, रहने लगे रमने लगे। क्रोध मे प्रीति मानी अह म तुष्टि लगी माया मे मैत्री सूझी लोभ मे उपलब्धि जची। शत्रु आखिर शत्रु है। अपने देश को छोड़ दिया और दूसरो के देश म जाकर बसे। आजाद करो अपने देश को। घरवाले याद करते है। सहज स्वभाव को याद करो। अपने म लौटो। बुला रही हैं घर की यादे।

शत्रु के चगुल मे फँसने के बाद घर लौटना बड़ा अटपटा लगता है। अनेक तरीको से समझने बूझने के बाद घर की ओर पाँव बढ़ते हैं। अपना घर न रहा होगा सोने का महल। न रहा होगा उसम वैभव। पर है तो

न उतारा के लिए एक बार फिर निवेदन किया। अक्रोध गुस्सा का स्वभाव है पर उस गुरु ने उठाया एक डंडा और दौड़ा शिष्य को पीटो मारो के लिए।

शिष्य दौड़ा। अंधियारा था ही। गुरु जाकर टकराया एक खम्भे से। माथे पर गहरी चोट आई। कोई नाड़ी फट गई और मर गया।

बहुत लोग होते है ऐसे जो घर की याद दिलाते है, पर बहरा कैसे सुनेगा, अंधा कैसे देखेगा। मुझे तो याद आती है अपने घर की मन मंदिर मे प्रतिष्ठित प्रियतम की। आप सभी भी धर्म ध्यान वगैरे तो करते हैं कभी कभी अपने घर की तरफ झांकते भी है, पर जीवन म नया मोड नही आ पाता। वर्षो से पूजा की पर भगवान् दिल मे नही बसे दान तो बहुत किया पर सगे भाई भूखे मर रहे है। पंडित तो बने पर स्वयं को नही जान पाये। सामायिक तो की पर समता के रंग मे न रंग सके। प्रतिक्रमण तो रोजाना किया पर पापो से हट पाये? कहते है

मक्का गया हज किया, बन के आया हाजी।

आजमगढ मे जब से लौटा फिर पाजी का पाजी।

निर्णय करे हम कि हम हाजी है या पाजी भटके है या घर पहुँचे है। चिन्तन करे हम। अब हमे अपनानी होगी ध्यान की पगडंडियाँ।

ध्यान हमे सिखाता है घर आने की बात नीड़ म लौटने की प्रक्रिया। लोग समझते है कि ध्यान मृत्यु है, वह हमे अपनी चित्तवृत्तियो को रोकना सिखाता है। जबकि ऐसा नही है। ध्यान से बढ़कर कोई जीवन नहीं है। यह हमे रुकना या रोकना नही सिखाता, वरन् लौटना सिखाता है। वह तो यह प्रशिक्षण देता है कि इसमे गति करो। जितनी तेज रफ्तार पकड़ सको, उतनी तेज पकड़ लो। जब स्वयं मे समा जाओगे, तो स्थितप्रज्ञ बन जाओगे। जहाँ अभी हम जाना चाहते है वहाँ गये बिना ही सब कुछ जान लगे। उसकी आत्मा मे प्रतिबिम्बित होगा सारा ससार। परछाई पड़ेगी ससार के हर क्रिया कलाप की उसके घर मे पड़े आईने मे। यह असली जीवन है। यह वह जीवन है, जिसमे दौड़ धूप, दगे फसाद, आतंक उग्रवाद की लूएँ नहीं चलती। यहाँ तो होती है शान्ति, परम शान्ति सदाबहार।

आम लोग ध्यान करते है, पर उनका चित्त डावाडोल रहता है। कारण ? कारण यह है कि उन्हे घर की याद तो आने लगी है पर शत्रु का राग शत्रु का मोह उसका सम्मोहन नही टूटा है। मन के न टिकने का कारण अन्तर्द्वन्द्व है। धोबी के गधे की तरह कभी घर कभी घाट कभी

आदर्श का प्रकाश यथार्थ की राह पर

प्रश्न है सत्य आदर्शवाद मे है या यथार्थवाद मे? यदि यथार्थवाद मे है तो आदर्शवाद की इतनी महिमा क्यो और यदि आदर्शवाद मे सत्य है तो यथार्थवाद का क्या अर्थ?

मानव जीवन के दो पहलू हैं। एक तो वह जो हमे दिखाई देता है और दूसरा वह जिसे हम चाहते हैं। जो दिखाई देता है वह यथार्थवाद है। जिसे हम चाहते हैं, वह आदर्शवाद है। दिखाई तो हमे देता है जीवन दुखो से भरा हुआ, लेकिन चाहते हैं हम जीवन को परम सुखी बनाना। चाहना अलग चीज है और जो सत्य दिखाई देता है, वह अलग चीज है। जो दिखाई देता है उसमे तो हम देखते है कि चारो तरफ अन्याय अत्याचार अराजकता और अनैतिकता है। लज्जा और मर्यादा के मकड़ी-जाल के भीतर हमे व्यभिचार ही व्यभिचार दिखाई देता है। जो दिखाई देता है उसे देखकर आदमी दु खी हो जाता है। जो दिखाई देता है वह हमेशा यथार्थवाद ही होता है। किन्तु जो हमे दिखाई देता है उसके परे भी कोई चीज है। जो जीवन मे दृष्टिगोचर होता है उसके परे भी कोई स्वरूप है। इस जीवन से परे भी कोई जीवन है। इस ससार से परे भी कोई ससार है। इस पति से भी परे कोई पति है। इस सुख से परे भी कोई सुख है। यही तो है आदर्शवाद।

यथार्थवाद मे तो जहाँ फूल हैं, वहाँ काँटे भी हैं। जबकि आदर्शवाद मे केवल फूल ही फूल हैं, वहाँ काँटो का नामोनिशान भी नही है। इसलिए आदमी देखता तो है काँटो को और फूलो को—दोनो को ही लेकिन जिसे चाहता है वह केवल फूल ही फूल है। आदमी काँटे को कभी नही चाहता है। बस काँटे को न चाहना, केवल फूल को ही चाहना आदर्शवाद है। यही अन्तर है आदर्शवाद और यथार्थवाद मे।

वस्तुत मनुष्य का जीवन कटकाकीर्ण है। यह जीवन दु खो और

कष्टो मे भरा हुआ है। जन्म और मरण मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी और सबसे चरम वेदना है। जन्म और मृत्यु से बढ़कर और कोई दूसरा कष्ट नहीं है हमारे जीवन मे। हमारा जीवन तो प्रायश्चित है जन्म मरण की वेदना के रूप मे। जन्म और मरण ये जो दो वेदनाये हम भोगते हैं, जीवन उनके बीच का एक पछतावा है। और यह पछतावा करते-करते आदमी अपनी सारी जिन्दगी मे चैन की एक साँस भी नही ले पाता। जब भी देखो उसके जीवन मे आकुलता है व्याकुलता है, कष्ट आये हुए हैं, जीवन दुखो से भरा हुआ है। लेकिन इतना होते हुए भी मरना कोई नही चाहता। जन्म और मरण अपने आप मे बहुत बड़ी वेदनाएँ हैं, लेकिन आदमी यही कहता है कि जीवन तो वरदान है। वास्तव मे जीवन मिला है पश्चात्ताप करने के लिए। लेकिन वह जीवन हमारे लिए वरदान सिद्ध हो जाता है और इसीलिए आदमी दीर्घायु होने की कामना करता है। पैरो से पगु हो गया है, हाथ की अगुलियाँ सड़ रही है, मुँह से लार टपक रही है, विस्तरो पर सोये पड़े रहते हैं घर वालो के लिए केवल बोझ बने हैं, फिर भी आदमी दीर्घायु ही चाहता है।

नारी भयकर से भयकर वेदना/प्रसव वेदना सहती है। कितनी भयकर वेदना होती है प्रसव की। इसका अनुभव तो स्वय नारी ही कर सकती है। हम लोग तो केवल सुनते है। परन्तु जब सुनते और पढ़ते हैं कि प्रसव के समय कितनी वेदना होती है। ओह! उसे पढ़ते समय हम लोगो के भीतर एक चीख उठ जाती है लेकिन इतना होते हुए भी हर स्त्री अपने जीवन मे कम से कम एक बार तो गर्भवती होना ही चाहती है। किसी-न किसी प्रयास से एक पुत्र को पैदा करना ही चाहती है। वह लालायित रहती है बेटे को पाने के लिए। भले ही सहनी पड़े उसे बड़ी बड़ी वेदनाएँ। क्योंकि उसमे आशा का सचार है। आदमी रोग की शय्या पर पड़ा है, लेकिन फिर भी किसी आशा की सम्भावनाएँ लिये हुए है। गर्भवती है। प्रसव वेदना सहती है स्त्री, आशा को लिये हुए ही सहती है। बस, यह आशा का सचार ही आदर्शवाद है जीवन का।

भले ही कोई भी पहलू ले ले। भले ही काव्य साहित्य को ले ले। भारतीय जीवन मे तो आदर्शवाद की ही झलक दिखाई देगी और इसीलिए भारतीय सस्कृति आदर्शवाद को ही यथार्थवाद कहती है। काव्य के जितने लक्षण बताये गये है, वे सब-के सब वस्तुत आदर्शवादात्मक दृष्टिकोण को ही लिए हुए है। इसीलिए भारतीय काव्य भारतीय महाप्रबन्ध, भारतीय

नाटक उसका अन्त कभी भी दुखान्त नहीं होता। कोई भी नाटक महाकाव्य या महाप्रबंध ऐसा नहीं मिलता जिसका अन्त दुखान्त हुआ हो। हर नाटक का हर उपन्यास का अन्त भारत मे सुखान्त ही करते है। उसका मूल दृष्टिकोण आदर्शवाद ही है।

आजकल भारत मे जो फिल्मे चलती हैं उनमे भी हम देखते हैं कि उनका समापन भी अधिकांशतया सुखान्त ही होता है दुखान्त नही होता। शुरूआत मे दिखा देते हैं माँ के दो बेटे अलग-अलग हो गये बीच की पूरी फिल्म म दोनो भाइयो के बीच म युद्ध दिखायेगे लड़ाई दिखायेगे, संघर्ष दिखायेगे और जब फिल्म समाप्त होगी तो दोनो भाई एक दूसरे से गले मिलते हुए दिखाई देते हैं। इसीलिए भारतीय फिल्मो मे किसी भी तरह की प्रेरणा नहीं है। क्योकि जब आदमी फिल्म हाल से फिल्म देखकर निकलता है तो उसके मन मे एक खुशियाली होती है कि दोनो भाई मिल गये। उसका मूल कारण यही होता है कि भारत हमेशा आदर्शवाद के दृष्टिकोण को ही केन्द्र बिन्दु रखता है। जबकि पाश्चात्य-जगत मे विदेशो में जो भी फिल्म बनती हैं, जो भी नाटक होते हैं उनका समापन हमेशा दुखान्त ही होता है। आदमी जब फिल्म हाल से निकलता है तो पाश्चात्य लोग कहते हैं कि वह किसी-न किसी प्रेरणा को लेकर बाहर आना चाहिए। पाश्चात्य फिल्म इस तरह की होती है कि जैसे एक आदमी दूसरे आदमी के पेट मे छुरा घोपता है तो छूरा घोपने के कारण उसका कितना दुष्परिणाम उसे भोगना पड़ता है। बस, वह दुष्परिणाम भोगते भोगते ही फिल्म का समापन कर देते है। आदमी जब फिल्म देखकर बाहर निकलता है तो उसके भीतर एक विचित्र प्रकार की बेचैनी आ जाती है कि अरे/यदि मैं भी किसी के पेट मे छूरा घोपूगा तो मेरी भी यही दशा होगी। अत पाश्चात्य फिल्मो के द्वारा यथार्थवाद की झलक हमेशा दिखाई देगी और भारत हमेशा आदर्शवाद को मुख्यता देता है।

आदर्शवाद वास्तव मे भारत की उपज है और यथार्थवाद पाश्चात्य की उपज है। भारत मे आज से नही अपितु हजारो हजारो वर्षो से हमेशा आदर्शवाद की ही परम्परा रही है और पाश्चात्य-जगत मे शुरू से ही यथार्थ की राह मुख्य रही है। हम चाहे जिसके नाटक, चाहे सेक्सपीयर के नाटक चाहे जिस साहित्य को उठाकर पढ़ ले लेकिन यथार्थवाद का दृष्टिकोण ही वहाँ मुख्य होगा। भारत मे तो बडी महिमा गाते है आदर्शवाद की। शील का जैसा परिपाक भारतीय साहित्य मे मिलता है वैसा परिपाक

और कही नही मिलेगा लेकिन इसका मतलब यह नही कि पाश्चात्य जगत् जो कि आदर्शवाद की उपेक्षा करता है वह सही नही है। जो वह भारत के आदर्शवाद को केवल एक कल्पना या कबूतर कहता है और यह कह कर भारतीय आदर्शवाद की खिल्ली उडाता है वह ज्यादा सही नहीं है। आदर्शवाद मे कुछ कल्पना आ सकती है, लेकिन आदर्शवाद असत्य से भरा हुआ नही रहता, यथार्थवाद का विरोधी नही होता। शकुन्तला का प्रणय, राधा और मीरा की प्रेम भावना सीता का त्याग, राम की मर्यादा, भीष्म का ब्रह्मचर्य युद्धस्थल मे कृष्ण का उपदेश—ये सब जीवन की ठोस अनुभूतियो को व्यक्त करते है। इनको हम केवल कल्पना ही नही कह सकते। ऐसा कहना न पाश्चात्य जगत् चाहे जो कहे, क्योकि पाश्चात्य जगत् मे तो मूलत उमर खय्याम की खाओ पीओ और मौज उड़ाओ की भूमिका है। इस खाओ पीओ मौज उडाओ से ही राजनीति मे मार्क्सदर्शन पैदा हुआ और मनोविज्ञान मे फ्रॉयडवाद का जन्म हुआ था। फ्रॉयड और मार्क्स के जितने भी सिद्धात है सारे के सारे सिद्धान्तो मे काम और क्षुधा की कैसे तृप्ति हो यही बात मुख्यत मिलेगी। ठीक है काम और क्षुधा जीवन की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ है। लेकिन इसका मतलब यह तो नही कि काम और क्षुधा से परे कोई आदर्श और यथार्थ होता ही नही है।

आजकल भारत मे जो आदर्शवाद के लिए डीगे हाँकी जाती हैं वह आदर्शवाद तो बिल्कुल असत्य से भरा हुआ है। आज का जो आदर्शवाद है वह तो ऐसा बन गया है कि कहेगे कुछ और करेंगे कुछ। उसमे विकृति आ गई है।

मैने पढ़ा है कि बडौदा म जहाँ सयाजीराव गायकवाड़ की अध्यक्षता मे अहिसा पर एक सगोष्ठी आयोजित की गई थी तो सगोष्ठी मे एक युवक खड़ा हुआ और अहिसा पर भाषण देने लगा। भाषण बड़ा जोशीला था। लोग बड़े ही प्रभावित हुए कि क्या कला है आदमी के पास बोलने की। अहिसा पर एक आदमी ने कितने नये नये प्रकार के रहस्यो का उद्घाटन किया है। लोग बड़े प्रभावित हुए। वह युवक करीब आधे घण्टे बोला होगा कि अचानक उसने पाया कि उसके ललाट पर पसीना आ गया है। उसने पसीने को पोछने के लिए जेब से रुमाल निकाला। जब रुमाल निकालकर पोछने लगा तो उसे यह ध्यान नही रहा कि रुमाल मे तो वह चीज है जिसका मैं भाषण म विरोध कर रहा हूँ। वह चीज नीचे गिरी और फूट पड़ा। लोगो ने उसके ऊपर पत्थर मारे और कहा कि जो आदमी अण्डे का

विरोध करता है उसी आदमी के जेब से यदि अण्डा निकल जाये तो वह अहिंसा का आदर्श और अहिंसा का यथार्थ कहाँ रहा?

आज का आदर्शवाद और यथार्थवाद तो बड़ा ही छिछला हो गया है। पहले जमाने का जो आदर्शवाद हम पढ़ते है वह वास्तव मे यथार्थवाद से भरा हुआ था। आजकल लोग जिस साम्यभावना का विकास करवा रहे हैं,आज से सैकडो वर्ष पूर्व तो बिल्कुल ऐसी ही साम्यभावना थी। सैकडो वर्ष पूर्व एक भिक्षुक एक साधु की उतनी कद्र होती थी जितनी कि आज एक प्रधान मन्त्री की भी नही होती है। भिक्षुक जिसके पास रहने के लिए झोपडी नही पहनने के लिए कपडा नही खाने के लिए भोजन की व्यवस्था नही, लेकिन फिर भी उसके चरणो मे स्वय राजा आकर झुकता था। यही तो भारत की आदर्शवादिता है।

पाश्चात्य-जगत् मे भी यह आदर्शवादिता हमे दिखाई दे जाती है। जब रोम के नेता जिसका नाम कूरियस था सेमाइट जाति के लोग उसके पास पहुँचे और कहा कूरियस! यदि तुम हमारे पक्ष मे आ जाओ तो हम तुम्हे उतना सोना देगे जितना तुम्हारे शरीर का भार है। कूरियस उस समय खाना पका रहा था। कूरियस ने कहा कि तुम लोग कितने महामूर्ख आदमी हो कि जो कूरियस गाजर पका-पका कर अपना जीवन चला सकता है वह तुम्हारे सोने से कभी भी आकर्षित नही होगा। उसके लिए सोना और अर्थ की कीमत ही नही है। उसके लिए तो आदर्श ही बहुमूल्यवान है।

आज का जो आदर्शवाद और यथार्थवाद है वह प्राचीनकाल के आदर्शवाद और यथार्थवाद से बहुत ही विचित्र है। आज का जो यथार्थवाद है ठीक है वह बहुत सीमा तक उचित है। और इस यथार्थवाद की आज अपेक्षा भी थी। क्योकि लोग केवल आदर्शवाद को ही पकड़े हुए थे। यथार्थ क्या है लोग इससे अलग हो गये थे। लेकिन पाश्चात्य-जगत् की इस भावना को भी हम स्वीकार नही कर सकते कि भीष्म का ब्रह्मचर्य राम की मर्यादा महावीर और बुद्ध का त्याग—ये सब केवल कल्पनाये हैं। ये भी सत्य हैं। ये भी यथार्थ से पूरित आदर्श हैं।

आज के जो यथार्थवादी है उनका दृष्टिकोण मुख्यत उद्धार के लिए ही तो है फिर वह चाहे नारी हो चाहे शोषित मजदूर हो अथवा चाहे वृद्ध किसान हो लेकिन उनका उद्धार बड़ा विचित्र है। जहाँ पर आज का यथार्थवाद यह कहता है कि नारी को उसका अधिकार मिलना चाहिए। यहाँ तक तो ठीक है। लेकिन जहाँ पर यथार्थवाद यह कहता है कि नारी

केवल एक पुरुष से अधीन नहीं रह सकती। वह स्वतंत्र है जिस तरह पुरुष स्वतन्त्र है एक से अधिक नारी रखने के लिए। वहाँ पर भारती आदर्शवाद पाश्चात्य आदर्शवाद से बिल्कुल अलग हो जायेगा। आज क यथार्थवादी दृष्टिकोण कहता है—

मुक्त करो नारी को मानव! चिरबंदिनी नारी को।
युग-युग की बर्बर कारा से जननि सखी प्यारी को।।

मुक्त करो की बात तो ठीक है। जहाँ पर नारी के लिए यह क जाता है—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे है दूध और आँखो मे पानी।।

यह बात बिलकुल ठीक है। एक ओर तो आँखो से आँसू बहते है, क्योकि पुरुष केवल उसको अपनी जूती समझता है और नृशंसता व अत्याचार करता है। वहाँ पर तो यथार्थवाद की यह पुकार निश्चित रूप से नये आदर्शवाद को जन्म देगी। यथार्थवाद की जो यह पुकार है जैसे हम शोषित मजदूरो और शोषित किसानो को ही ले तो यह कहना यथार्थवाद का सही है कि एक ओर तो गरीब आदमी को खाने के लिए रोटी नही मिलती, वही पर धनिको के कुत्ते महलो मे रहते हैं और उनके खाने के लिय दूध मलाई और जलेबियाँ दी जाती हैं। गरीब को रहने के लिए झोपड़ी नही है, वही पर अमीरो के कुत्तो के रहने के लिए अच्छे-अच्छे मकान होते है। गरीब को हवा खाने के लिए हाथपँखी नही हैं, वही अमीर क कुत्तो क लिए एयरकण्डिशन लगे हुए है। गरीब को स्नान करने के लिए एक बाल्टी पानी नही मिलता अमीर के कुत्ते शैम्पू और लक्स/पियर्स साबुन से नित्य नहलाये जाते है। जहाँ पर गरीब जिन्दा है लेकिन जिन्दा होते हुए भी उसका पालन पोषण नही होता, वही पर अमीर आदमी मर जाता है तो मरने के बाद उसका शृगार किया जाता है। उसको वह रूप दिया जाता है जो कि वह जिन्दो को नही देता। यदि हम जीवित आदमी पर इतना खर्चा कर दे तो शायद उसके मरने की नौबत नही आती। लेकिन मरने के बाद हम सजाते हैं। उसका शृगार करते है। शव को भी हम रूप और रग देते है। कब्रो और स्मारको के सम्मान म जन जीवन, की उपेक्षा न तो आदर्शवाद है और न ही यथार्थवाद है। पन्त ने कहा है—

शव को दे हम रूप रग आदर मानव का
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दे शव का?

गत युग के वहु धर्म–रूढ़ि के ताज गमोहर
मानव के मोहान्ध हृदय मे किये हुए घर।
भूल गये हम जीवन का सन्देश अनश्वर--
मृतको के हैं मृतक जीवितो का है ईश्वर।

यथार्थवाद और आदर्शवाद की यही पर टक्कर होती है। यथार्थवाद और आदर्शवाद दोनो का हमे सामजस्य करना होगा। गरीब लोग ये नही कहते हैं कि हमे मोती दो। वे तो कहते हैं कि हमे रोटी दे दो। मोती तो हम तुम्हे देते हैं। कम-से-कम हमे रोटी तो दे दो। लेकिन वे लोग गरीब को रोटी भी नहीं दे पाते। आज के राजनीतिक लोगो की नजरो मे तो है मोती और कहते हैं लगोटी। गाँधी की लगोटी का आदर्श दिखाते हैं। गाँधी ने जो एक एक घर मे जाकर और आदर्शवाद की स्थापना की थी वह आदर्शवाद उनमे नही है। राजनीति मे यदि आदर्श हो तो वह राजनीति अमृत है। यथार्थ और आदर्श से रहित होकर भाषण तो दिये जा सकते है नारे तो लगाये जा सकते हैं, किन्तु वह केवल चीखना–चिल्लाना होगा।

यथार्थवाद अकेला ही शिव और सुन्दरकर नही होता है। यथार्थवाद तभी कल्याणकारी और लोकमगलकारी होता है जब वह आदर्शवाद से समन्वित होता है और इसी तरह से यथार्थ सच्चा यथार्थवाद नही होता यदि वह आदर्शवाद से समन्वित नही है। जैसे कैवरा डान्स डिस्को डान्स मे, स्ट्रीपिटरीज डान्स मे नग्नता का सौन्दर्य है। आजकल नग्नता को भी एक सौंदर्य माना जाता है। ठीक है, वह यथार्थ का ही प्रगटन है क्योकि भीतर से सभी आदमी नगे हैं लेकिन यह उनका नग्न सौदर्य आदर्श पूर्णनही है। कोई भी आदमी नग्न को देखेगा तो या तो घृणा के मारे अपनी आँखो को बन्द कर लेगा या फिर उसके भीतर मनोविकार पैदा हो जायेगे।

तो यह यथार्थवाद यथार्थ होते हुए भी लोगो के लिए अमगलकारी है। नग्न सौन्दर्य को आदर्श का आवरण देना ही होगा। अन्यथा वह यथार्थवाद समाज के लिए घातक सिद्ध हो जाता है। इसीलिए आज पाश्चात्य-जगत मे खाओ पीओ और मौज उडाओ' की निम्न भौतिक भूमिका ही रह गयी है। क्षुधा को शान्त कर लो काम पिपासा को शान्त कर लो, बस इतना सा ही रह गया है वहाँ का जीवन दर्शन वहाँ की विचार धारा। अत दोनो का सामजस्य होना चाहिए पुनरुद्धार होना चाहिये।

मैने पढ़ा है जब सिकन्दर भारत पर आक्रमण करने आया था उस समय की बात है कि सिकन्दर पोरस की राज्य-सभा मे बैठा हुआ था। दोनो बातचीत कर रहे थे। इतने मे ही दो प्रजाजन वहाँ पर पहुँचे और न्याय की

माँग की। तो एक ने कहा कि मैंने इस आदमी से एक साल पहले दस एकड़ जमीन खरीदी थी। अब बरसात का मौसम आ गया तो मैंने हल जोतवाना शुरू किया। जब हल जुत रहा था तो अचानक जमीन में से एक घड़ा निकला। वह घड़ा स्वर्ण मुद्राओं से भरा हुआ है। मैंने वह घड़ा ले जाकर इस आदमी को दिया। इससे मैंने जमीन खरीदी थी। क्योंकि मैंने तो केवल जमीन ही खरीदी थी न कि यह स्वर्ण-मुद्रा का घड़ा। इसलिए इन स्वर्ण मुहरो से भरे हुए घड़े पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। लेकिन यह आदमी घड़ा लेता ही नहीं है और कहता है कि जब जमीन मैंने बेच दिया है तो उस जमीन से यदि सोना भी निकलता है तो उस पर भी मेरा अधिकार नहीं है और उसमे यदि खेत से कुछ उगता भी नहीं है तो उससे भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। दूसरे आदमी को पोरस ने कहा कि भाई! जब वह देने को तैयार है तब तुम इस स्वर्णमुद्राओं को क्यों नहीं लेते तो उस आदमी ने कहा कि मेरा अधिकार ही नहीं है इस पर। जमीन मैंने बेच दी है। अब उसमें जो भी निकलेगा सब पर उसका अधिकार है। मैं इसको नहीं लूँगा। बड़ी समस्या आ गयी।

हम लोगो के तो स्वर्ण की मुहरे निकलती ही नहीं है और निकल जाये तो कोई किसी को खबर ही नहीं देता। जबकि पोरस के सामने दो व्यक्ति ऐसे खड़े है जिसमे एक कहता है कि स्वर्णमुहरो से भरा घड़ा मैं नहीं लूँगा और दूसरे ने कहा कि मैं नहीं लूँगा। उसके सामने बड़ी विचित्र समस्या है। सिकन्दर ने सोचा पोरस इसका कैसा न्याय करता है। मैं भारत के आदर्शवाद के बारे मे काफी सुन चुका हूँ। आदर्श प्रजाजन मैं तो देख रहा हूँ राजा में कैसा आदर्शवाद है यह अब देखने जैसा है। पोरस ने दोनों से पूछा कि क्या तुम्हारे कोई सन्तान है? एक ने कहा हाँ, मेरे एक पुत्र है। दूसरे ने कहा कि मेरे एक पुत्री है। पोरस ने कहा कि तब एक काम करो और वह यह कि तुम दोनो अपनी सन्तानो का परस्पर विवाह करवा दो और दहेज के रूप में यह धन का घड़ा दे दो। सिकन्दर चकित था। इसे कहते है यथार्थ आदर्शवाद।

यथार्थ का आदर्शात्मक और आदर्श का यथार्थात्मक प्रस्तुतिकरण कितने सुन्दर ढंग से हुआ है। आज भी ऐसा ही दृष्टिकोण जरूरी है। सत्य [illegible] यथार्थवाद में है किन्तु वह यथार्थवाद किस काम का जो आदर्श शून्य हो और वह आदर्श भी नकाम है जो यथार्थ की [illegible] कर दे। यथार्थ की आदर्शात्मक अभिव्यक्ति होनी चाहिए। इसी तरह आदर्श की भी यथार्थ परक [illegible] अभिव्यक्ति होनी चाहिए। सत्य तो है यथार्थ और आदर्श के समन्वय में। [illegible] शिव और सुन्दर [illegible] है।•

असस्कृत किसकी शरण लेगे?

जिन-सस्कृति से मुझे प्रेम है। प्रेम इसलिए क्योकि जिन सस्कृति बडी मानवोचित है। ब्राह्मण-सस्कृति और जिन-सस्कृति मे जो मूलत भेद है वह यही है कि ब्राह्मण-सस्कृति उतनी मानवोचित नही है जितनी जिन सस्कृति है। ब्राह्मण-सस्कृति जब भी धर्म का विकास करना हो मानव जाति का उत्थान करना हो सदाचार का बीजारोपण करना हो सद्विचार की मशाल जलानी हो उस समय भगवान का अवतार करवाती है। चौबीस अवतार हुए राम अवतरित हुए, कृष्ण अवतरित हुए यानी कि ऊपर से नीचे आये। ऊपर से नीचे आना यानी कि पहले भगवान थे अब मनुष्य बने। जिन-सस्कृति नीचे से ऊपर ले जाती है। जो व्यक्ति पहले मनुष्य होता है उसको वह भगवान बनाती है। ब्राह्मण-सस्कृति और जैन-सस्कृति के बीच मूलत भेद यही है। हालाकि महावीर का जीव तीर्थंकरो के जीव देव-लोक से पृथ्वी लोक मे अवतरित होते हैं मगर वह उसको च्यवन कहती है न कि उसको अवतार कहती है। वहाँ से च्युति होती है। उन्होने केवल इतना ही शब्द का प्रयोग किया च्यवन। जिन सस्कृति यह शब्द प्रयोग कर सकती थी 'अवतार' मगर नही किया। क्योकि जैन जानते थे कि अवतरण तो परमात्मा का होता है। अवतार हो जायेगा मगर ऊर्ध्वारोहण नही हो पाएगा।

अवतरण और ऊर्ध्वारोहण दोनो मे बडा भारी फर्क है। एक मे तो व्यक्ति जो शिखर पर चढा हुआ है वह शिखर पर से नीचे आता है और दूसरे मे आदमी जो नीचे खडा है वह शिखर की चढाई करता है। हिलेरी और तैनसिंह ने एवरेस्ट की चढाई की। चढाई करना, ऊपर चढना यही खास बात है। ऊपर से नीचे आना कोई खास बात नही है। आदमी ऊपर खडा है एक धक्का मारा तो वह नीचे चला आयेगा अपने आप, मगर यदि

नीचे खड़ा है तो उसे भी घूँसा मार दो, भी धक्का दे दो, मगर वह ऊपर नहीं चढ़ सकता। साधना भी नीचे से ऊपर चढ़ने की होती है न कि ऊपर से नीचे आने की। नीचे से ऊपर चढ़ना ही साधना है।

गगा गगोत्री से सागर की ओर सहजतया बह सकती है, किन्तु सागर से गगोत्री की यात्रा—इसी का नाम है साधना, विकास की यात्रा। गगोत्री से सागर की यात्रा—यह है अवतार। दोनो विपरीत यात्रा है। इसीलिये जिन सस्कृति के प्रवर्तकों और तीर्थंकरो ने अवतार नही लिया, वे ऊपर से नीचे नही आये। वे नीचे से ऊपर गये और ऐसे ऊपर गये कि फिर ऊपर से नीचे नही आयेंगे। इसका मूल कारण यह है कि सारे के सारे तीर्थंकर एक मनुष्य थे। सीधे सादे एक प्राणी थे। उन्होंने मनुष्यत्व के भीतर ही उन्नति के सूर्योदय का प्रकाश फैलाया था। पहले वे मनुष्य थे, बाद मे वे भगवान बने। यही तो विशिष्ट बात है और महिमा से भरी हुई बात है।

इसीलिए जब राम ने उपदेश दिया, कृष्ण ने उपदेश दिया तो उनके उपदेशो से असख्य-असख्य लोग प्रभावित नही हुए, मगर महावीर से हुए। कृष्ण ने अर्जुन को बोध दिया, एक अकेले वीर को एक व्यक्ति को बोध दिया, जिससे वे भगवान कहलाये। राम ने हनुमान विभीषण आदि कुछेक अपने सहचरो को ही उपदेश की बाते बताई, और ईश्वर कहलाये। किन्तु जिन सस्कृति की परम्परा काफी गरिमा-पूर्ण है कि इसके तीर्थंकरो ने असख्य-असख्य लोगो को जगाया, उठाया और साधनारूढ किया। राम, कृष्ण आदि ने भी लोगो को प्रेरणा दी होगी, मगर उल्लेख तो नही मिलता।

कृष्ण आदि परमात्माओ के कर्म तो अलौकिक हैं। उनके कर्म मानवोचित नही लगते, इसीलिए उनके कर्मों के प्रति जनता की आस्था झट से नही होती। यह तो उनका एक अद्‌भुत प्रदर्शन है एक अद्‌भुत लीला है, अद्‌भुत जादू है। लोग सुनते है तो चकरा जाते है। बस फिर उसे दिव्य कर्म समझकर दूर से ही नमस्कार कर लेते हैं।

जिन सस्कृति मे जो तीर्थंकर हुए उनके कर्म आचरणीय थे। हाथ कगन को आरसी क्या, प्रत्यक्ष दिखते थे। कल्पना की हवाई उड़ाने वहाँ नही थी। इसलिए श्रद्धालु मुमुक्षुओ एव जिज्ञासुओ की श्रद्धा उनके प्रति अधिक हो जाती। लोग उनके पास पहुँचते और मार्गदर्शन पाते।

कृष्ण के कर्म मानवीय शक्तियो से ऊँचे थे। जन्म होते ही पहरेदारो का निद्रित हो जाना कारागृह के ताले स्वत खुल जाना, अपने पिता को आदेश देना कि मुझे गोकुल मे पहुँचा दो और वहाँ से यशोदा की नवजात

कन्या को यहाँ लाओ। इसी तरह उमडी हुई यमुना का रास्ते मे सूख जाना, पूतना-वध, शकटासुर अघासुर वक्रासुर आदि का वध कालिय-दमन, जमलार्जुन निपात कस के बलिष्ठ पहलवानो को पछाड़ना कुवलयापीड हाथी के दाँत उखाड लेना मच से अपने मामा कस को खीचकर पछाडना तथा अर्जुन को विराट रूप दरशाना—ये सब मनुष्यो के द्वारा अनाचरणीय है, आचरण शक्य नही हैं। ये ईश्वरीय कर्म है। मगर महावीर ने, जिन सस्कृति ने जो प्रभावना की, वह मानवोचित ढग से की।

महावीर से लोग इसलिये प्रभावित हुए कि वे मनुष्य से ईश्वर बने थे और राम ईश्वर से मनुष्य बने थे। इस भेद को आप थोडा सा समझ कि ईश्वर से मनुष्य बनना यह तो अवनति वाली बात है और मनुष्य से ईश्वर बनना यही तो महिमामण्डित उन्नतिवाली बात है। राम का चरित्र कृष्ण का चरित्र तो ठीक है, ईश्वर थे। ईश्वर मे महिमा तो होगी ही। मगर जब कोई किसी मनुष्य की महिमा गाता है तो यह महिमापूर्ण बात होती है। महावीर मनुष्य थे। उनके कर्म मानवोचित थे, इसीलिये लाखो लोग उनके प्रति आकर्पित हुए थे।

महावीर मे एक और विशेषता थी कि उन्होने जो बाते कही ईश्वर बन करके नही एक मनुष्य बन करके कही। यदि वे ईश्वर बन करके कहते अपनी बातो को तो उनके भी कृष्ण जैसी रासलीला होती गीता जैसे ग्रन्थ रचे जाते। वे भी अपना ईश्वर का विराट रूप दिखाते अपने मायाजाल को दिखाते, अर्जुन जैसे लोगो को प्रभावित करते। कृष्ण ने अर्जुन को प्रभावित किया अर्जुन को उत्साहित किया। कैसे? यदि कृष्ण सामान्य मनुष्य होते तो वे कभी भी अर्जुन को प्रभावित नही कर पाते। अर्जुन तो फिसल गया। जैसे पैर के नीचे केले का छिलका आ जाये और आदमी फिसलता है वैसे ही अर्जुन फिसल गया युद्ध के मैदान से। कृष्ण ने ईश्वरत्व को दिखाया। कहा कि देखो मैं ऐसा व्यक्ति हूँ। अपनी रास-लीला दिखायी अपने भव्य रूप को दिखाया। अर्जुन प्रभावित कृष्ण से नही हुआ, कृष्ण के मायाजाल एव विराट रूप से प्रभावित हुआ।

अर्जुन प्रभावित कृष्ण से नही हुआ, उनके ईश्वरत्व से हुआ। मगर गौतम जैसा ब्राह्मण न तो समवशरण से प्रभावित हुआ न देवो से प्रभावित हुआ। वह यदि प्रभावित हुआ तो सत्य-दर्शन से प्रभावित हुआ। महावीर ने अपने जीवन मे कभी भी नही दिखाया कि मैं ईश्वर हूँ। लेकिन कृष्ण ने अपने सारे जीवन मे यह दिखाया कि मैं ईश्वर हूँ। फिर भी महावीर ने

अनेक राजाओ का, अनेक ब्राह्मणो को अपने उपदेश मे ले लिया स्वय कृष्ण भी नही ले पाये। कृष्ण के पास इतनी ताकत थी कि वह महाभारत का युद्ध रोक सके। पर वे रोक न पाये। मगर महावीर म वह ताकत थी कि गौतम जैसे लोगो को भटकते हुए लोगो को सन्मार्ग पर ला सके। कृष्ण ने अर्जुन को सन्मार्ग दिखाया मगर फल क्या दिया? मुकाबला और उसके बल पर राज्य। महावीर ने गौतम को सन्मार्ग दिखाया। फल क्या दिया? मुक्ति का, कैवल्य का यह बडा भारी फर्क हुआ।

इसीलिए मुझसे तो सच पूछो तो साधना म महावीर से बढ़कर कोई और नही है क्योकि उन्होने ऊर्ध्वारोहण किया आत्म विकास किया। वे कोई बात कहते तो अपने अनुभव की कहते। वे कोई आडम्बर नहीं दिखाते। जो सच्चा है उसी को प्रकट करते थे। वे जनसाधारण से ज्यादा जुड़े थे। उनके दुखो को उन्होने अनुभव किया था। जगत के जीवो की दुख की गाथाएँ उन्होने मनोयोगपूर्वक सुनी थी। वे जानते है कि हम दुख भोग रहे हैं। महावीर ने कहा कि तू दुखी है। महावीर ने क्यो कहा कि तू दुखी है? क्योकि उनका अनुभव है कि मै भी मनुष्य रहा हूँ। जो तुम मे बीत रही है वही मुझमे बीती है, प्राणिमात्र म बीती है। तभी तो महाकरुणा का जन्म होगा। जनसाधारण पीड़ा की अग्नि म झुलस रहा है। महावीर नवनीत हैं। वे पिघल गये। परदुख द्रवै सो सन्त पुनीता।' पुनीत सत है महावीर। महावीर हमारी पीड़ा को जानते है हमारी व्याकुलता को समझते हैं हमारी तड़पन को बूझते है हमारे सकल्प को अनुभव करते है। हमारे भटकाव का उन्हे बोध है। इसीलिए जब वे बोलते हैं तो वे एक मनुष्य बनकर बोलते है। जैसा होता है वैसा ही कहते हैं।

जब महावीर के पास बहुत से लोग पहुँचते तो वे देखते है कि महावीर तो बिल्कुल नग्न आदमी है। लोग उनके पास पहुँचते कुछ भी नहीं मिलता मगर वे जो बात कहते वह सीधी हृदय को छूने वाली होती मर्मस्पर्शी। हालाँकि बहुत से लोग भटके भी थे। जब लोग पहुँचते तो देखते कि महावीर तो वही बात कह रहे है जो हम अपने जीवन म अनुभव करते है। महावीर कहते है मनुष्य दुखी है। तू दुखमय है किसकी शरण लेगा। लोग पहुँचते सुनते कि अरे हम तो दुख से छुटकारा पाने के लिए महावीर के पास आये मगर महावीर तो वही पुनरावृत्ति करते है। दुख दुख दुख। [illegible] अरे [illegible] है। मगर महावीर कहते है कि तुम्हे एक बार [illegible] दुख [illegible] की मुक्ति [illegible]। जब मै कहूँगा कि दु

पहली बात कही कि जीवन साधा नही जा सकता। बात बिल्कुल ठीक है। इसलिए ठीक है क्योकि जो लकडी टूट गई है उसे फिर हम जोड़ेगे कैसे। जो खिलौना टूट गया है उसको फिर हम साँधेगे कैसे? जो धागा टूट गया है फिर उसको हम मिलायेगे कैसे? एक बार जो टूट गया जिसका एक बार सम्बन्ध विच्छेद हो गया उसको जोडा नही जा सकता है। नया धागा ले सकते है। नया खिलौना खरीद सकते है। नयी लकडी ला सकते है। मगर जो टूट गया है उसको साधा नहीं जा सकता। जो टूट जाता है, उसका साधना बडा मुश्किल है, अशक्य है।

एक कविता है। कविता क्या है, इसी सूत्र का रूपान्तरण जैसा है। कविता है—

जीवन एक खिलौना है, जो नही टूटने पर है जुडता।
जरा पन्थ पर निश्चित मिलती, बचकर चला नही जा सकता।।
जो प्रमत्त है, जो हिंसक है बिन सयम का जीवन जिनका।
विश्व- सिन्धु मे आश्रय हेतु उनको कब मिलता है तिनका?

जीवन तो एक तरह का खिलौना है। यदि एक बार टूट गया तो वापस जुडने वाला नही है। सिकन्दर ने बहुत प्रयास किया। बहुत प्रयास किया जीवन को साँधने का मगर एक बार जीवन टूट गया तो फिर उसको साँधना बडा मुश्किल है। मुश्किल क्या वह जुड़ ही नही सकता। सिकन्दर ने डाक्टरो से कहा कि डाक्टरो! मै मर रहा हूँ यह बात तो ठीक है मगर मेरी एक इच्छा है कि मै मरने से पहले अपनी माँ का दर्शन कर लूँ। डाक्टरो ने कहा सम्राट! यदि तुम मृत्यु के गोद मे सो गये तो फिर दुनिया मे किसी की ताकत नही है कि मरने के बाद तुम्हे वापस जीवन दे सके। सिकन्दर ने डाक्टरो से कहा मै तुम्हे इतना सोना दूँगा जितना कि मेरे शरीर का भार है। डाक्टरो ने कहा कि दुनिया के हर काम मे रिश्वत चल सकती है दुनियाँ के हर काम मे धन का उपयोग किया जा सकता है धन मे सुरक्षा की जा सकती है मगर मृत्यु की शरण पाने के बाद कोई भी नहीं बचा सकता। तुम पहले इस बात का ध्यान रख लो। सिकन्दर ने कहा कि देखो मै मर रहा हूँ लेकिन मेरी इच्छा मन मे ही रह रही है। अच्छा, मै तुम्हे अपना आधा साम्राज्य दे दूँगा। डाक्टरो ने कहा सचमुच सिकन्दर! यही भूल है। तूने राज्य तो पा लिया मगर तूने किसी की शरण नही पायी। राज्य तुम्हे उबार नही पायेगा। जबकि तुम्हारा जीवन टूट रहा है। तुम चाहे सारा ससार तीनो लोको का राज्य दे दो मगर टूटे जीवन को कभी

साँधा नही जा सक्ता। सिकन्दर मर की मर मे से गया। इसीलिए सिकन्दर की जो कब्र है उस पर यही बात लिखी हुई है कि सिकन्दर ने सारे साम्राज्य पर, सारे लोको पर विजय पायी मगर मृत्यु पर विजय न पा सका।

वास्तव मे जब कोई टूट रहा है तो फिर उसको साँधने की हिम्मत भी किसके पास है। आदमी मर रहा है तो मरेगा ही कोई नही बचा सक्ता। यदि जीवन है तो तुम लाख प्रयत्न कर लो उसे मारने का फिर भी वह बच जायेगा। जैसे एक आदमी दूसरे आदमी को जहर देता है मारने के लिए। मारने के लिए जहर देता है मगर जहर खाने से वह आदमी और जिन्दा हो जाता है उसे जीवन दान मिल जाता है। विष वरदान सिद्ध हो जाता है। वह जहर तो उसके लिए दवा का काम कर जाता हैं। आदमी यदि मरना चाहता है किन्तु उसका आयुष्य है तो वह कभी नही मर सकता। इसीलिए तो कहा गया है 'जाको राखे साइयाँ मार सके न कोय'। जिसका जीवन है उसको कोई तोड नही सकता और टूट जाने के बाद फिर उसको कोई जोड़ नही सकता।

जैनो मे जो रामायण प्रचलित है उसमे एक बहुत अच्छी घटना है राम और लक्ष्मण के बारे मे। देवताओ के बीच एक बार यह प्रसग चला कि दुनियाँ मे सबसे ज्यादा भ्रातृ प्रेम किसम है। तो देवेन्द्र ने कहा कि दुनियाँ मे सबसे ज्यादा भ्रातृ प्रेम राम और लक्ष्मण के बीच मे है। एक देवता को यह बात जँची नही। वह तुरन्त रवाना हो गया और पहुँचा भूमि लोक पर उसने राम के भीतर प्रवेश किया, उनके शरीर के भीतर। राम को बेहाश कर दिया। लोगो ने पाया राम तो मर चुके हैं। जब लक्ष्मण को यह सन्देश मिला कि मेरा भाई मर चुका है तो लक्ष्मण ने सोचा कि जब मेरा भाई मर चुका है तो मैं जिन्दा रहकर क्या करूँगा। उसने उसी समय अपने प्राण त्याग दिये। जो देवता राम के भीतर प्रविष्ट हुआ था वह घबडा गया कि मैं तो परीक्षा लेने के लिये आया था, मगर लक्ष्मण ने तो प्राण ही त्याग दिये। यदि अब मैं यहाँ पर रहूँगा तो, मेरी सिट्टी पिट्टी एक हो जायेगी। वह राम के शरीर से निकलकर भाग गया। राम को होश आया। राम ने देखा कि लक्ष्मण मर चुका है। लोगो ने कहा कि लक्ष्मण मर चुके है, किन्तु राम ने कहा नही। मेरा भाई कभी भी मर नही सक्ता मुझको छोडकर। नही यह मरा नही हैं। यह बीमार हो गया है बेहोश हो गया है। जब रावण के साथ लक्ष्मण ने युद्ध किया था उस समय भी लक्ष्मण बेहाश हो

गया था लेकिन मरा नहीं था। आज भी लक्ष्मण मरा नहीं है बेहोश हो गया है।

राम ने लक्ष्मण को अपने कन्धो पर उठाया और चले गये वैद्यराजो के पास और कहा कि इसको होश म लाओ। वैद्यराज उदासीपूर्वक कहते नरेश राम। लक्ष्मण का देहान्त हो गया है। तो राम बड़े गुस्से मे आ जाते। कहते कि तुम ऐसा अशुभ व दुर्वचन निकालते हो? लक्ष्मण कभी मर ही नहीं सकता। वह अमर है। दोनो भाइयो का प्रेम कभी भी नही मिट सकता। बताते है कि छह महीने तक लगातार अपने हाथो पर लिये प्रत्येक शहर मे गये राम और एक एक वैद्यराजो को कहा कि इसको होश मे लाओ।

बड़ी दुर्गन्ध आती थी। फिर भी राम के भीतर भ्रातृ प्रेम था। वे कहते नही नही, लक्ष्मण अभी भी जीवित है। जब राम भोजन करने बैठते तब लक्ष्मण के मुख मे कौर डालते और कहते, लो लक्ष्मण। खा लो न। तुम मुझसे नाराज क्यो हो? मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ, पिता के समान हूँ। तुम मुझसे रूठो मत। लो खा लो न भोजन कर लो। लेकिन क्या मरा हुआ आदमी भोजन करेगा? ऐसे ही छ महीने बीत गये।

एक साधु ने देखी यह परिस्थिति। वह साधु पहुँचा राम के पास। आकर कहा राम! मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। राम। मेरी य टूटी लकड़ी लो इसको जरा जोड़ तो दो। राम ने कहा अरे। यह तो लकड़ी टूट चुकी है। इसको मैं कैसे जोड़ू? साधु ने कहा राम। मैं बहुत ही आशाओ को लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। तुम भगवान हो महाराजा हो इस लकड़ी को जोड़ दो। राम ने कहा साधु। यह लकड़ी तो जुड़ नही सकती। यदि तुम कहो तो पेड़ पर से नयी लकड़ी तोड़कर ला दूँ। साधु ने कहा कि नही नही मुझे तो इसी लकड़ी को साध दो मुझे नयी लकड़ी नही चाहिए। मुझे तो इसी लकड़ी से प्रेम है। इसके बिना मैं नही रह सकता। यह मेरी विरासत है। राम ने कहा अरे। साधु तो बड़ा ज्ञानी होता है, मगर तू जो अव्वल दर्जे का मूढ़ है। मूढ़ इसलिए कि जो लकड़ी टूट चुकी है अब कैसे जुड़ेगी?

अब की बार साधु हँसा। उसने कहा कि मैं सोचता था कि राम मूढ़ है किन्तु तुम्हारी बातो से तुम बहुत समझदार सिद्ध होते हो। बस यही कहलवाने के लिए आया था कि यदि तुम्हारा भाई मर चुका है तो तुम लाख प्रयत्न कर लो अब वह जीवित नहीं हो सकता। भला जब टूटी लकड़ी जुड़ नहीं सकती तो मृतक वापस जीवन से कैसे जुड़ पायेगा? यदि एक बार टूट गया धागा जीवन का यदि जीवन की सांसो की डोर एक बार भी

छिन्न भिन्न हो गयी तो फिर वह ढेर वापस न जुड़ी पाती नहीं है। इसलिए यह जीवन कभी भी साधा नहीं जा सकता।

जीवन तो एक न एक दिन अवश्य टूटेगा। फूल खिलता है तो मुरझाता भी है। सूरज उगता है तो अस्त भी होता है। जहाँ संयोग है वहाँ वियोग है। जहाँ जन्म है वहाँ मृत्यु है। जितना उतना संयोग सम्बन्ध सब तो अल्पस्थ है। हर चीज अन्तत समाप्त हो जाती है। मिट्टी की काया मिट्टी म मिल जाती है।

न रहता भौरो का आह्वान
नहीं रहता फूलो का राज्य
कोकिला होती अन्तर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज
असम्भव है चिर सम्मेलन
न भूलो क्षणभंगुर जीवन।

महादेवी की कविता है यह। कितनी प्यारी पंक्तियाँ है! असम्भव है चिर सम्मेलन न भूलो क्षणभंगुर जीवन'। कुछ भी नहीं बचता। सब खतम हो जाता है भौरो का आह्वान कोकिला का स्वर बसन्त का मौसम—कुछ भी तो नहीं टिकता है यहाँ। इसी का नाम संसार है।

जहाँ आविष्कार-अवसान का क्रम गतिमान है वही संसार है। संसार संसरणशील है। टिकता नहीं यही इसका स्वरूप है जो टिक जाये वह तालाब है। जो बहता रहे वह सरिता है संसार है। जो धारा बहकर आगे निकल गयी उसको वापस बुलाया नहीं जा सकता। बौद्धो का जो सिद्धान्त है क्षणिकवाद—इस सन्दर्भ मे काफी महत्त्वपूर्ण है। क्षणिकवाद यानी क्षण-क्षण विनाश हो रहा है नदी की धारा बही चली जा रही है। दीपशिखा की लौ खतम होती जा रही है। पल पल रूपान्तरित होती है। जैसे ही दीपक का तेल खतम हो गया या हवा का झोका आ गया दीपक बुझ जायेगा। बुझे दीपक मे फिर लौ कैसी! रूठे देव को प्रसन्न किया जा सकता है उसे बुलाया जा सकता है पर टूटे को साँधा नही जा सकता। यह शाश्वत धर्म है। विज्ञान सब कुछ सम्भव कर दिखायेगा, किन्तु जीवन को साधना उसके वश के बाहर है। सचमुच जीवन साँधा नही जा सकता।

महावीर कहते है कि जीवन साँधा नही जा सकता। इसलिए प्रमाद मत करो। बहुत अच्छी बात कही परम सत्य भरी हुई। क्योकि लोग प्राय जगते हैं मृत्यु के समय या उसके बाद। परन्तु वह जगा हुआ किस काम

था। जब किसी का हाथ जल जाता है उस समय उसको यह शिक्षा दी जाती है कि देखो! मेरे पिता ने कहा था कि आग में कभी हाथ मत डालना। आग में हाथ डाला उसके बाद यदि स्मरण हो जाता कि आग में हाथ मत डालना। जल जायेगा तब तो वह बच जाता। आग में हाथ चले जाने के बाद याद आता है कि आग में हाथ मत डालना। तब तो वह बेकार हो गया। पिता की शिक्षा बेकार हो गयी। लोग जीवन रहते नहीं जगते। जब जीवन टूटने को आता है तब जगने शुरू होते हैं। मगर कृषि सूखने के बाद वर्षा किस काम की? तब पछताये क्या होय जब चिड़िया चुग गई खेत। पंछी जब खेत को चुग लेते हैं, उसके बाद उनको उड़ाने के लिये दौड़ना कितना सार्थक है यह आप सब समझ सकते हैं। इसलिए जीवन में अप्रमत्तता चाहिये। जीवन किसी भी क्षण मृत्यु में परिणत हो सकता है। एक लड़का पतंग उड़ा रहा है। दस लड़के और पतंग उड़ा रहे हैं। पता नहीं पतंग कब कट जायेगी किसी भी क्षण कट सकती है पतंग। आपका फूल खिला है। पता नहीं कब कोई माली आकर इस फूल को तोड़ ले जाये। या पता नहीं यह फूल कब मुरझा जाये। फूल के मुरझाने से पहले तुम जगो। एक क्षण का भी प्रमाद मत करो। नाव के उदय और अस्त होने के बीच ज्योति का लाभ उठा लो। सूर्यास्त से पहले निधि को ढूंढ लो। अन्धकार की पकड़ से पहले मृत्युग्रस्त होने से पूर्व जीवन का, प्रकाश का उपयोग कर लो। इसलिये समयं गोयम मा पमायए'—क्षण भर भी प्रमाद मत करो।

दुमपत्तए पण्डुयए जहा निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं समयं गोयम! मा पमायए।।

पेड़ के पीले पत्ता की तरह यह मनुष्य जीवन है। इसलिए प्रमाद मत करो। यही महावीर का उपदेश है।

मैंने सुना है एक घर में चार चोर घुसे। कुछ खट-खट हुई, खट खट की आवाज होते ही पत्नी जग गई। पत्नी ने पति को कहा, अजी! जगिये जी। घर में चोर आये हैं। जगिये जगिये। पति आश्चर्य से बोलता है–चोर घर में घुस आये हैं। अच्छा मैं अभी जगता हूँ। पर वह उठा नहीं। लेटे लेटे ही उसने जवाब दे दिया।

पत्नी ने कहा देखिये चोर तिजोरी वाले कमरे तक पहुँच गए हैं। अब तो जगिये जी। पति ने कहा हाँ हाँ जग रहा हूँ। एक मिनट के बाद देखा कि चोरों ने तो तिजोरी तोड़ दी है। धन निकाल रहे हैं। पत्नी ने कहा अजी! अब तो जगिये देखिए चोरों ने धन निकाल लिया है तिजोरी से।

अरे! अब तो वे जा रहे हैं। जगिये जगिये देखिए न बचाइये न!

पति ने कहा बस मैं अब तो एक मिनट मे जगने वाला हूँ।

इतने मे पत्नी देखा कि चोर तो धन को लेकर रवाना हो चुके हैं। भाग रहे हैं। तो उसने पति से पुन कहा अब तो जग जाइये चिल्ला लीजिए। लोगो को बुला लीजिये। अभी भी धन को बचा लीजिए। पति ने कहा, यह लो अब मैं जग गया। यह कहते हुए वह अगडाई लेने लगा। पत्नी ने अपने सिर पर हाथ मारा और कहा कि अब तो आप और सो जाइये। अब इस जगने मे कोई फायदा नही हैं। धन को अब चोर ले जा चुके हैं। अब आप जग रहे हैं तो यह जगना कोई जगना नही हुआ।

इसी तरह यदि आदमी पहले जग जाय तब तो वह जीवन का धन बचा सकता है। यदि जीवन का धन चोरी हो जाय ओर उसके बाद वह जगता है, तो उसका जगना कोई जगना नही हुआ। भगवान करे वह हमेशा के लिए सोया रहे। जगना हो तो उस समय जगो जबकि जीवन टूटा न हो। महावीर स्वामी कहते हैं कि प्रमाद मत करो। अपने जीवन के धन को बचा लो। अपने गुलाब के फूल को खिलाया है तो उसकी कीमत आक लो, उसका सौरभ पा लो। जो मनुष्य-जन्म का हीरा पाया है उसको कही सोये सोये मत खो देना। किसी चोर से मत छिनवा देना। जगो प्रमाद मत करना। उठो जगो कर्तव्य-पथ पर चल पडो। सतत् जाग्रत रहो। लक्ष्य सध जाय, वीणा के तार जुड़ जाय सगीत झकृत हो उठे—ऐसा प्रयास करो।

युवक हो, यौवन मे धर्म को जोडो यौवन काम भोग मे खोने की चीज नही है। यौवन ऊर्जा पुज का प्रतीक है। और धर्माचरण मे ऊर्जा ही अपेक्षित है। जो अपनी ऊर्जा को शुरु से ही अध्यात्म म जोड़ देता है वह अपनी प्राप्त ऊर्जा का पूरी तरह सदुपयोग कर लेता है।

बुढ़ापा आने पर कोई शरण नही हैं। 'जरोवणीयस्स हु नत्थि ताण। जरा आने पर कोई त्राण नही है। गात शिथिल होने के बाद कोई तैर नही सकता भवसागर को और उस समय यानी बुढ़ापे मे कोई शरण भी तो नहीं होता है। यह अनुभूति की बात कही है महावीर ने। बुढ़ापा आने पर कोई शरण नही होता। बुढ़ापा यानी कि जेलखाना। बुढ़ापा को मैं जेलखाना कहता हूँ। पैर बँध गया, हिलता नही। हाथ चलता नहीं बूढा हो गया है। अब किसी काम का नही। तब इनमे कोई शरण नही होता। आप यो समझिये जैसे आप प्याज का छिलका उतारिये, उतारते जाइये पीछे क्या बचेगा? पीछे कुछ भी नही बचेगा। मृत्यु बचेगी, शून्य बचेगा बुढ़ापा बचेगा। बुढ़ापे मे कोई शरण नही होता, यदि सारे छिलके उतर गए। हम

[illegible] है। [illegible]
[illegible] और [illegible] है। [illegible]
[illegible] है। [illegible]
[illegible] है। कोई विशेष परिणाम की [illegible]
[illegible]

[illegible] कि धर्माचरण वृद्धावस्था मे सरलता [illegible]
होता है। बात ठीक है मै भी मानता हूँ कि वृद्धावस्था मे धर्माचर[illegible]
सरलता से होता है पर सफलता से होता है यह नही कहा जा सकता [illegible]
सफलता से धर्माचरण तो कैशोर और यौवन काल मे हो सकता है।

बुढ़ापा तो शरीर की वह अवस्था है जब शरीर के साथ उसकी सारी
शक्तियाँ क्षय होने को होती है। नयी आस्था और नया विश्राम ग्रहण करने
मे वह असमर्थ जैसा रहता है। ठीक वैसे ही जैसे कोई पका हुआ घड़ा अन्य
रूप म परिवर्तन ग्रहण करने म असमर्थ होता है। उस समय शरीर अनेक
व्याधियो से आक्रान्त रहता है। स्वस्थता की कमी रहती है। यह बात पक्की
है कि स्वस्थ शरीर हो तो ही स्वस्थ मस्तिष्क रह सकता है। और स्वस्थ
मस्तिष्क के बिना धार्मिक साधनाएँ दुष्कर और असम्भव सी है।

अत धार्मिक भावना का बीजारोपण जीवन की किशोरावस्था की
उर्वरभूमि मे ही हो जाय ता वह बुढ़ापे मे लहलहाता हुआ वृक्ष का रूप
धारण कर लेता है जहाँ जीवन शीतल छाया मे रहता है। ध्यान ज्ञान के
पुष्पो की सुरभि उसके वातावरण को सुरभित कर देती है। महका उठता है
जीवन धरातल। उसे जीवन का मूल्य मिल जाता है। मीठे मीठे फलो की
सेवा से वह अमृतपन को पाता है। ऐसा जो बुढ़ापा होता है वही समादृत
होता है। वही शरणभूत होता है। वही प्रतिष्ठादायक होता है । अन्यथा
बुढ़ापे मे क्या हालत होती है सब जानते है। न कोई शरण न कोई
प्रतिष्ठा न कोइ गति न कोई सहचर और न कोई सहायक। बस, उपेक्षा
ही उपेक्षा मिलती है। उसकी सारी अपेक्षाएँ उपेक्षित हो जाती है। फलत
वह चिड़ चिड़ाता है गुस्सा करता है और इस तरह वह अपने को पतन के
गर्त मे गिरा बैठता है।

इसका मतलब यह नही कि मै वृद्धावस्था की गर्हा करता हूँ। वृद्धता
से मेरा कोई वैर नही है। वृद्धता तो प्रत्येक जीवन म अवश्यम्भावी है। पर

मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप लोग अभी जिस अवस्था मे है बाल्यावस्था युवावस्था या प्रौढावस्था—जैसी भी अवस्था म है उसी अवस्था मे धर्माचरण मे प्रवृत्त हो जाये। धर्माचरण म जितना समय अधिक से अधिक लगाएँ उतना ही समय का आप उपयोग करगे। यह कभी न सोचे कि अभी तो हम युवक है। जीवन बहुत बाकी पड़ा है। पीछे कर लेगे। जो ऐसा सोचते हैं वे प्रमादी हैं। जीवन की अर्थवत्ता उनके द्वारा अलभ्य है।

अरे! आप देखिये कि आज तक जितने भी महापुरुष हुए सबके सब शैशव से ही यौवन से ही अपने कर्तव्य पथ पर चल पड़े थे। महावीर ने ३० वर्ष की आयु मे ही अभिनिष्क्रमण कर दिया था। मानसपुत्र सनत्कुमार ने अपने शैशवकाल से ही दीक्षा ले ली थी। देवर्षि नारद की भी यही हालत है। आदि शकराचार्य ने भी आठ वर्ष की आयु मे ही गृहत्याग किया था और सन्यस्त हो गए। राम कृष्ण आदि सभी अवतारो के और तीर्थंकरो के जीवन चरित्र से भी यही सकेत मिलता है कि जीवन की प्रारम्भिक अवस्था ही उनके लिए धर्माचरण का साधन बनी। आचार्य हेमचन्द्र जिनदत्तसूरि जिनचन्द्रसूरि भी तो शैशव मे ही प्रव्रजित हुए थे। आईंस्टीन रामकृष्ण परमहस विवेकानन्द गाँधी कितने कितने लोग है ऐसे जिन्होने शैशव मे ही अपने लक्ष्य को पूरा करने की यात्रा शुरु कर दी थी। और बुढ़ापे मे तो, सबको फल की प्राप्ति हुई थी।

इसलिए आपने देखा होगा कि कृष्ण भगवान के जितने भी मन्दिर है हर मन्दिर मे कृष्ण का रूप बाल गोपाल जैसा होगा। कहा गया है कि बालक भगवानरूप होता है। ऐसा क्यो कहा गया है? क्योकि बालक के भीतर न कोई राग है, न कोई द्वेष है न कोई छल है न कोई छिद्र है न कोई कपट है न कोई माया है। इसलिए कृष्ण का रूप बालरूप दिया। मूर्ति का बालरूप अपनाना यह एक विशेष अर्थ रखता है। इसका मूल कारण है कि बाल रूप म साधना सही होती है। उसके भीतर किसी तरह की दुष्ट प्रवृत्ति नही होती। भावना कुत्सित तो बाद मे होती है, जैसे जैसे बच्चा बडा होता है और दूसरे लोगो की कुत्सित प्रवृत्तियाँ देखता है तो उसके भीतर भी कुत्सितता पनप जाती है। फिर वह उसकी शुद्धि के लिए प्रयास करता है। "प्रक्षालनात् हि पकस्य दूरात् असस्पर्शनम् वरम्। कीचड़ लगाकर उसे धोने की अपेक्षा तो कीचड को न छूना ही अच्छा है।

इसका मतलब यह नही कि बुढ़ापे मे साधना मत करो। करो कही न कही पहुँचोगे। लक्ष्य तक न पहुँचे पर कुछ दूरी तो तय होगी।

कन्याकुमारी यदि जाना है, विलम्ब से यात्रा शुरु की, कोई हर्जा नही रामेश्वरम् या पाण्डिचेरी तो पहुँच जाओगे। अगले दिन, अगले जन्म में फिर कोशिश करेंगे ताकि लक्ष्य तक, गन्तव्यस्थल तक पहुँच सकें साध्य सिद्ध हो सके। करो कुछ-न-कुछ करो, यही कर्मयोगी महावीर का हम सबको उपदेश है सन्देश है।

महावीर जो बात कह रहे हैं, वह सार्वजनिक और सार्वभौम अनुभवकी है कि बुढ़ापे में कोई शरण नही होता। यह बिल्कुल जीवन की जीवन्त अनुभूति है। क्योंकि बुढ़ापे में हर कोई छोड़ देता है। इन्द्रियाँ वे भी हमको छोड़ देती हैं। आज तक हम विषयभोग भोगते थे। मगर बुढ़ापा आया इन्द्रियों ने जवाब दे दिया। यानी इन्द्रियाँ भी हमारी शरण नहीं हो पायीं। सोचते थे बेटे शरणभूत होंगे मगर हवा कुछ ऐसी बह रही है कि सौ में से पचास लोग ऐसे हैं जिनके बेटे बाप से अलग हैं, तो फिर बेटे भी शरणभूत नही हुए। धन भी शरणभूत नही होता। धन इसलिये शरणभूत नहीं होता क्योंकि जिन्दगी भर आदमी चाहे जितना भी कमा ले मगर मरते समय निर्धन होकर ही जाना है। मरते समय कुछ भी साथ न ले जा सकोगे। बिल्कुल फकीर बिल्कुल गरीब, बिल्कुल निर्धन ही जाना है। यदि दाँतो में थोड़ा-सा सोना लगा हुआ रहता है तो पड़ोसी कहते हैं कि क्या जाने देते हो इस मूल्यवान सोने को। मारो एक हथौड़ा, तोड़ कर निकाल लो।

तो धन हमारी शरण तो न हो पाया धन हमारा रक्षक न हो पाया। जब बुढ़ापा आया कोई भी तो हमारा सहायक नहीं हुआ और सचमुच कोई नहीं होता। केवल गृहस्थों में ही नहीं बहुत बार साधुओं में भी यही होता है। जब गुरु बूढ़ा हो जाता है तो चेले उस गुरु के पास नहीं रहते।

गुरु को छोड़ना चाहते हैं। कुछेक भाग्यशाली शिष्य भी होते हैं जो गुरु के साथ मरते दम सेवा में रहते हैं। जब तक बाप के कारण बेटे की और गुरु के कारण चेले की पूछ होती है तब तक तो बेटा बाप को राजी रखेगा चेला गुरु को राजी रखेगा। वरना चेला यदि गुरु से बढ़कर निकल जाता है तो वह भी साथ छोड़ देता है गुरु का। ऐसा ही तो हुआ था समन्तभद्र के साथ। उनके चेले बहुत बढ़ चढ़ गये गुड़ से शक्कर की तरह और उनकी पूछ होने लग गयी। कितने ग्रन्थ लिख लिये उन्होंने कार्तिकेय [illegible] चेलों ने समन्तभद्र को एक कोने में धकेल दिया। [illegible] अब उन्हें गुरु की जरूरत न रही। वे स्वयं जगद्गुरु

होना चाहते थे। फलत समयसुन्दर का शिष्य का शरण न रहा आश्रय न रहा। बहुत से लोग परिवार को पडोसिया और मित्र को शरणभूत मानते हैं, वृद्धावस्था मे। मगर ऐसा नही है। यदि परिवार वाला को शरण मानते हो, गाव वाले को शरण मानते हो तो यह आपका भ्रम बना रहता है।

मैने सुना है कि एक नौकर ने एक करोडपति के यहा नौकरी की। बहुत साल हो गये नौकरी करते करते। साठ साल हो गये नौकरी करते-करते। एक दिन नौकर ने सेठ से कहा—सेठ साहब! मै आपके यहा साठ साल से नौकरी करता हूँ फिर भी आपका मुझ पर विश्वास नही है। सेठ ने कहा अरे! तू विचार करके तो बोल अपनी सारी तिजोरियो की चाबियाँ तुझे पकडा दी है। और तू कहता है कि मेरा तुझ पर विश्वास नही है। नौकर ने कहा साहब आपने चाबिया तो सैकडो पकडा दी मगर एक भी चाबी तिजोरी मे नही लगती है।

बुढ़ापे मे यही होता है। परिवार मित्र पत्नी धन ये सारी की सारी चाबियाँ है। कन्दोले मे लटका लो। दुनिया को दिखाई देता है कि ये मेरा बेटा है ये मेरा धन है ये मेरा परिवार है बस ये चाबिया है। चाबियो का गुच्छा है। बहन बहुत सजाती है। बगाल की स्त्रिया म यह आदत ज्यादा है। घर मे ताले होगे दो पर चाबियाँ होगी दस। चाबिया के झूमके मे बडी खनखनाहट होती है। तो वे बडी मजेदार लगती है। लोगो को दिखायी देता है। उसके पास इतनी चाबियाँ है तो इसके पास बहुत धन है। मगर वे यह नही सोचते कि ताले तो दो है और चाबी दस बीस है। पर आश्चर्य यही है कि उनमे लगती हैं एक भी नही। कोई भी चाबी नही लगती इस ससार मे। सब चाबियाँ नकली हैं दिखाऊ भर हैं। यह परिवार जिनको लोग शरणभूत समझते हैं। महावीर कहते है कि ये एक भी शरणभूत नही हैं ये दिखाऊ चाबियाँ हैं। जीते-जी सामने दिखते हैं दिखाऊ भर। पर मरने के बाद पत्नी घर के दरवाजे तक साथ देती है पड़ोसी और मित्रजन मरघट तक साथ चलते हैं। जीव के साथ कोई नही जाता। मात्र उसके द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्म ही उसका अनुसरण करते हैं।

सूत्र कहता है— जीवन साधा नहीं जा सकता। इसलिए प्रमाद मत करो बुढ़ापा आने पर कोई शरण नही होता। प्रमादी हिंसक और अव्रती मनुष्य किसकी शरण लेगे, यह विचार करो।

जो व्यक्ति प्रमत्त है, जो हिंसक है, जिसका जीवन सयमपूर्ण नही है, वह आदमी किसकी शरण लेगा? वह न तो धर्म की शरण ले सकता है न

भगवान की शरण ले सकता है न गुरु की शरण ले सकता है। क्योंकि वह प्रमत्त है वह आलसी है। यदि उसके पास अमृतकल्प फल भी गिर जाये तो वह प्रमत्त होने के कारण रस का पान नही कर सकता। आलसी आदमी ह सोया सोया पडा है। कुत्ता मुँह मे पेशाब कर रहा है मगर फिर भी वह प्रमत्त होने के कारण कुत्ते को हटाता नही, इन्तजारी करता है कि यदि कोई भला मानुष आ जाय तो कह दूँगा कि कुत्ते को जरा दूर हटा दो। आलसी जब प्रमत्त है जब तक उसका जीवन अव्रती है जब तक उसका जीवन सयम पूर्ण नही है तब तक वह आदमी किसी की भी शरण नही ले सकता।

हालाँकि महावीर यह कह सकते थे कि धर्म तुम्हारे लिये उत्तम शरण है। मगर महावीर ने नही कहा। महावीर अभी तक हम पहली सीढ़ी पर चढ़ा रहे है। केवल विचार करवा रहे है कि तुम सोचो कि यदि तुम प्रमादी हो हिसक हो तो किसकी शरण लोगे? क्योकि धर्म की शरण प्रमत्त आदमी के काम नही आती। जो आदमी हिसा मे रत है, उसके लिए शरण नही है। जो आदमी कसाई है, जो आदमी काला बाजारी मे लिप्त है जो आदमी काला धन्धा करता है उसके लिए धर्म कभी भी शरणभूत नही होगा। धर्म इसलिए उसे शरणभूत नही होता कि यदि उसे धर्म की वा बात सुनायगे तो उसको अच्छी नही लगेगी। क्योकि उसने कभी भी धर्म को सुना ही नहीं जाना ही नही इसीलिए उस आदमी को धर्म कभी भी अच्छा नही लगता।

जैसे किसी आदमी को बुखार आ गया उसको चीनी खिलाइए। बुखार है तो स्वाद बिगड़ गया। चीनी मीठी है मगर उसको मीठी नही लगती। उससे पूछते है कि चीनी का स्वाद कैसा है? वह कहता है कि मिट्टी जैसा धूल जैसा स्वाद है। बिल्कुल फीका है। जो आदमी प्रमत्त है रोग ग्रस्त है जो हिंसक है जो बीमार है जो आदमी अव्रती है उसको बुखार आ गया है। यदि उसको धर्म माधुर्य का पान कराया जाता है तो वह कहता है कि धर्म का रस तो फीका है मजा नही आता। उसको चीनी भी धूल दिखाई देती है। चीनी का स्वाद भी धूल जैसा लगता है। इसलिए महावीर स्वामी अभी तक हमको विचार करवा रहे थे कि तुम सोचो यदि तुम्हारे भीतर यह विचार आ गया तो अपने आप अप्रमत्त हो जाओगे। अपने आप तुम अहिंसक हो जाओगे। अपने आप त्यागी हो जाओगे। फिर धर्म तुम्हारे लिए शरणभूत होगा। धर्म रसप्रद लगेगा। धर्म रसरूप है परमात्मा रसरूप

है। वह रसरूप लगेगा। रसो वै स । तो जब बुखार का रोग हट जाता है तो चीनी का जैसा स्वाद होता है वैसा ही उसको लगता है। बिल्कुल मीठा स्वाद। यह तभी हो सकता है जब हम अहिंसक व्रती और त्यागी होंगे।

यह होने के लिए आवश्यक है कि हम पुन पुन ऐसा विचार कर उपनिषद की भाषा म कहूँ तो चिन्तन मनन और निदिध्यासन करे कि हम किसकी शरण लेगे यदि हम हिंसा मे रत है प्रमत्त है। जीवन मे घटी घटनाओ को सोचे। जगत् मे घट रही घटनाओ के बारे म विचार करे। उनका गहराई से अवलोकन तथा समीक्षण करे ताकि जागृति हो आत्मबोध हो।

मानव-जीवन खुद मे एक पहेली है। मनुष्य सदैव सुख और आनन्द को पाने के लिए प्रयत्नशील रहता है मगर सारे प्रयत्नो के बावजूद वह निरन्तर दु खी रहता है। दैहिक, दैविक भौतिक इन तीनो दु खो से उसे छुटकारा नही मिलता। ऐसा क्यो होता है? कहाँ हमारे कार्यो मे कमी है? हमे विचारना चाहिए। जीवन के प्रति प्रमाद और आलस्य छोड़कर जो व्यक्ति जागरूक रहता है, वही इन दु खो से छुटकारा पाता है। हमे सचेत करने के लिए घटनाएँ तो हमारे सामने नित नयी घटती है लेकिन उनसे हम कुछ शिक्षा ग्रहण नही करते। भला जो आदमी ठोकर खाने के बाद भी नही सम्हलता, तो वह आदमी जड़ है। बुद्ध के जीवन मे कोई ऐसी घटना नही घटी थी, जो बिल्कुल असाधारण हो। रोजमर्रा के जीवन मे हम सब वैसी घटनाएँ घटित होती देखते रहते है लेकिन उनसे हम कुछ प्रेरणा नही लेते उनके बारे मे सोचते विचारते नही हैं पर बुद्ध विरले थे। उन्होने सामान्य घटनाओ को असाधारण समझा और उन सामान्य घटनाओ के कचरे मे से मोती के दाने निकाल लिये। वे दाने उनके लिये ही नहीं हम सबके लिए मानव मात्र के लिए उपादेय है।

वृद्धत्व रुग्णता, मृत्यु–ये जीवन के ऐसे सत्य हैं जो सबके जीवन मे घटित होने वाले हैं, अनुभूत भी होने वाले है। भगवान महावीर तथा भगवान बुद्ध दोनो ने इस तथ्य को समझा और मानव मात्र को यह तथ्य समझाने का प्रयास किया। बुद्ध के अभिनिष्क्रमण म मूलत कारण तो ये साधारण–सी घटनाएँ ही थी जिन्हे उन्होने असामान्य रूप मे ग्रहण किया। महावीर के महानिष्क्रमण का कारण यद्यपि कोई एक इस तरह की घटना नहीं है। उन्होने शैशव काल म ही जीवन के समस्त क्षेत्रो को उसके सभी

ये गुण भी थे। स्वावलम्बन तो इतना बढ़ा चढ़ा था कि उन्होंने अपने अनुयायियों को भी 'अशरण भावना' की प्रेरणा दी। इसीलिए उनको किसी जाति के दायरे में देखना उनके प्रति और उनके विचारों के प्रति अन्याय होगा। उनके विचार उस स्तर पर पहुँचे हुए हैं, जहाँ अन्य विचारों की पहुँच न थी। यदि उनके बारे में यह भी कहा जाए कि आध्यात्मिक विचारों के वे पराकाष्ठा पर थे तो इसमें भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके लिए मानव महान् था उसके भीतरी बँटवारे नहीं। महावीर ने मानव को वह महत्ता दी जो और कोई न दे पाया। ईश्वरत्व और जिनत्व का भी उसे अधिकार दिया। जिस नारी को लोगों ने कुचला, उसी को महावीर ने उठाया उसे भी मुक्ति की बागडोर सम्भलायी। जो बात और लोगों ने ईश्वर के लिए कही महावीर ने वही बात आत्मा के लिए कह दी। नर ही नारायण होता है आत्मा ही परमात्मा होता है। जिनत्व की साधना का सम्बन्ध व्यक्तित्व से है न कि उसकी जाति से। जाति का सम्बन्ध समाज से है और धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति से है।

महावीर ने जो सबसे बड़ी बात कही वह यह है कि तुम किसी का अनुगमन मत करो अपने पैरों पर खड़े होने का साहस स्वयं में प्रकट करो। उन्होंने वेद [illegible] आदि को आप्त वचन मानकर अपौरुषेय मानकर अनुगमन करने का भी विरोध किया। उपनिषदों में जहाँ यह लिखा है कि [illegible] तर्केण मति [illegible] तर्क के द्वारा इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता वहाँ महावीर ने कहा सत्यार्थ जानने के लिए [illegible] करो। तुम्हारी बुद्धि जिस बात की गवाही दे वही करो। तुम्हारा [illegible] तुम्हारा [illegible] तुम स्वयं हो। तुम्हारे ईश्वर भी तुम ही हो। [illegible] करो संघर्ष करो। तुम अपने [illegible] तुम [illegible] भोगते हो कठिनाइयों से [illegible] का [illegible] हो आत्म[illegible] की चुभन से उबरना हो तो [illegible] आगमन का [illegible] संसार के [illegible] का [illegible] है। [illegible] है [illegible] के सारे [illegible] है।

[illegible] अभिवाद।
[illegible]॥

जिनवाणी तो सुधा है पर उसका सेवन करने वाले कितने हैं? यहाँ पर अधिकांश लोग जैन हैं। जैन तो हैं पर जिनत्व का पुरुषार्थ किसमें है? जो जैन बन गया वह जिन नहीं बन सकता क्योंकि जैन वही है जो जिन का अनुयायी होता है। अनुयायी का काम होता है अपने आराध्य जिन की पूजा कर लो, उनके चरण पूज लो उनकी स्तुति कर लो। यह गौतम का मार्ग है। यही वह मार्ग है, जो जिनत्व की अंतिम मंजिल तक पहुँचने में एक रास्ता है। इससे जिनेश्वर का अनुग्रह मिल सकता है पर जिन नहीं बना जा सकता। जिनत्व के कर्म कुछ और ही होते हैं। महावीर जैसा व्यक्ति ही जिन मार्ग का पथिक हो सकता है।

जो जैन जिनमार्ग का राही है वह जिनत्व का साधक है। फर्क केवल समर्पण एवं संकल्प का है। जो समर्पित होते हैं वे जुड़ते हैं और जो संकल्पवान होते हैं वे आत्मविजय करते हैं। जिन पूजा हमारी श्रद्धा की छाया है। आखिर जिनेन्द्र पार नहीं लगाते हम ही पार लगना है।

तीर्थंकर या जिनेन्द्र तो प्रकाश स्तम्भ हैं। जिस प्रकार गति करना जहाज का काम है, उसी प्रकार साधना की दिशा में आगे बढ़ना साधक का काम है। प्रकाशस्तम्भ हो पर जहाज यात्रा न करे तो प्रकाशस्तम्भ जहाज को पार नहीं लगा सकता। इसलिए जैन जब अपने अनुयायीपन से ऊपर उठकर जिनत्व का साधक होगा तभी वह आत्मविजय का बिगुल बजा सकेगा अमराई की सघन छाँव पा सकेगा।

भला जो लोग लौकिक सुखों में शारीरिक सुखों में उलझे हों क्या वे जिनमार्ग पर चल सकते हैं? हम बाहर की यात्रा करने के अभ्यस्त हैं अतः भीतर की यात्रा अंधे की यात्रा लगती है। हम बाहर की रोशनी से परिचित हैं, कभी भीतर की रोशनी भी देखने का प्रयास करें। भीतर सैकड़ों सूर्यों का प्रकाश है। कस्तुरी कुंडल बसै, मृग ढूँढै बन माँहि। भीतर का जाना नहीं, तो बाहर ही ढूँढेंगे बाहर ही भटकेंगे। इसलिए क्योंकि घर में अंधेरा है तो सूई बाहर ढूँढते हैं क्योंकि बाहर में प्रकाश है। पर सूई मिलेगी भीतर आने से जिनत्व के प्रकाश में।

एक व्यक्ति ने कुछ बच्चों से पूछा क्या तुम लोग गोल्डन ब्रिज (मद्रास) के बारे में जानते हो? बच्चों ने कहा, नहीं साहब। तो वह व्यक्ति बोला, दिन भर घर में ही पड़े रहते हो बाहर घूमो तो पता लगे। बच्चे बिचारे कुछ न बोले। दूसरे दिन उस व्यक्ति ने फिर उन बच्चों से पूछा क्या तुम लोग जोर्ज टाउन के बारे में जानते हो? बच्चों ने कहा,

है? पिता ऐसा-चोर। उसे तो बड़ा आश्चर्य हुआ। आश्चर्य होना भी स्वाभाविक ही था। उसने पिता से पूछा-पापा! यह कैसी विरोधी बात? सिपाहियों के साथ जाने वाला एक राजा और एक चोर! पिता ने कहा बेटे! दोनों में बड़ा भारी फर्क है। पहले जिस व्यक्ति के साथ पाँच छह सिपाही थे वे उस व्यक्ति के अधीन थे और पीछे वाला व्यक्ति सिपाहियों के अधीन था। एक शासक है दूसरा गुलाम।

आप टटोले अपने को कि आप शासक है या गुलाम। इन्द्रियाँ आपसे हारी है या आप इन्द्रियों से हारे है। आपकी आत्मा क्या गवाही देती है? महावीर ऐसे ही जिन न हो गए। हार गई उनसे उनकी इन्द्रियाँ। उत्तराध्ययन मे कहा है —

एगप्पा अजिए सत्तू कसाया इंदियाणि य।
ते जिणित्तु जहानाय, विहरामि अह मुणी।।

महावीर कहते है हे मुनि! हे साधक! एक बात पक्की है कि अविजित अपनी आत्मा ही प्रधान शत्रु है। अविजित कषाय और इन्द्रियाँ है शत्रु है। मै हूँ ऐसा जो उन्हे जीतकर न्याय-नीतिपूर्वक विचरण करता हूँ। परम अहिंसक होकर शत्रु विजय की बात करना क्या कम महत्वपूर्ण है? परम अहिंसक होकर परम योद्धा होना बड़ी विचित्र बात है। ऐसी विचित्र महावीर मे थी।

वस्तुत अस्त्र शस्त्र मनुष्य की दुर्बलता के परिचायक हैं। एक बटन दबाया एटम बम गिरा और लाखो स्वाहा हो गये। यह कोई वीरता की बात है? यह तो कायरो की बुझदिलो की बच्चो की बात है। सच्चे बहादुर मौत से डरते नही और न किसी को मारते है। मनुष्य को तो क्या एक चीटी को भी नही मारते। कोई किसी को मारता है इसलिए कि वह उससे डरता है। महावीर ने जिनत्व की बात इसीलिए कही ताकि व्यक्ति निर्भय बने। उन्होने जीवन के संघर्षों को तो छोड़ो मौत को भी अपनाने की बात कही। मृत्यु व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। आवश्यकता पड़ने पर फैले हुए धागो को समेट लेना ही मृत्यु का उत्सव है जिनत्व का महोत्सव है।

मै तो यही कहूँगा कि व्यक्ति को जिनत्व की साधना अवश्य करनी चाहिये। जिन ही तो जनक है जैन का। जिनत्व के बीज से ही जैनत्व का कल्पतरु लहराता है। जैसे शरीर मे मस्तक वृक्ष मे जड मुख्य है, वैसे ही जैनत्व मे जिन है। बिना जिन का जैन अर्थ शून्य है। बिना आत्मा का शरीर

श्व है। जिना जिन का जैन मिल है अर्थ हीन है। जिन तो है एक का अंक। जैन है शून्यांक। शून्य ढेर सारे हो पर जब तक उसके साथ उसके पूर्व एक का अंक नहीं है शून्य की कोई कीमत नहीं है। जैसे बिना इंजन के डिब्बे बिना एक के शून्य निरर्थक हैं वैसे ही बिना जिन का जैन है। पर जब हम एक के अंक के साथ शून्य का उपयोग करेंगे तो इससे एक भी कीमती होता जायेगा और शून्य भी। दोनों की अपनी-अपनी अर्थवत्ता होगी।

इसलिए जिन को पकड़ो। जिन ही है एक का अंक। यही है नौका जो पार लगा दे उस पार पहुँचा दे। यही वह अवस्था है जो देहातीत अवस्था में विहार कराती है।

अत जिनत्व से कर्म करो। जिन स्वयं कर्मशीलता का परिचायक है। कोई भी व्यक्ति जन्म से जिन नहीं होता। जिनत्व की साधना करने वाला ही जिन होता है। जिन होना वीरतापूर्वक कठिन संघर्ष करके जीतना है। यों तो शब्द के अपने यौगिक अर्थ में युद्धविजेता भी जिन है गरीबी को शान्तिपूर्वक झेलने वाला भी जिन है क्रिकेट का मैच जीतने वाला भी जिन है यानी वे सब लोग जिन हैं जो जीतते हैं। जिन का अर्थ सामने विजेता। पर सभी जिन नहीं हैं। जिन संस्कृति ने जिनशासन ने महावीर ने जिसको जिन कहा है वह जिन आत्म विजेता है। जिस व्यक्ति ने अपने आन्तरिक शत्रुओं को जीता देहगत और आत्मगत दुश्मनों पर विजय पाई वही जिन है। यह विजय परम विजय है। क्योंकि बाहर के शत्रुओं को तो कोई भी वीर जीत सकता है किन्तु भीतर के शत्रुओं को जीतने वाले विरले ही होते हैं।

विश्व विजेता होना सम्भव है। किन्तु आत्मजयी होना अतिदुष्कर है। सिकन्दर-जैसे इतिहास में बहुत मिल सकते हैं पर महावीर से वीर अति विरल। इतिहास में कभी कभी एकाध मिल सकते हैं।

गाँठी मिले न बोरियाँ वीरा की नहिं पाँत।
सिंहों के लेहडे नहीं साधु न चले जमात॥

तो सिकन्दर ने चाहे जीता होगा सारे संसार को पर आत्म विजय से वह अछूता ही रह गया। वह अपने-आप से हार गया। आइन्स्टीन ने आविष्कार किये थे हजारों पर अपने आपका आविष्कार नहीं कर पाया। वह उस चीज को नहीं जीत पाया जिसके निकल जाने पर लोगों ने उसे कब्रखाने में दफना दिया। महावीर ने नहीं की विश्व विजय पर फिर भी वे विश्व विजेता सिकन्दर से श्रेष्ठ हैं क्योंकि उन्होंने अपने-आप को जीता

निज म निज को पाना। निरन्तर निज चिन्तन करने से ज्ञान भी अनन्त था क्योंकि उसने शरीर छूने नहीं। समाहित करता से आत्म निज करके। क्योंकि उसने शरीर को ढूँढ अपने भीतर। 'कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूँढे वन माँहि।' उस हिरण की नाभि में होती है जो कस्तूरी को पाने के लिए विश्व वन म भटकता है। अरे जिस चीज को तुम बाहर खोज रहे हो वह तुम्हारे पीछे म है। सूई की खोज घर मे करो वह घर म ही खोई थी। भाई ही घर म अँधियारा हो। बाहर का प्रकाश बाहर की दौड़ बाहर की चकाचौंध भटका रही है व्यक्ति को निजत्व पाने मे।

> जितत्व का पथ असिधारा है विरले ही चल पाते है।
> जो चलते है आत्मपद के दर्शन कर पाते है।।
> क्यों का सोया अन्दर म वह, देव जगाता है उसको।
> धन्य धन्य वह जितत्व की वह अर्थ देता है जिसको।।

कवि कहता है जिसके पास जितत्व की अर्थ देता है वह धन्य है। जितत्व की चेतना जीवन की सर्वोच्च स्थिति है। यह स्थिति ब्रह्मानन्द की स्थिति है परमात्म दर्शन की स्थिति है महाजीवन और मोक्ष की स्थिति है। जहाँ केवल विजय है हार का नामो निशान भी नहीं मात्र निर्धूम ज्योति रहती है पवित्रता, पूर्णता एवं शुद्धता यानि प्योरिटी सरकारमिटी। यहाँ न राग है न द्वेष न क्रोध है न मान न इच्छा है न दुख। यहाँ तो बस हम होते है और हमारा राज्य होता है। बिना किसी को मारे काटे विजय होती है। इसी का नाम है आत्म विजय। इसी को कहते है जिन। जितत्व से शून्य व्यक्ति चलता फिरता शव है।

यह बात बिल्कुल पक्की है कि दीनो सामा पर विजय प्राप्त करना सम्भव है साहसी के लिए सरल भी है, किन्तु अपने भीतर के शत्रुओं को जीतना जिन होना दुष्कर है अति दुष्कर है। मैंने बार बार कहा शत्रु विजय। लेकिन शत्रु कैसा? निराकार। भीतरी शत्रुओं का कोई आकार नहीं है। आकार को तो बाँधा जा सकता है रोका जा सकता है मारा काटा जा सकता है। पर निराकारी शत्रुओं को जीतना यही तो है जितत्व की साधना। हमारे सबसे बड़े शत्रु है काम वासना राग द्वेष कषाय आदि। ये हमारे भीतर रहते है। हमारे मन को हमारे चिन्तन को ये ही तो प्रदूषित करते है। और जब तक इन पर विजय न पायी जाये इन्हे काबू न किया जाय तब तक कोई साधना सिद्ध नहीं होगी, सफलता हमारे चरण नहीं चूमेगी। जितत्व ही तो साधना की प्रशस्त पद्धति है। इसका

सकेत हम जिन शब्द से ही प्राप्त कर सकते हैं।

आप जिन' शब्द को कोई सामान्य शब्द न समझे। वड़ा सोच समझकर इस शब्द का प्रयोग किया गया है। सारा जैन दर्शन उसकी सारी साधना इसी एक जिन' शब्द मे लीन है। या यूँ समझे कि सारा जेन-आचार-दर्शन इसी से जन्मा है। तो जिन शब्द जैन दर्शन का जनक है। जिन ही वह वीज है जिससे जैन दर्शन का वृक्ष प्रकट हुआ। अब आप थोडा सा गहराई से समझ जिन की जडा को जिन की गहराइया को उसके वर्ण विन्यास को उसके तात्पर्य को। जो गहराई से समझेगे उन्ह मोती मिलेगे जो ऊपर ऊपर रहेगे उन्ह सागर खारा पानी लगेगा।

जिन म चार वर्ण है— आधा ज् इ आधा न् और अ। यानी इनमे दो व्यजन है और दो स्वर है। ज् और न् व्यजन है तथा इ और अ स्वर हैं। इनमे पहला वर्ण है ज्। ज् वर्ण जय का प्रतीक है। अब प्रश्न उठता है कि किस पर जय करे? उत्तर भी विल्कुल सामने है। ज् के वाद जो इ है उस इ का अर्थ होता है इन्द्रियाँ इन्द्रिया के विषय मनोविकार राग द्वेष लोभ, काम क्रोध। ये सभी विकार जीव के अभ्यन्तर शत्रु है। जिन शब्द मे भी इ आभ्यन्तर ही है। इसलिए जो इ पर विजय पा लेता है जो इ शून्य हो जाता है यानी निर्विकार हो जाता है वह भगवत्ता पा लेता है जिनत्व की।

अगर हम जिन म से इ को हटा दे तो क्या शब्द वनेगा? आधा ज् और पूरा न। व्याकरण के अनुसार त वर्ग के अक्षर च वर्ग म परिणत हो जाते है यदि उनका योग च वर्ग के साथ होता है। तो ज् जो च वर्ग का है और न जो त वर्ग का है दोना को मिलाने से शब्द वनता है ज्ञ। ज्ञ का मतलब है ज्ञानी। जानने वाला ज्ञ है। इसलिए जिन ज्ञाता है आत्मज्ञाता है स्वपर ज्ञाता है सर्वज्ञ है। ज्ञ के विपरीत है अज्ञ। जो कुछ नहीं जानता जो अनपढ़ गँवारू है वह अज्ञ है। ज्ञानी और बुद्धिमान् अपने विकारो को जीतता है। साधारण लोग अपने विकारा को नहीं जीतते। इसलिए व अजिन है अज्ञ है सघर्षहारे हैं।

जे त जीत्या रे ते मुझ जीतियो रे आनन्दघन कहते हैं यह। जिन ने जिनको जीता उनको हम न जीत पाये। उन्होने तो हमे जीत लिया है। हे प्रभु! तुमने क्रोध को जीता किन्तु क्रोध ने हम जीत लिया। तुमने कषाये जीतीं, किन्तु कषायो ने हमे जीत लिया। कहाँ है हमारा ... तो वह गये प्रवाह म। प्रवाह मे वहना मुर्दापन है। मेरा एक ...
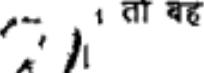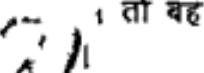
गिरा की गुने नहीं है चाह विरह की जब तक मिलती राह।
विरह है जीवा का सघर्ष, विा सघर्ष सत्य दुर्धर्ष।।
नौका घिरी भँवर के मध्य पर्वती लहरो का सान्निध्य।
गगा सागर तरफ प्रवाह समय वर्षा का, नीर अथाह।।
गुने नही जाा पारावार पहुँचा गगोत्री के पार।
जहाँ से फूटी गगा धार प्रसारित गगा का ससार।।
वहूँ जो मै धारा के सग प्रतिष्ठा होए भुजा की भग।
धार के सग बहे जो जीव, जीविता म वह है निर्जीव।
करे यात्रा गगोत्री ओर नहीं हम दुश्मन से कमजोर।
चलो अब धारा के विपरीत, नहीं हारेगे निश्चित जीत।।

सघर्ष ही जीवन की रोनक है। भला विा सघर्ष के कभी सत्य प्राप्ति हुई है। बहती हुई गगाधार के साथ बहना मुर्दापन है। जीवन की जीवन्तता और भुजाओ का सम्मान तो गगोत्री की यात्रा करने म है जहाँ से गगा का जन्म हुआ। अपने मूल रूप को खोजो अपने घर को ढूँढो, अपने घोसले म आओ। दूसर के महलो म रहना स्वतन्त्रता खोना है। यदि महल पाना है यदि विराट् होना है गगा सागर पाना है, तो पहले स्थितप्रज्ञ बनो अपने आपम आ जाओ अपने आप को जीत लो। जिन जीतता है, अजिन हारता है जीवन के रण म।

अजिन का मतलब समझते है आप? अजिन का अर्थ है चमड़ा अजिन स्थूल दृष्टि है। यह बाह्य दृष्टि है। भौतिक और मिथ्यात्वी दृष्टि है, उपरध्यान की दृष्टि है। यह वह दृष्टि है जिस पर लोकायत-दर्शन खड़ा है जिसके आदि प्रवर्तक चार्वाक ऋषि थे। चार्वाकी दृष्टि स्थूल दृष्टि है भीतर नहीं केवल बाहर झाँकती है ऊपर ऊपर। ये सागर को ऊपर ऊपर म देखते है फलत इन्हे सागर खार पानी का भण्डार लगता है। ये सब नहीं जान पाते कि इस खारे जल म ही भरा पड़ा है ससार भर का खजाना। जो लोग अजिन है चार्वाकी है भौतिक है उनका मानना है कि—

खाओ पीओ मौज उड़ाओ ऋण करके भी घी पी डालो।
मत ठुकराओ धन पराया आज्ञा स्वर्ग। भोग भोगलो।।
नर्क स्वर्ग फिर आयगा बीता हुआ सुनहरा यौवन।
भस्मीभूत देह का फिर म पाना है शशशृंग सा सुमन।
अजिन कहते है, जो करना है सो कर लो। जो भोगना है सो भोग

सो। राम कृष्ण महावीर बुद्ध शकर पतजलि जिनत्व मार्ग के समर्थक है अजिनत्व के नही। बात सही है। यदि आप ही सारा भोग लगे तो आनेवाली पीढ़ियो के लिए क्या छोड़ेगे झाड़ और झखाड़! यह कोई व्यवस्थित प्रणाली नही है जीवन की जीवन के आदर्श की।

पर आज कुछ ऐसा ही समय है कि अजिन के अनुयायी अधिक है दुनिया मे। जिधर देखो उधर अक्सर अजिन ही दिखायी देगे। सम्यक्त्वी और विद्यावान् नही अपितु मिथ्यात्वी और अविद्यावान् ही दिखाई देगे। आत्मवाद, ईश्वरवाद कर्मवाद मोक्षवाद पर जोर देने वालो पर भी व्यवहार मे चार्वाक के अजिनत्व के बादल मँडराते दिखाई देते है। जिसकी दृष्टि सम्यक्त अपने-आप मे टिकी है वह कभी कर्तव्य विमूढ नही होता। यदि जिनत्व नही है सम्यक्त्व नही है तो व्यक्ति चाहे जितना तप कर ले जीवन भर तप कर ले पर उसे बोधि लाभ नहीं होगा। आलू छोड़ो मूली छोड़ो सभी कहते है पर क्रोध छोड़ो मोह छोड़ो वासना छोड़ो सग्रह छोड़ो कौन कहता है? उसके लिए कौन कसम दिलाता है? दूसरा को क्या दिलाए जब स्वय के जीवन मे क्रोध मोह सग्रह है। व्याख्यान देते जा रहे हैं आत्मवाद पर और स्वय जकड़े है भौतिकवाद मे। मूल को पकड़ो।

ब्रह्मचर्य का नियम दिला दिया किसी को पर नियम लेने मात्र से वासना की चिगारियाँ बुझ गयीं? माँस खाना छुड़ाने से क्या हिंसा के भाव छूट गये? छुड़ाना हो तो हिसा को छुड़ाओ माँस अपने आप छूट जायेगा। छोड़ना है तो वासना को छोड़ो मैथुन अपने-आप छूट जायेगा। साधना का सम्बन्ध भीतर से है। भीतर को निहारो अन्तर का घर सजाओ। यो ही तो होता है व्यक्ति स्वय का स्वय मे। यही तो है जिनत्व जीव का सम्यक्त्व। यो ही तो छूटता है अजिनत्व जीव का मिथ्यात्व। सम्यग् दृष्टि ही जिन दृष्टि है और जिन दृष्टि ही सम्यग् दृष्टि है। जिनत्व की सुगध सम्यक्त्व के फूलो से ही उपजती है।

मैने कहा जिन-दृष्टि ही सम्यग् दृष्टि है। देखा जिन शब्द तो एक है पर अर्थ गाम्भीर्य कितना है। जैनधर्म के तीनो रत्नो की चमक इसी एक शब्द से ही तो प्रस्फुटित है। जैसे ही व्यक्ति की अजिन दृष्टि टूटी कि सम्यग् दृष्टि खिली। अविद्या और अज्ञता मिटी कि सम्यक विद्या और सम्यक ज्ञान के दीप जले। जैसे ही आन्तरिक राग द्वेष कामादिक भयकर शत्रु सर्वथा उन्मूलित हुए कि व्यक्ति का चारित्र्य सम्यक हुआ। तो जिनत्व की यात्रा ही मोक्षमार्ग है रत्नत्रय की आराधना है।

तो क्यों जिन शुरू हो यात्रा जिनत्व की पगडंडी पर, ढूँढो जिनत्व के मोती पैठ सागर में गहरे। जो ढूँढे, वही पाये। जो बैठे रहे, वे रोये। कबीर की गहरी संत वाणी में —

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं बोरी बूडन डरी, रही किनारे बैठ॥

कीमत तो हर चीज की चुकानी पड़ती है। जो चीज जितनी ही मूल्यवती रहती है उसकी कीमत भी उतनी ही ऊँची रहती है। कौड़िया की भी कीमत होती है। घोंघे और सीप की भी कीमत होती है, लेकिन मोती की कीमत सबसे ज्यादा होती है। घोंघे और सीप को तो किनारे पर भी पाया जा सकता है। उनको पाने में कोई तरह की जोखिम उठाने की भी जरूरत नहीं होती है। लेकिन मोती किनारे पर नहीं मिलते। उनकी कीमत चुकाने के लिए जान की बाजी लगानी पड़ती है। समुद्र की अतल गहराई में पैठना पड़ता है गोताखोरों की तरह।

कोई कितना भी समर्थ बलवान् ज्ञानवान् क्यों न हो लेकिन बिना प्रयास के बिना पुरुषार्थ के भरपेट भोजन भी नहीं मिल सकता, जिन होना तो बहुत दूर की बात है। सिंह बहुत बड़ा पराक्रमी है किन्तु उसे भी अपने भोजन के लिए झाड़ियों में बैठकर घात लगानी पड़ती है, जुगत बाँधनी होती है और कभी कभी उसे भूखा भी रह जाना पड़ता है।

जिनत्व की साधना बहुत ऊँची चीज है। इसकी सिद्धि जन्म में नहीं वर्षों में करनी पड़ती है। सम्भव है हमें इसके लिए न केवल इस जन्म का खर्च करना पड़े अपितु जन्म जन्मान्तर भी लग जाएँ। पर जिसके भीतर जिन होने का दृढ़ संकल्प है दुखी सुखी जीवन की सारी कठिनाइयों को सहने का अटूट धैर्य है असफलताओं और विघ्नों में जिनका साहस कुंठित न हो सके जिस तरह काँटों में खिलने वाले गुलाब की तरह जो कठिनाइयों में भी प्रसन्नता का अनुभव करता है वे ही जिनत्व के अधिकारी हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति संयम और तप की कठिनाइयों से डरते हैं जिनके हृदय में न तो दृढ़ निश्चय है और न साहस या धीरज है वे कायर और डरपोक लोग इस भवसागर के किनारे पर बैठे हुए भी डूबकर मर जाते हैं। वे [illegible] के भय से सागर में नहीं उतरते।

[illegible] जिन होने का पुरुषार्थ नहीं कर सकते वे चले जायें उस [illegible] है। [illegible] पगडंडी पर चलना वहीं [illegible] है।

आज मैं [illegible] कहना चाहूँगा कि हम जिनवाणी के

जिनशास्त्र का स्वाध्याय करें। शास्त्र में उन लोगों की वाणी के अमृतकण संकलित हैं, जिन्होंने जन-जन को जिन बनने का संदेश दिया आगमित लोगों को जिन बनाया। पहले कमाया फिर लुटाया बाँटा। खुद भी तिरे औरों को भी तैरना सिखाया। पहले मार्ग देखा फिर मार्ग दिखाया। रास्ते की दुविधाओं को रास्ते की दूरी को और गंतव्य की स्वर्णिमता को देखा समझा सोचा। सत्य शिव सुन्दर का सभी भोग करें— इसी उद्देश्य से प्रेरणाएँ दीं सूक्त कहे सूक्तियाँ बिखेरीं। सारी दुनिया मेरा कुटुम्ब है। सबको यहाँ लाओ और सबके साथ मिलकर यहाँ रहो। अपने एक प्रज्वलित दीप से लाखों लाख बुझे हुए दीप जलाये। उनका यह महादान है। उनकी इस ज्योति की सम्पदा ने प्रभावना की। इसलिए वे जिनत्व की यात्रा के प्रकाशस्तम्भ हैं महादीप हैं। महावीर उन्हीं का नाम है। वस्तुतः महावीर हमें वहाँ ले जाना चाहते हैं जहाँ विकारों का धूआँ नहीं उठता केवल आत्मा की अनन्त चैतन्य-ज्योति निर्धूम प्रज्वलित रहती है। जहाँ आग में धूआँ है वहाँ गीलापन है भटकना है अज्ञान है मिथ्यात्व है अजिनत्व है। जैसे ही धूआँ हटा जलती आग सुनहरी लगेगी। धूएँ सहित आग से धूएँ सहित दीये से लोग स्वयं भी बचना चाहते हैं दीवार और कमरे की छत को भी बचाना चाहते हैं। भला काला कलूटापन किसे अच्छा लगे। तो हमें हटाना है मिथ्यात्व के अजिनत्व के गलाघोटू धूएँ को। जलानी है निर्धूम ज्योति जिनत्व की सम्यक्त्व की निर्वाण की महाजीवन की। •

प्रयाग किया। महावीर तो वह देहरी का दिया है जिसने भीतर और बाहर दोनों को आलोकित किया। जीवन की समस्या और जीवनेतर समस्याओं का समाधान देने वाला ही वास्तव में विश्व का, जन-जन का भगवान् है अखिल ब्रह्माण्ड का अनुशास्ता है।

महावीर ने एक एक समस्या को खोजा, युग के और जग के हर कोने कातर में जाकर। उन समस्याओं में वे जिये। विश्व की समस्याओं को अपनी समस्या माना और उसके लिए समाधान खोजा। खोज उपलब्धि की प्रक्रिया है। जिन खोजा तिन पाइयाँ। पहले समस्या फिर समाधान। पहले प्रश्न फिर उत्तर। पहले अर्जुन फिर कृष्ण। अर्जुन समस्या है और कृष्ण उस समस्या के समाधानकर्त्ता। कृष्ण अर्जुन के भीतर है—दूध में मक्खन की तरह। गीता कृष्ण की अभिव्यक्ति है। समाधान की फलश्रुति गीता है।

महावीर समाधान गीता के प्रणेता है। उनका हर समाधान अपने-आप में गीता स्वरूप है। कृष्ण ने एक अर्जुन की समस्या को समाधान दिया और महावीर के लिये हर इन्सान अर्जुन था। इसीलिए जैनों के पास गीता जैसे अनेक ग्रन्थ है। अब प्रतिनिधि ग्रन्थ भी बन गया है 'समणसुत्त' जो महावीर स्वामी की अभिव्यक्ति और जैनों की महागीता है।

महावीर ने गीताएँ कही लेकिन विशिष्ट ढंग से। महावीर पहले अर्जुन को और बाद में उस अर्जुन के भीतर सुपुप्त कृष्ण को जागृत किया। समस्या के भीतर ही समाधान खोजे। बीज में ही वृक्ष का भविष्य देखा। क्योंकि बाहर का कृष्ण और बाहरी समाधान मात्र एक ऊपरी औपचारिकता है राख पर लीपा पोती करने जैसा। समस्याओं के सनातन समाधान की गीता महावीर जैसे कृष्ण ही दे सकते है। कारण महावीर जीवन की अनुभूतियों को ही अभिव्यक्ति देना पसन्द करते है। इसीलिए वे समाधान [illegible] [illegible] तथा चिरस्थायी प्रकाश स्तम्भ की तरह है। वरना महावीर के पास दुनिया आकर्षित होकर दौड़ी चली नहीं आती। क्योंकि उनके पास आकर्षण का कोई साधन नहीं था। भला, जिसने अपने पास शरीर ढँकने के लिए भी वस्त्र का टुकड़ा नहीं रखा वह दुनिया को आकर्षित करने के लिए अपने पास क्या रखता? न कोई आडम्बर, न कोई [illegible] न कोई चमत्कार बस एक सीधा सादा निस्पृह साधक का जीवन है [illegible]। [illegible] [illegible] में [illegible] महावीर का जीवन [illegible] ढंग का पाया है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] समस्याओं के समाधान दिए [illegible] है

जनता को उनके प्रति आकर्षित करने म सक्षम हुए। जनता को वह प्राप्ति हुई जिसकी उसे आवश्यकता थी। सचमुच महावीर ने फिसलत विश्व क अर्जुन को सम्हालकर उस उसका कर्त्तव्य बोध कराया। भी रह जग को जगा दिया। सुषुप्ति जागृति मे बदल गयी। स्वप्न की अन्ध गलियाँ नष्ट हो गईं। चारो ओर राजमार्ग प्रशस्त पथ दिखाई देने लगा।

समस्या मे समाधान की खोज परम जागृत महामनीषी और महाजीवन्त पुरुष ही कर सकते है। यह उनकी आत्मकल्याण बनाम लोककल्याण की साधना है। पीडा मे परमात्मा की खोज करने के समान है। राधा, मीरा और महादेवी इसी की साधिकाएँ कहलाती है। भगवान् महावीर का समाधान का फार्मूला इसी का रूप है। समस्या म समाधान की खोज बडा मनोवैज्ञानिक कार्य है।

महावीर के युग की सबसे बडी समस्या यह थी कि उस समय अनेक प्रकार के आचार और दर्शन अपने-अपने तात्त्विक आधारो पर चल रहे थे। वे अपने एकागी दृष्टिकोण के द्वारा ही अपने आचार-पक्ष और विचार पक्ष का प्रतिपादन एवम् परिपालन करते थे। महावीर ने उन विभिन्न तात्त्विक आधारो का समन्वय किया। उन्होने जिन जिन समस्याओ का समाधान किया उनमे यह समाधान सबसे ज्यादा उत्कृष्ट है।

महावीर के युग मे मुख्यत चार प्रकार के आचार दर्शन प्रचलित थे। एक है क्रियावादी जो आचरण को ही सब कुछ समझते थे। सच्चरित्र और सदाचार ही उनके आचार और दर्शन का मूल हेतु था। क्रियाकाण्ड की क्रियावादियो म अधिकता थी। दूसरी परम्परा अक्रियावादियो की थी। अक्रियावादी आत्मा को कूटस्थ एव अकर्त्ता रूप म स्वीकार करते थे। अक्रियावादियो का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ज्ञानवाद था। इसलिए अक्रियावाद को ज्ञानवाद भी कहा जाता है। क्रियावादी जहा आचरण के द्वारा अपने आचार-दर्शन का महल खडा करते थे तो अक्रियावादी ज्ञान के द्वारा। उस समय जो तीसरी परम्परा थी वह थी अज्ञानवादियो की। अज्ञानवादी पारलौकिक आधारो पर नैतिक प्रत्ययो को अज्ञेय के रूप मे स्वीकार करते थे। वे जिन प्रत्ययो को स्वीकार करते थे उन्हे भी अज्ञेय कहते थे। उनकी यह नैतिक अज्ञेयता रहस्यवाद और सदेहवाद के रूप म विभाजित थी। चौथी परम्परा थी विनयवाद की। विनयवाद का भक्ति माग का ही अपर नाम समझिये। भक्ति मार्ग का आगे चलकर जो परम विकास हुआ उसका मूल स्रोत विनयवाद ही है। क्रियावादी अक्रियावादी अज्ञानवादी और

और नीच मे विभक्त कर देते थे महावीर स्वामी ने उसका उन्मूलन किया।

आज गांधीवाद म भी यही बात है। गाधी ने जिन व्रतो को पालन करने का निर्देश दिया है उनम अस्पृश्यतानिवारण भी एक है। और गाधी ने अपने सारे जीवन मे इसीका सर्वाधिक प्रचार प्रसार किया। गाधी ने वास्तव म महावीर के कार्य को ही क्रियान्वित किया। इसलिए गाधी वस्तुत महावीर के दूत है सन्देशवाहक है। ठीक वैसे ही जैसे अल्ला के पैगम्बर मुहम्मद हुए।

महावीर मानव मुकुट हुए। खरेखर वे वीर थे महावीर थे। भला जिस युग म मानव मानव से घृणा करता हो उस समय हर मानव के प्रति समानता मैत्री और करुणा दया रखने की प्रेरणा देना कितना अनूठी बात है। यह महावीरो के ही हाथ की बात है। इसलिए भगवान् महावीर की सभा म जहाँ एक ओर गौतम अग्निभूति जैसे उत्तम ब्राह्मणकुल म उत्पन्न व्यक्ति को साधना मार्ग म दीक्षित किया गया वहीं पर हरिकेशमुनि जैसे शूद्र और आर्द्रकुमार जैसे अनार्यकुल म उत्पन्न व्यक्ति को भी दीक्षित किया गया था। हत्यारे अर्जुन और चोर रोहिणेय को भी महावीर ने साधना मार्ग पर ठीक वैसे ही आरूढ किया था जैसे राजकुमार मेघकुमार और अतिमुक्तक आदि को। सचमुच--

हर आत्मा मे परमात्मा है क्षुद्र म भी ज्योति महान।
सारी मानव जाति एक है उसम कैसा भेद वितान?

ज्योति सबकी एक है फिर चाहे वह मिट्टी के दिये से प्रकट हुई हो चाहे सोने के दिये से। भीतर से सब एक हैं और एक जैसे। वस्त्र तो आवरण है बाहरी आरोपण है। इसलिए महावीर स्वामी ने जातिगत भेदभाव का पूरा निषेध किया।

न केवल जातिगत भेदभाव अपितु आर्थिक दृष्टि से भी महावीर ने मानव मात्र को एक समान बताया। उनकी सभा म जितना महत्त्व मगध नरेश श्रेणिक और राजा चेटक को मिलता था उतना ही महत्त्व पूनिया जैसे निर्धन श्रावक का मिलता था। वहाँ पर गुणों की पूजा है वेश की नहीं है। मगध-नरेश के आने पर यह नहीं कहा जाता था कि आइए! आइए!! पधारिए!!! आगे बैठिए। और पूनिया जैसे गरीब को यह नहीं कहा जाता था कि पीछे जाकर बैठो। मनुष्यत्व एक समान है। धन के द्वारा अथवा जाति के द्वारा मनुष्य का विभाजन नहीं किया जा सकता। महावीर सदियों के सबसे महान समन्वयवादी हुए। उन्होंने ही समन्वय के सर्वोदय की कल्पना दी। समन्वय के प्रथम क्रान्तदर्शी और सर्वोत्कृष्ट [illegible]

त्यागी हुए।

चाहे जातिगत दृष्टि से, चाहे सामाजिक दृष्टि से और चाहे आर्थिक दृष्टि से सभी दृष्टियों से महावीर ने सबको एक समान समझा। जाति तो बपौती तथा पैतृक देन है और धन चंचल है। जो अमीर कल धन का गर्व कर रहा था वही आज भीख माँगता नजर आता है। और जो कल भीख माँग रहा था वह आज वैभवसम्पन्न दिखाई देता है। ऐसे उदाहरण हम अपनी आँखों के सामने रोजाना देखते हैं। किसी का जहाज डूबता है तो किसी की लॉटरी खुलती है। सुख और दुःख के व्यूह चक्र में सभी आ जाते हैं। इसलिए जाति व्यक्तिगत और आत्मगत नहीं है और धन भी शाश्वत नहीं है। अतः इन दोनों से मानव का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

भगवान् महावीर ने एक और जो महत्त्वपूर्ण समस्या का समाधान किया वह था नारीजाति का उद्धार, नारी को दासता से मुक्त करना। नारी दासी थी। पुरुष के पैरों की जूती थी। बहुविवाह प्रथा ने इसे और बढ़ोतरी दी आग में घी की तरह। पुरुष की प्रधानता ने नारी-जाति को पतन के गर्त में ढकेल दिया। कारण 'द्वापर' में मैंने पढ़ा है ——

अविश्वास हा अविश्वास ही नारी के प्रति नर का।
नर के तो सौ दोष क्षमा हैं स्वामी है वह घर का।।

किन्तु महावीर ने अपने साधना मार्ग में जितना महत्त्व पुरुष को दिया उतना ही महत्त्व नारी को भी दिया। और बड़ी आस्था एवं विश्वास के साथ बुद्ध की तरह घबराये नहीं। और कहीं कहीं पर तो इतनी हद हो गयी कि पुरुष से भी ज्यादा श्रेष्ठता नारी को दी गई महावीर के द्वारा। अमीर को तो हर आदमी अपने गले लगा सकता है लेकिन जो आदमी गरीबों के आँसू पोंछता है वही आदमी वस्तुतः महावीर है विश्व का मसीहा है। महावीर तो नारी-जाति के उद्धार के लिए इतने अधिक सङ्कल्पशील और प्रयत्नशील थे कि उन्होंने परम ज्ञान की प्राप्ति से पहले ही इसके लिए प्रयास करना शुरू कर दिया। उन्होंने अपने साधना-काल में इस कार्य को छोड़कर जनहित के लिए कोई काम नहीं किया था।

भगवान् महावीर के जीवन में वहीं हृदयस्पर्शी घटना मिलती है चन्दनबाला की। राजकुमारी थी वह लेकिन भाग्य की विडम्बना के कारण दासी के रूप में बिक जाना पड़ा दासी बनी पैरों में बेड़ियाँ और हाथों में हथकड़ियाँ डाल दी गईं सिर मुण्डा दिया गया—जिस स्त्री की ऐसी दीन हालत हो गई हो उसी चन्दनबाला जैसी नारियों का महावीर ने उद्धार किया। वह भी ... हुआ इस तरह से तो प्राणिमात्र के उद्धार के लिए उ

दिलोजान से प्रयत्न करे। महावीर गॉव गॉव मे भटके और गॉव गॉव मे जाकर विश्वकल्याण की प्रेरणा दी। दुनिया म जितने भी महापुरुष हुए उन्होने ससार की समस्याओ का समाधान खोजा लेकिन महावीर ने एक एक व्यक्ति की समस्याओ का समाधान खोजा। यदि एक एक व्यक्ति की समस्याओ का समाधान हो गया तो सारे ससार की समस्याओ का समाधान स्वत हो जायेगा। क्याकि ससार व्यक्तियो का ही समूह है। व्यक्ति ससार की सबसे छोटी इकाई है।

महावीर स्वामी ने उस युग की एक और जो सबसे बडी समस्या थी मानवीय परतन्त्रता की उसका भी समाधान खोजा और उसे ईश्वरवाद से मुक्ति दिलाई। उस युग मे जहाँ एक ओर ईश्वरवादिता की धारणा का प्रभाव था वही दूसरी ओर कालवादी और नीतिवादी धारणाये अपने चरम विकास पर थी। मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता को खो बैठा था। उसके मन मे एक ही विचार था कि जैसे-तैसे ईश्वर को खुश किया जाये। और ईश्वर को खुश करने के लिए आया यज्ञ याग ब्राह्मण्वाद पुरोहितवाद। आत्मा और परमात्मा के मिलन के लिये इन बीच के दलालो को खुश करना जरूरी हो गया। मनुष्य पराधीन और परतन्त्र हो गया। वह बाह्य आचरण जरूर करता था, लेकिन भीतर से बडा आक्रान्त था। बाहर से ता पशुओ की आहुति दी जाती थी यज्ञो म लेकिन सचमुच स्वय मनुष्य भी भीतर मे पशु की तरह ही धधक रहा था। भगवान महावीर ने उसकी परतन्त्रता को समाप्त किया और उसे स्वतत्रता दी। अग्निशामक बनकर उसकी आग को बुझाया। दूसरी प्रचलित धारणाये दूसरे मत जो मनुष्य की स्वतन्त्रता का अपहरण कर रहे थे, जो उनके साथ, उनकी स्वतत्रता के साथ अत्याचार हो रहा था महावीर स्वामी ने उससे खुला विद्रोह किया और बड़े जमकर। जिस युग मे ईश्वरवादिता कालवादिता और नीतिवादिता का खुला विद्रोह करना भगवान महावीर जैसे निर्भीक बहादुरो और महावीरो के ही वश की बात है। उन्होने सत्य को प्रकट किया परतन्त्रता को समाप्त किया। मनुष्य की स्वतन्त्रता जो दूसरो ने छीन ली थी विद्रोह करके उनको वापस दिलाई। इसीलिये महावीर स्वामी के प्रति लाखो लोग आकर्षित हुए समर्पित हुए।

भगवान महावीर अनीश्वरवादी थे। अनीश्वरवादी भी मात्र इस दृष्टिकोण से कि उन्होने ईश्वर का वह रूप स्वीकार नही किया जो सृष्टि सचालन का आधारभूत माना जाता है। सृष्टि का कर्त्ता धर्त्ता या नियामक कोई सर्वशक्तिमान ईश्वर है, इसे महावीर स्वीकार नहीं करते। उन्होने षड्द्रव्यो के आधार पर यह लोक अनादि और अनन्त बताया। भला उस

तत्त्व को ईश्वर कहा भी कैसे जा सकता है जो स्रष्टा और संहर्ता हो माया से राग द्वेष से युक्त हो। इसीलिये महावीर गीता के श्री कृष्ण के तरह यह उद्घोषणा नहीं करते कि 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच। यानी

कोई हो सब धर्म छोड़ तूँ, आ बस मेरा शरण धरे।
डर मत कौन पाप वह जिससे, मेरे हाथों तूँ न तरे।।

यानी मानवजाति ईश्वर की कठपुतली हुई। न स्वतन्त्र विचार शक्ति न स्वतन्त्र संकल्प शक्ति—सब ईश्वराधीन। कर्मसिद्धांत धूमिल हो गया। ईश्वरत्व बपौती हो गया। यह राजतन्त्र हुआ। महावीर गणतन्त्रवादी थे। उनका कहना था कि हर इन्सान ईश्वर बन सकता है। प्रत्येक इन्सान अपना परम विकास कर सकता है। वीतरागता का विकास ही ईश्वरत्व का प्रकाश है। वह स्वयं ही अपना नियामक और संचालक है। अपना मित्र और अपना शत्रु वह स्वयं ही है। आत्म स्वतन्त्रता और 'आत्मा वै परमेश्वर' के सम्बन्ध में महावीर का यह अद्भुत विचार है।

महावीर परम स्वाभिमानी और परम स्वावलम्बी थे, गज और आकाशवत्। स्वस्थ थे वे यानी आत्मस्थित थे। यह महावीर के अहंकार की बात नहीं है अपितु मानवजाति और आत्मा को महानता देने की बात है। दूसरे दार्शनिकों ने भी आत्मा का अस्तित्व माना। ईश्वरवादी परम्पराएँ भी आत्मवादी ही है। किन्तु वे आत्मा को मुख्यता न दे सके। महावीर ने आत्मा को मुख्यता दी। इसीलिए महावीर स्वतन्त्र और सबसे बड़े आत्मवादी हुए। परमात्मा तो इसी आत्मा का विकसित रूप है। अप्पा सो परमप्पा। आत्मा के स्वर है—

मेरा ईश्वर मेरे अन्दर मैं ही अपना ईश्वर हूँ।
कर्ता धर्ता हर्ता अपने जग का मैं सौदागर हूँ।।
शुद्ध बुद्ध निष्काम निरञ्जन कालातीत सनातन हूँ।
एक रूप हूँ सत् सर्वदा ना नूतन न पुरातन हूँ।।

इसी तरह आत्म तत्त्व या पदार्थ तत्त्व की ध्रुवता एवं अध्रुवता के सम्बन्ध में एक जटिल दार्शनिक समस्या थी। समस्या यह थी कि कुछ दार्शनिक प्रत्येक पदार्थ को ध्रुव मानते थे, तो कुछ दार्शनिक क्षणभंगुर यानी अध्रुव। महावीर स्वामी ने हल किया और कहा नित्यानित्य। सभी सन्दर्भों को एक रूप कर दिया। क्रमशः उनका स्याद्वादी दर्शन अनेकान्तवाद रूप मुखरित हुआ। सब अपने अपने मत पर अड़े थे। पक्ष का

हुआ कि ध्रुवता का सिद्धात अध्रुव सा होने लगा और अध्रुवता का सिद्धात तो अध्रुव था ही।

भगवान् महावीर ने समाधान दिया कि सृष्टि का हर पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही प्रवर्तमान है किसी और के द्वारा नही। कोई भी पदार्थ, फिर चाहे जड हो या चेतन अपने स्वभाव से हट नही सकता। वे सब उत्पत्ति स्थिति और विनाश से युक्त है। उत्पादद्‌ठिदिभगा— इसी को त्रिपदी कहते हैं। महावीर के दर्शन का महल इन्ही तीन खभो पर खड़ा है।

मैने सुना है एक ग्वाला था। वह गाँव भर की गौओ को चराता और उससे जो आय होती उससे अपनी आजीविका चलाता था। उसकी गायो मे तीन कट्टर विद्वानो की गाय भी चरने जाती थी। वर्ष के अन्त मे ग्वाला चराई के पैसे लेने गया। सबसे पहले वेदान्ती पण्डित के पास पहुँचा और पैसे माँगे तो उस वेदान्ती पण्डित ने कहा कि कौन से पैसे और किसके पैसे जब सारी दुनिया ब्रह्मस्वरूप है। सब उसी के अश है। मैं भी ब्रह्मरूप तुम भी ब्रह्मरूप, गाय भी ब्रह्मरूप। जब सब ब्रह्मरूप है तो लेना-देना क्या? ग्वाला भारी अचम्भे मे पड गया। बड़ी मुसीबत आ गई। गँवार क्या समने मगर श्रम का फल इतना कड़वा हो सकता है यह उसने सपने मे भी नही सोचा था।

ग्वाला दूसरे पडित के पास गया वह पण्डित बौद्ध था। ग्वाले ने उससे गाय चराई के पैसे मागे। बौद्धपण्डित वेदान्ती का यार निकला। उसने कहा पैसा? कौन सा पैसा? जो तुमने गाय चराई थी वह तो चली गई। क्योकि हर वस्तु हर क्षण परिवर्तनशील है। इसलिए मेरी गाय हर क्षण नयी है। जिसे तुमने चराया वह अब कहाँ? इसलिए पैसा कुछ नहीं मिलेगा। अबकी बार तो उसकी हालत खस्ता हो गई। बड़ा बौखला गया वह। गया अपने पुराने पड़ोसी के यहाँ सीधा। वह जैन था। ग्वाले ने सारी आपबीती सुनाई। तो उस जैन ने कहा घबराने की कोई जरूरत नहीं। अभीतक ता दोनो गाये तुम्हारे ही पास है। तुम उन्हे गाये लौटाना मत। वे दोना आखिर गाये माँगने आयेगे तो वेदांती पण्डित को कह देना कि कौन सी गाय? जब सब ब्रह्मरूप है तो लेना-देना क्या? और बौद्ध पण्डित को कह देना कि तुमने जो गाय चराने के लिए दी थी वह अब कहाँ है वह तो चली गयी। यह तो नयी है कोई और है। ग्वाले के मस्तिष्क म बात जच गई। उसे अच्छा समाधान मिला। उसने वैसा ही किया जैसा जैन ने निर्देशन दिया।

आखिर दोनों पंडितों ने पैसा देकर अपनी गायें प्राप्त कीं।

महावीर का सिद्धान्त अचूक था और व्यवहारोचित भी। उनका मानना है कि प्रत्येक पदार्थ सत्ता के रूप में ध्रुव है और पर्याय की दृष्टि से हमेशा परिवर्तनशील है।

महावीर ने एक और जिस समस्या का समाधान किया, वह है रूढ़िवादिता से मुक्ति। उस समय रूढ़िवादिता बड़े चरम उत्कर्ष पर थी। महावीर ने थोथी रूढ़िवादिता से मुक्त होने का निर्देश दिया। इसलिए महावीर का धर्म और महावीर के सारे उपदेश ही रूढ़िवाद के विरोधक थे। महावीर अंधानुकरण और अंध विश्वास पर श्रद्धा नहीं रखते थे। वे कहते थे कि अंधविश्वास और अंधानुकरण नहीं आत्मानुकरण होना चाहिए, [illegible] विश्वास होना चाहिये। सत्य का अनुसरण करना चाहिए किन्तु सद् [illegible] करो।

जिधर भीड़ चलती है उधर मत दौड़ो। भीड़ अंधी है। आँखें व्यक्ति [illegible] हैं भीड़ के नहीं। भीड़ भेड़ों का टोला है। वह अनुसरण ऐसा है [illegible] कुएं में भी कूदना पड़े। यदि मनुष्य केवल भेड़ चाल की तरह [illegible] रहेगा वह कभी भी सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकेगा।

[illegible] सुना गया है कि एक साधक साधना कर रहा था। उसके एक [illegible]। जब भी साधक साधना करने बैठता तो बिल्ली उसके [illegible] करने लग जाती। साधक ने सोचा कि इसका क्या उपाय [illegible] बिल्ली को एक खूंटे से बांध दिया। अब साधक को कोई [illegible]। [illegible] साधना करते-करते ही वह साधक मर [illegible] पर असीन हुआ। जब वह ध्यान करने बैठता [illegible] कि मेरे गुरु जब भी ध्यान करते [illegible]

थागा। यिको घड़े पर पानी टिक जो? दस साल बाद वह बिल्ली भी मर गयी। दूसरी बिल्ली आ गयी। कालान्तर म वह चेला भी मर गया। तीसरा चेला आया गद्दी पर गद्दीधर। उसने फिर बिल्ली मँगाई।

इस भाति यह एक नयी रीति एक नई परम्परा चल पड़ी। उसके जो दादागुरु/प्रगुरु थे वे बिल्ली को जिस उद्देश्य से बाँधते थे इसकी ओर किसी ने भी ध्यान नही दिया। बस एक परम्परा चल पड़ी वह सदियो सदियो तक चलती ही रहती है। मूल मे क्या है लोग इसे नही खोजते। महावीर स्वामी कहते हैं कि केवल रूढ़िवादिता पर ही नहीं चलना है। मूल तक पहुँचो कि बिल्ली आखिर क्या बाँधी गयी? क्या अब भी जरूरत है उस बिल्ली को बाँधने की? मूल म रही भूल भयकर भूल है।

महावीर ने मनुष्य को रूढ़िवादिता से मुक्त किया। उन्होने ब्राह्मणवाद और यज्ञ-कर्म के प्रति विरोध किया। लेकिन उनका विरोध बड़ा अहिंसक था हिंसापूर्ण नही था। उनकी क्रान्ति शान्ति भावना से भरी थी। उन्होने केवल ब्राह्मणवाद और यज्ञ-कर्म का विरोध ही नही किया अपितु सच्चा ब्राह्मण और सच्चा यज्ञ क्या है इसकी भी अपनी परिभाषाएँ दी। परिभाषाएँ मूल्यवान और नैतिक थीं। फलत उनका प्रभाव अन्य दार्शनिक मनीषियो पर भी पड़ा। जैनो के उत्तराध्ययन सूत्र के सत्ताइसवे अध्याय म और बौद्धो के धम्मपद के ब्राह्मण-वर्ग मे और हिन्दुओ के महाभारत के शान्ति पर्व म सच्चा ब्राह्मण कौन होता है इसकी बहुत विस्तार से चर्चा की गयी है। यज्ञ का भी भगवान् महावीर ने अपने ढग से नया अर्थ प्रस्तुत किया। जो यज्ञ केवल बाह्य पक्ष से जुड़ा था महावीर ने उसे अध्यात्म से जोड़ा। महावीर की मान्यता थी कि जो लोग निरीह मूक पशुओ की बलि देते है वह वास्तव मे यज्ञ नही बल्कि हिंसा रूपी दानवी का नृत्य है। पुण्यकृत्य महापापकृत्य बन जाता है। सच्चा यज्ञ तो है अपने भीतर के पशुत्व को ज्ञानाग्नि और ध्यानाग्नि मे आहूत करना। उन्होने तप को अग्नि कहा। जीवात्मा को अग्नि-कुण्ड कहा। मन-वचन काया की प्रवृत्ति को कुड छी कहा और कर्म के काष्ठ को आहूत करने का निर्देश दिया। उन्होने अपने ढग से यज्ञ की परिभाषा और प्रक्रिया बतायी और वह यज्ञ कर्म उनका सयम से युक्त था। महावीर की भाषा है—

तवो जोई जीवो जोईठाण, जोगा सुया सरीर कारिसग।
कम्म एहा सजम जोग सन्ति, होम हुणामी इसिण पसत्थ॥

ऐसा यज्ञ ही शान्तिदायक और ईश्वरत्व ‹ ‹कराने मे

सहायक हो सकता है। महावीर की इस बात से गीता और अगुत्तरनिकाय आदि ग्रन्थ भी सार्थक सूत्र है।

सामाजिक सन्दर्भ मे भी महावीर ने समाधान दिये और वे काफी सीमा तक सिद्ध हुए। उन्होने आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए परिग्रह को सीमित करने की प्रेरणा दी अपरिग्रह क सिद्धान्त को खोजा। जिसके परिणामस्वरूप आगे जाकर साम्यवाद पैदा हुआ। सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए उन्होने अहिंसा जैसे सिद्धान्तो को लागू किया, जिनका कथन मनुष्य को शान्ति और निर्भयता प्रदान करता है। मनुष्य को युद्ध से जीवन सघर्ष से मुक्ति दिलाने मे महावीर की बहुत बडी देन है, अनुपमदा। वैचारिक विषमता को दूर करने के लिए महावीर ने अनाग्रह और अनेकान्त जसे सिद्धान्तो की खोज की, ताकि मनुष्य वैचारिक समन्वय स्थापित कर सके हर सत्य को अपने दृष्टिकोण से देख सके। कारण, मनुष्य की वैचारिक आँखो पर जब तक एकपक्षीयता और आग्रहशीलता की पट्टी बँधी रहेगी, तब तक उसे किसी भी वस्तुस्वरूप का अच्छी तरह से दर्शन नही हो सकता। सभी धर्मो के समन्वय के लिए, वैचारिक समन्वय की स्थापना के लिए उनका अनाग्रह और अनेकान्त बहुत बडी देन है। मानसिक विषमता को दूर करने के लिए उन्होने अनासक्ति जैसे सिद्धान्तो की पुष्टि की, जिसका पालन कर मनुष्य आनन्द और वीतरागता को उपलब्ध कर सकता है।

इस तरह महावीर ने उस युग की एक एक समस्या को समाधान दिया और जहाँ तक सम्भव हो सका उन्होने सभी धर्मों मे समन्वय की स्थापना की। इसीलिए महावीर दुनिया के सबसे बड़े सर्वधर्मसमन्वयवादी हुए। उन्होने जो समस्याओ का समाधान खोजा, वह न केवल उनके समय के सार्थक था अपितु आज भी उसी रूप मे सार्थक हो सकता है। युग मे कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं आया है। उनके समाधान मे कोई अन्तर नही आया। उन्होने जो समाधान खोजे वे समय के बुलबुलो के साथ क्षणभगुर होने वाले नहीं हैं अपितु शाश्वत है। हर स्थान और हर समय मे वे उपयोगी है। यही समाधानो का नैतिक मूल्य है। •

व्यक्तित्व-विकास के चार उपादान

भगवान् महावीर एक पूर्ण मनुष्य थे। उनका मनुष्य होना ही ससार के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। वे वास्तव म ऐसे मनुष्य थे जिन्होने मनुष्य म ईश्वरत्व को ढूँढ़ा। यो तो मनुष्यरूप मे मानवमात्र पैदा होता है किन्तु उनमे सभी वैसे नही होते। महावीर से पहले बहुत अवतार हुए मगर सबने ईश्वर मे मनुष्यत्व को ढूँढ़ा। महावीर म तथा रामादि अन्य अवतारो म यही तो बड़ा भारी फर्क है। महावीर ने मनुष्य मे ईश्वरत्व को ढूँढ़ा और दूसरो ने ईश्वर मे मनुष्यत्व को। जितने ईश्वर थे लागो ने उनम मनुष्यत्व की खोज की। महावीर मनुष्य थे,उन्होने अपने ईश्वरत्व को ढूँढ़ा। उन्होने अपनी इसी खोज की पद्धति को मनुष्य मात्र के लिए मुमुक्षुओ के लिए आचरणीय मार्ग सिद्ध किया। सबने यही कहा कि मनुष्य तो ईश्वर की कठपुतली है। जैसा ईश्वर चाहेगा वैसा ही होगा।

> नाचत नर मर्कट की नाई।
> सबहि नचावत राम गोसाई।

पर महावीर ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होने कहा कि यदि हम ईश्वर की कठपुतली हो जायेगे तब तो हम ईश्वर के पराधीन हो गए और हमारे कर्म की स्वतन्त्रता नष्ट हो गयी। जबकि महावीर तो स्वाधीन थे। न केवल स्वय, अपितु हर आदमी को स्वाधीन स्वतन्त्र होने की प्रेरणा देते थे और मानते थे कि हर आदमी स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता/आजादी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। ईश्वरत्व मानव की सफलता का सर्वोच्च शिखर है। उन्होने तो यह भी कहा कि यदि तुम मनुष्य हो तो तुम म ईश्वर की खोज की जा सकती है। या यो कहिये कि तुम ईश्वरत्व प्राप्त कर सकते हो मुक्त हो सकते हो। आत्मा से परमात्मा बनने के लिए मनुष्य बनने क अलावा और कोई भी उपचार नही है। सचमुच महावीर ने मनुष्य को बहुत कुछ दिया

साधना की तरफ नहीं जाकर मनुष्यता मिला है, मनुष्य शरीर मिला है। यदि कहीं सोते सोते मिला लिया तो तो यह समझो कि तुमने कौड़ी के बदले में रत्न खो दिया।

अरे! मनुष्य के फूल बड़े परिश्रम से खिलते है। गुलाब का फूल कितना सघर्ष करके खिलता है और पता नहीं किस काल में वह मुरझा जायगा। फूल खिला है, तो मुरझायगा जरूर मगर मुरझाने से पहले हम फूल की खुशबू ले लेती है फूल के मधु का पान कर लेना है। उसी मनुष्य-जन्म को अपने मनुष्यत्व को अपने सघर्ष को अपनी ताकत को सौ फीसदी प्रयुक्त कर लेना है। बहुत से लोग ऐसे होते है जो सोये सोये उस फूल को खो देते है। अरे! भले मानुष! कितना महिमावन्त है यह जीवन! किसी भी अन्य जीवन मे तुम मोक्ष की साधना नहीं कर सकते! पूर्णरूपेण यही एक जीवन ऐसा है मनुष्यत्व ही एक ऐसा फूल है, जो पूर्णतया खिल सकता है। पूर्णतया सुगन्ध फैला सकता है। यदि तिर्यच की गति में भी ध्यान ले जाते है तो तिर्यच के जीव, पशु पक्षी धर्म की साधना तो कर सकते है मगर वह साधना पूरी नहीं हो सकती, क्याकि उनके भीतर न तो जागृति होती है और न ही विवेक होता है और इसीलिए वे धर्म की पूर्ण साधना नहीं कर सकते। यदि हम देवता बन गए है तो देव भी मोक्ष की साधना नही कर सकते क्याकि देवलोक मे देवता अक्सर विलास मे डूबे रहते है भोगी होते है, भोगवासनाओ मे लीन रहते है। उनका अधिकाश समय भोग वासना में ही व्यतीत होता है तो वे विचारे कहाँ से आकर धर्म की साधना कर पायेगे।

स्वर्ग तो भोगभूमि है। कर्मभूमि तो धरती है। वहाँ धर्माचरण का अवसर नहीं मिलता। वे तो उपार्जित पुण्यो का केवल फल भोगते है। नारकीय जीवो को तो इतना अधिक दु ख भोगना पड़ता है कि दु ख के मारे धर्म को याद भी नही कर सकते!

नरक मे जो अति दु ख होता है और स्वर्ग मे अति सुख होता है। जब व्यक्ति को अति दु ख होता है और अति सुख होता है उस समय वह धर्म को कभी याद नहीं कर सकता। जबकि मनुष्य-जीवन मे न तो अति दु ख होता है और न अति सुख होता है। जहाँ न अति दु ख हो न अति सुख हो वहीं धर्म की साधना हो सकती है। इसलिए मनुष्य शरीर सबसे ज्यादा कीमती है। ढूँढ लो सारे ससार मे ढूँढ लो अपनी जैसी आकृति। क्या आपने किसी और प्राणी मे देखी है ऐसी आकृति? आप ने गन्ने को

देखा ऊँट भी देखा, शेर भी देखा कुत्ता भी देखा बिल्ली, चूहा, चीटी भी देखी, मगर अपने जैसी सुन्दर गुणवान् आकृति कहीं पायी? कही भी नही है, चाहे जितना भी ढूँढ लो। सबसे ज्यादा श्रेष्ठ सर्वोत्तम आकृति हम मनुष्यो की है। अरे! हमसे बढ़कर हो भी तो कौन सकता है?

कुछ लोग लक्ष्य से हटते जा रहे है। उनके भीतर बडी तमन्ना रहती है कि हम देव बने पर महावीर कहते है कि यदि तू देव बनना चाहता है तो तू चाहे देव बन जा, लेकिन यदि जन्म मरण से छुटकारा पाना है परम शाश्वत आनन्द को पाना है तो फिर तुम्हे इसी मनुष्यत्व को पाना पडेगा। आखिर आना तो यही का यही पडेगा। भटक लो चाहे जितनी यात्रा कर लो पर कोल्हू के बैल की तरह वही आकर रुकोगे जहाँ से यात्रा शुरू की है। भटक लो चाहे जितना भी साधना कर लो वर्तुलाकार, पर यदि विश्राम पाना है रुकना है तो इसी मनुष्यत्व को पाना पडेगा। मोक्षमंदिर का यही प्रथम द्वार है। इसीलिए मनुष्यत्व की बडी कीमत है मनुष्य जीवन की बडी महिमा है गरिमा है।

एक बात और। महावीर ने बडा अच्छा शब्द प्रयोग किया है–मनुष्यत्व। वे यह कह सकते थे कि मनुष्य भव लेकिन नही। उन्होने कहा– मनुष्यत्व'। क्योकि मनुष्य तो ढेर सारे है। दुनिया मे जितनी चिडियाँ है जितने पशु है उनसे तो ज्यादा मनुष्य होगे। इसीलिए महावीर यह कह रहे है कि केवल मनुष्याकृति ही नही अपितु मनुष्यत्व भी। अर्थात् मानवता भी हमारे भीतर हो। यदि हमने मनुष्य की आकृति पायी हो तो हमारे भीतर मनुष्य की प्रकृति भी होनी चाहिए केवल आकृति नही। आकृति की प्रकृति भी होनी चाहिए। प्रकृति समन्वित आकृति ही मनुष्यत्व है। ईश्वरत्व का बीज यही है। मानव का अपरिष्कृत रूप वानरता है और संस्कृत तथा परिष्कृत रूप भगवत्ता है। भला यदि कोई आदमी आकृति से मनुष्य है मगर उसके कर्म एक पशु से भी बदतर है तो उस आदमी को मानव कौन कहेगा? वह तो एक तरह का वानर है एक तरह का दानव है असभ्य और असंस्कृत है। जब तक हमारे भीतर आकृति मे प्रकृति का अंकुरण नही होगा तब तक हमारा मनुष्य-जन्म भी सार्थक नही हो पायेगा। मनुष्य-जन्म यदि सार्थक करना है तो हमारे भीतर मनुष्यत्व का भी होना जरूरी है।

राम कृष्ण बुद्ध ईसा ये सब कौन थ? मनुष्य थे। बहुत कहा लोगो ने कि ये ईश्वर है। आखिर तो इनको मनुष्य से ही ईश्वर होना पड़ा। यदि मानव जाति मे इनको सम्मान पाना है इनकी पूजा होनी है तो इनको

मिनट। अखबार जब पढ़ेगे तो चार घटा लगेगे। चार घन्टे मे वह पूरा समाचार याद रहेगा कि नही रहेगा पर वह जो पन्द्रह मिनट का समाचार सुना है वह पक्का याद रहेगा। मूल चीज श्रुति है सुनना है।

देखना नही सुनना इसका अर्थ आप समझे। सुनना और देखना दोनो मे बड़ा भारी फर्क है। सम्यक दर्शन और सम्यक श्रवण दोनो मे बहुत अन्तर हो गया है। हालाकि महावीर सम्यक-दर्शन पर भी बहुत जोर देते हैं। मगर वे कहते हैं कि पहले श्रावक बनो श्रवण करो। उसके बाद तुम श्रमणत्व को लेना। उसके बाद तुम सयम मे पुरुषार्थ करना। उसके बाद तुम सम्यक-दर्शन की आराधना करना। मूल चीज है सबसे पहले श्रवण करो पश्चात् देखो। यानी सुनी हुई को सम्यक दृष्टि से परखो। ताकि सत्यासत्य का सही दर्शन हो सके।

इसको हम थोड़ा सा दार्शनिक ढग से समझे। महावीर स्वामी ने एक सिद्धान्त दिया जिसका नाम है अनेकान्तवाद। महावीर स्वामी ने निरसन किया एकान्तवाद का। जहाँ पर उनको एकान्तवाद दिखाई दिया कहा कि उनको एक किनारे रखो। एकान्तवाद को भी समझे नये दृष्टिकोण से। हम इसी आँख-कान को ले ले। यहाँ एकान्तवादी भी है और अनेकान्तवादी भी है। कान को अनेकान्तवादी समझिये बहुआयामी है यह। पीछे बोलिये तो भी सुनायी देगा। आगे बोलिये फिर भी सुनायी देगा। आगे पीछे ऊपर-नीचे तिरछे कही से भी बोलिये फिर भी सुनाई देगा।

जबकि आप आँखो की ओर नजर डालिये। आँख एकान्तवादी है। वह केवल अपने सामने के दृश्य को देख सकती है। आँख के पीछे क्या हो रहा है आप नही देख पायेगे। इसीलिए जब विज्ञान चन्द्रमा को देखता है तो चन्द्रमा तो दिख रहा है। मगर केवल सामने का हिस्सा दिखायी देता है। वह चन्द्रमा के पीछे का हिस्सा नही देख पायेगा। इसलिए नही देख पायेगा कि वह दर्शन पर जोर देता है। आँखे एकान्तवादी होती हैं एकआयामी होती हैं। वह हमेशा सामने वाली चीज को देखेगी। जबकि सम्यक श्रवण यानी सुनना अनेकान्तवादी है। वह चारो तरफ से सुनता है।

इसे हम थोड़ा-सा और अच्छी तरह से समझे। जैसे एक है दीया और एक है टार्च। दीया जिस कमरे म जलायेगे सारे कमरे को प्रकाशित कर देगा किन्तु टार्च जलायगे, तो केवल सामने वाले दृश्य को ही उज्ज्वल करेगा। कारण टार्च सीधी प्रकाशरेखा है। टार्च की अपेक्षा दीपक अधिक श्रेष्ठ है। ठीक ऐसे ही श्रवण अधिक महत्वपूर्ण है। श्रवण ग्रहणशीलता का

पोपक है और ऑग प्रशेपणाटमा है। इसलिए सबसे पहले हम शु
अपनाए। सबसे पहले हम श्रावक बने। सुनो, जितना सुन सकते हो।

दशवैकालिक की एक बड़ी मार्मिक गाथा है कि—

सोच्चा जाणइ कल्लाण सोच्चा जाणइ पावग।
उभयपि जाणए सोच्चा ज सेय त समायरे॥

महावीर कहते है कि सोच्चा जाणइ कल्लाण, सोच्चा जाणइ पा
तुम सुन कर ही कल्याण को जान सकते हो और सुनकर ही पाप को ज
सकते हो और सुनने के बाद जो तुम्हे अच्छा लगे वह तुम करो।

महावीर यह नही कहते कि तुम देखो या करो। महावीर यह कहते
है कि तुम सुनो। सुनने के बाद जो तुम्हे अच्छा लगे, उस श्रेयस्कर क
आचरित करो। इसीलिए वे कहते है कि श्रुति परम दुर्लभ है। दुर्लभ क्यों
कहा इसे? इसीलिए कहा कि जैसे यहाँ पर हजारो लोग बैठे है बैठे तो है
बात ठीक है। यहाँ बैठे है, कान खुले है सुन रहे है। पर इसका मतलब य
नही कि श्रुति हो गयी श्रवण हो गया। हो सकता है मैं कह रहा हूँ कोई
बात। आप सोचते है कि महाराज यह बात ठीक कह रहे है या गलत
यदि कोई अपने विचारो मे खोया है, तो वह यहाँ पर प्रवचन सुनते हुए भी
न सुने जैसा हो जायेगा। श्रवण के समय मात्र श्रवण का ही भाव हो। ताकि
जो सुनाया जा रहा है उसका पूरा सार हो सके। उस पर चिन्तन मनन
अवश्य करना है किन्तु पूरी तरह से श्रवण करने के बाद। यदि सुनते समय
ध्यान कही और जा रहा है तो श्रुति नहीं हो पायी। शरीर से आप यहाँ पर
बैठे हुए है पर मात्र यहाँ बैठने से श्रवण और श्रुति नही हुई।

याज्ञवल्क्य प्रवचन देने बैठे। जैसे ही प्रवचन देने बैठे तो देखा लोगो ने
कि सारी सभा खचाखच भर गयी है। बहुत से ऋषि मुनि भी उपस्थित है।
पर याज्ञवल्क्य अभी तक अपना प्रवचन शुरू नहीं कर रहे है। आखिर ऐसा
क्या लोगो ने कहा। कानाफूसी होने लगी। किसी ने कहा कि महर्षि हो गये
तो क्या हुआ साधु हो गये तो क्या हुआ अरे जब तक राजा जनक नहीं
आयेगे तब तक याज्ञवल्क्य अपना प्रवचन शुरू नही करेगे। साधु हो गये तो
क्या हो गया अभी तक इनको भी सत्ताधारी लोगो से बड़ी गरज है। जिनके
पास धन है जिनके पास सत्ता है उनके प्रति साधु बड़े हमदर्द है। ऐसे ही
बैठे है याज्ञवल्क्य भी। तुम तो प्रवचन सुनने के लिये आये हो मगर ये
तुमको महत्त्व नहीं देते है। ये एक सत्ताधारी पैसेवाले को महत्त्व देते है।
लोग बहुत बात चीत करने लगे। याज्ञवल्क्य ने बैठे बैठे देखा लोगो के

ीभावनाओ को उनके विचारो को भीतर के सपना को निहारा। वे समझ गये कि ये लोग कैसे मूर्ख आदमी है।

कुछ ही देर बाद राजा जनक पहुँचे। जैसे ही जनक पहुँचे कि याज्ञवल्क्य ने अपना प्रवचन शुरू कर दिया। लोग बैठे तो है प्रवचन सुनने के लिये मगर याज्ञवल्क्य के प्रति इतनी घृणा हो गई कि वे समझने लगे ये साधु नही सत्ताधारियो के पिट्ठू हैं। प्रवचन शुरू हो गया। आधा प्रवचन हुआ होगा कि अचानक दूर से एक आदमी भागा आया चिल्लाता हुआ दौड़ता हुआ। आकर बोला गजब हो गया बडा गजब हो गया। मिथिला मे आग लग गयी है।

सब लोग दौडे वहाँ से। बहुत से साधु बैठे थे। किसी ने सोचा अरे मै अपनी झापड़ी सुला कर आया हूँ कही आग न लगे। किसी ने सोचा कि अरे मेरा कमडल तो वही कुटिया मे पड़ा है कही वह न जल जाय। कोई अपनी लगोटी सम्भालने के लिये भगा। कोई अपना दड सम्भालने के लिये भगा। सारे लोग भगने लगे। अरे मिथिला म आग लग गयी।

याज्ञवल्क्य ने पूछा जनक स कि क्या बात है जनक? वह कह रहा है कि मिथिला म आग लग गयी है। मिथिला मे आग लगी है तो तुम भी क्या नही जाते? तुम्हारा राजमहल है तुम्हारी पत्नियाँ है तुम्हारे बच्चे है तुम भी जाओ और अपने राज्य को बचाओ। जनक ने कहा– भगवन्! आपने जो प्रवचन दिया उसी मे मै डूब गया हूँ। केवल मुझे इतना बोध है कि उनको बचना होगा तो वे स्वय बच सकते हैं मेरे जाने से नही बचेगे। आप तो बस अपने मुख से अमृतवाणी बरसाते रहे। मै तो उसी को सुनूँगा।

मिथिलाया दह्यमानाया न मे दहति किंचन।

मिथिला के जलने मे मेरा कुछ नही जलता।

सारे जो दिखावे भर के सत थे दिखावे भर के श्रोता थे वे सब के सब पहुँचे मिथिला मे तो देखा कि मिथिला तो वैसी की वैसी है। यहाँ पर आग है ही नही। बडी शर्म आयी सबको। यहाँ पर तो आग है ही नही तो वापस आये सब। देखा कि राजा जनक तो अभी तक बैठे है। याज्ञवल्क्य ने कहा कि तुम लोग समझ चुके होगे कि मै राजा जनक की किसलिये प्रतीक्षा कर रहा था और जो वास्तव मे एकनिष्ठ श्रोता होता है उसी को प्रवचन सुनाया जाता है। सम्यक श्रवण ऐसे ही व्यक्ति को होता है जनक जैसे लोग तो दुर्लभ हैं। इसीलिये महावीर ने कहा कि श्रुति परम दुर्लभ है जनकवत्।

'दुल्लहा ... यानी श्रद्धा परम दुर्लभ है। किन्तु यह श्रद्धा मिथ्यादृष्टिओं के लिए ही दुर्लभ है। जिनकी अन्तर्दृष्टि सम्यक है उनके लिए श्रद्धा परम सुलभ है। सद्भावों और सद्विचारों के प्रति ऐसे सम्यग्दृष्टि वाले लोगों के हृदय में श्रद्धा की सहज अभिव्यक्ति होती है। श्रद्धा का झरना अन्तर पहाड़ों से फूट पड़ता है। मगर इसका मूल सूत्र धर्मश्रवण ही है। कारण धर्मश्रवण और श्रद्धा दोनों अन्योन्याश्रित हैं। जिस परम दुर्लभ श्रद्धा की बात कही है महावीर ने उसके लिए धर्मश्रवण होना अत्यन्त जरूरी है। यदि धर्म श्रवण हुए बिना श्रद्धा होगी तो वह अनायास असद्भाव के प्रति भी उन्मुख हो सकती है। इसी तरह धर्मश्रवण की सार्थकता के लिये उस पर श्रद्धा का होना बहुत आवश्यक है। श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।

महावीर कहते हैं कि मनुष्यत्व मिल गया श्रुति मिल गयी पर श्रद्धा परम दुर्लभ है यह बहुत मार्के की बात कही। क्योंकि जब आप सुनेंगे तो सुनने के बाद सुनने के दो परिणाम आते हैं। पहला परिणाम तो यह कि सुनने के बाद या तो आपके भीतर तर्क उठेगा या फिर श्रद्धा होगी। यदि दोनों न हुए तो संशय हो जायेगा। तीन परिणाम होते हैं। हमने सुना। सुनने के बाद एक आदमी को तो ऐसा लगता है कि महाराज ने जो बात कही वह सही है या नहीं, यह ठीक है या नहीं। वह संशय के इस झूले में झूलता रहता है। दूसरा आदमी जिसने सुना है उसके सुनने के बाद उसके भीतर तर्क पैदा होता है। और तीसरे आदमी ने जो सुना उसके भीतर श्रद्धा उत्पन्न हो गयी और श्रद्धा होते ही संयम में पुरुषार्थ शुरू कर देता है।

महावीर कहते हैं कि श्रद्धा परम दुर्लभ है। क्योंकि प्राय होता तो ऐसे ही है कि लोग सुनते तो बहुत हैं मगर सबके भीतर तर्क पैदा हो जाता है श्रद्धा पैदा नहीं होती। जिन्होंने बहुत सुना उन्हें यदि चार आदमी मिल गये तो वे उनसे तर्क शास्त्र के आधार पर वाद विवाद करने में लग जायेंगे। मगर जो सुना है, उससे कहीं श्रद्धा नहीं हो पायी। इसलिये तर्क में और श्रद्धा में बड़ा भारी फर्क हो जाता है। आपने देखा होगा जैसे मैं कहूँ कि पाँच और पाँच दस होते हैं। यह तर्क हुआ। मैंने आपको यह सुनाया कि पाँच और पाँच दस होते हैं। आपने सुन लिया तर्क जान गये मगर यदि आप कहेंगे नहीं–नहीं पाँच और पाँच पचपन होते हैं। मैंने कहा कि पाँच और पाँच दस होते हैं। दोनों में तर्क है। आप अपने तर्क पर ठीक हैं। मैं

स्वर की भाँति सिकुड़ गया हो। सुरक्षा के नाम पर किये शस्त्र निर्माण हुए हैं। अतिशयोक्ति शस्त्र निर्माण के उपरान्त भी मनुष्य भयग्रस्त है। उसके हृदय मे अभय का सचार नहीं हुआ है। इन सभी प्रयासों का परिणाम अन्तत अहितकारी सिद्ध हुआ है। फलत शस्त्रों की इस होड़ ने मनुष्य को सर्वनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है। पता नहीं, शस्त्रों के ये अजगर मानव जाति को कब निगल जाएँ?

मनुष्य की अर्थसमृद्धि ने तो उसे और अधिक अर्थलोलुप बना दिया है। इसीका परिणाम है कि मनुष्य शोषक तथा शोषित—ऐसे दो वर्गों मे विभाजित हो गया है। अत आज चाहे मनुष्य बाहर से भव्य और सुसस्कृत बना हो लेकिन उसके अन्तर् म पशुत्व अपना आसन जमाये बैठा है। दीप का बाह्य पक्ष भले ही उज्ज्वल और प्रकाशमय हो, लेकिन उसके भीतर मे काजल का कालापन ही छिपा है। उसकी हर लौ प्रकाश फैलाकर अन्त मे कमरे को भद्दा ही करती है। प्रकाश हो किन्तु धूआँ नहीं। निर्धूम ज्योति जले।

ऐसी ज्योति धर्म है। जो ज्योति तो फैलाता है किन्तु धूम्ररहित निर्धूम और कम्परहित यानी निष्कम्प, अकम्प। पूजा प्रकाश की है धुएँ की नहीं। धुए से दिल जलता है, आँखे जलती है नाक जलता है। इसीलिए तो लोग धुएँ से दूर रहना चाहते है। धूआँ वस्तुत भटकाव का प्रतीक है और प्रकाश मार्गदर्शन का। धर्म प्रकाशस्तम्भ है।

जीवन एक तमसावृत वातावरण है जन्म तथा मृत्यु के बीच का पृथ्वी और आकाश के मध्य का। धर्म उस सूचीभेद्य अधकार म से व्यक्त ज्योति है। यदि किसी व्यक्ति के पास धर्म की प्रभा है तो वह सम्यक पथारूढ ही रहेगा। फिर चाहे उसका जीवन अमावस्या बन जाये अधकार ही अधकार हो किन्तु वह पतन के गर्त मे कभी भी और कहीं भी नहीं गिरेगा। इसका मूल कारण यही है कि उसके पास धर्म की दीपशिखा है टार्च है प्रकाश है। जिसके पास यह नहीं है वह भटकेगा गिरेगा रोयेगा। यूँ समझना कि वह अधे के समान है।

जीवन और धर्म दोनो को अलग नहीं किया जा सकता। वस्तु सहाव धम्मो सूत्र कहता है कि जीवन का स्वभाव धर्म है। इसलिए जीवन और धर्म अभिन्न है। परस्पर अन्योन्याश्रित है। जैसे ही दोनो को पृथक् पृथक् करने का प्रयास करेंगे दोनो ही मर जायेंगे। धर्म की जीवितता जीवन पर आधारित है और इसी तरह जीवन की जीवितता। जो जीवन धर्म से

विन है वह जीवन सक्रिय है शव समान है। जो धर्म जीवन से विपरीत है वह भी निष्प्राण है। इसलिए जो जीवन धर्म से जुडा है वह जीवन ज्योतिर्मुख है। स्वय के जीवन मे जब धर्म का दीप जलता है तभी धर्म फलीभूत होता है। बाहर के दीप काम न देंगे। कृष्ण ने अपना दीप जलाया। महावीर ने अपना दीप जलाया ईसा ने अपना दीप जलाया। महावीर चाहते तो कृष्ण के दीप प्रकाश मे साधनामार्ग पर चल सकते थे। किन्तु नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। कृष्ण का दीप महावीर के लिए बाहर का दीप था पराया था। महावीर ने जो दीप जलाया वह अपना था। स्वय का दीप स्वय के जीवन मे जलाया। इसीलिए तो कबीर रैदास नानक इन तीनो ने कहा कि भीतर मे अनन्त दीप है। बस धर्म का एक ज्योतित दीप उन्हे चाहिए। जीवन के षट्चक्र के पार हजारो सूर्यो का प्रकाश है। भागवत का एक सूत्र मुझे ध्यान मे है कि स्वधर्मानिधनमच्युतस्य। यानी स्वधर्म ही ईश्वरीय पूजा है।

धर्म का अग्रेजी शब्द है रिलीजन। मूल मे शब्द है रि और लिगारी। रि का अर्थ है पुन या पीछे और लिगारी का अर्थ है बाधना। यानी रिलीजन अर्थात् धर्म जीवन के मूल तत्त्व मे बाधने की प्रक्रिया है। सूर्य द्वारा सध्याकाल मे अपनी किरणो की वापसी—यही धर्म है। ससार मे बिखरी हुई किरणो का धारण करना—यही धर्म है। जीवन की समग्रता को धारण करना ही धर्म है।

मनु ने कहा है कि धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित । मनु का यह वचन बहुत व्यावहारिक है। उन्होने कहा है कि धर्म का नाश करने पर जीवन का नाश हो जाता है। धर्म रक्षित होने पर रक्षा करता है।

जैसे कोई पति अपनी पत्नी को तलाक दे देता है तो यह स्वाभाविक है कि पत्नी भी उस पति को छोड देगी। यदि पति पत्नी को अपनाता है तो निश्चित है कि पत्नी भी उसे अपनाएगी। दो व्यक्ति परस्पर शत्रु है बोलते भी नहीं तो उनको मित्र कौन कहेगा? जीवन मे यदि धर्म नहीं है तो वह जीवन का नाश कर डालेगा। जीवन रहेगा पर जीवन्तता खो जायेगी। आँखे खुली रहेगी पर खुली आँखो मे भी जागृति की छाया रहेगी जागृति नहीं होगी। लगेगा कि सुख है किन्तु वह कोरा आभास मात्र होगा। उस सुख के भीतर मे तो दुःख छिपा हुआ पाओगे। अतः धर्म जीवन की आत्मा है। जीवन के महल की नींव धर्म ही है।

धर्म मे है तो मात्र दो अक्षर ही। मगर इन दो अक्षरो मे महासागर

रहगा। कोई न कोई ता हमारा नाक लगा। यह तो वह बात हो गई कि अपनी नाक कट गई ता सबको नाक कटवाने की प्ररणा दो। यदि सभी लोग नकटे हो जायगे तो उनकी हँसी नहीं उड़ेगी। यह बात साफ जाहिर हे कि शादी विवाह काम भाग ये अन्तत दु खकर है किन्तु व्यक्ति इस दु ख का उपभागी हो जाने पर भी अपने बच्चो को सचत नहीं करता दु ख स दूर नही रखता है। वह ता उल्टा कहता है बटा! शादी करा। तुम्हार लिय लड़की पसन्द कर ली ह।

मैने सुना है एक आदमी ने अपन बटे स कहा कि देख! मैं तीर चलाने म बडा निपुण हूँ। तुमन अर्जुन क बार म सुना हागा कि अर्जुन महातीरन्दाज था महाधनुर्धर था। आज आज म तुम्हे वैसा ही कला दिखाता हूँ। यह कहकर उस व्यक्ति न आकाश म उडत एक पक्षी पर तीर मारा। किन्तु वह चूक गया तीर पक्षी का लगा नहीं। उस व्यक्ति ने माना कि यह ता गलत हो गया। अपनी गलती का स्वीकार करना उसने स्वप्न म नही सीखा था। वह बाला देख बटा! दख कैसा तीर लगा है मरा निशाना हमेशा अचूक होता ह। पर आश्चर्य ता देख कि तीर लगने के बाद भी पक्षी उड़ता चला जा रहा है।

खुद उल्लू बना और दूसरा को भी उल्लू बना रहा है। तीर लगा नहीं फिर भी कहता ह कि तीर लग गया है और चमत्कार यह ह कि तीर लगने क बाद भी पक्षी उड़ रहा ह। बेटे क साथ भी धाखाधड़ी! भला जो अपन बटे के साथ धोखा कर सकता है वह और किसी क साथ भी धोखाधड़ी करे तो इसम कोई आश्चर्य की बात नहीं ह। अरे भले मानुष! तुम चूक गये हो ता बटे को स्पष्ट कह दो बेटा! मैं चूक गया। पर लोग कहत हैं कि म ता कभी चूकता ही नहीं म अपने स्थान पर ठीक हूँ। चूकती तो दुनिया है मैं नहीं चूकता।

तो लोग अमगल को भी मगल ही कहते है। कृत अमगल का अमगल के रूप म स्वीकार करने स उनकी प्रतिष्ठा क महल को धक्का लगता है।

भारतीय मनीषिया ने मगल कहा ह माम् पापम् गालयति इति मगलम्। यानी जो हमार पापा का नष्ट कर वह मगल है। और ऐसा मगल धर्म ही है।

धम्मो मगलमुक्किट्ठ अहिंसा सजमो तवो—धर्म उत्कृष्ट मगल है। धर्म वह है जो अहिंसा सयम और तप यानी गगा यमुना और सरस्वती का त्रिवेणी सगम ही प्रयागराज तीर्थ है धर्म है। महावीर की यह त्रिपथगा

गिलास रखी फ्रीज खुला का खुला ही छोड दिया और भागकर नीचे आये पापा बेटे को सम्भालने के लिये।

अब सोचिये कि पिता पुत्र के लिये क्या भागकर आया और पुत्र ने भी पिता को ही क्या पुकारा? क्योकि पिता जानता था कि बेटा केवल मेरे प्रति ही समर्पित है और बेटा भी जानता है कि असमय मे यदि कोई मुझे बचाने के लिए आयगा तो वह पिता ही है और कोई दूसरा पडौसी नही आयेगा। पिता और पुत्र मे आत्मा का सम्बन्ध है खून का सम्बन्ध है। इसी तरह जो व्यक्ति धर्म के प्रति इतना श्रद्धान्वित है धर्माचरण मे मन तल्लीन रखता है धर्म का अमृत पान करने मे रस पगा हो गया है तो देवता भी उसके लिये दौडे आयगे। देवता तो धर्मात्मा की छाया है। देव का अर्थ होता है दिव्यत्व। धर्म का दिव्यत्व प्रगट होने के बाद सबको सबको देव आयगे। बिना बुलाए आएँगे धर्म दिव्यत्व से आकर्षित होकर। यह धर्म का गुरुत्वाकर्षण है चुम्बकीय शक्ति है। जैसे पुत्र के लिये पिता आता है दिये के पास पतगा आता है वैसे ही देव भी आयगे पूजगे नमेगे।

धर्म श्रेष्ठ मगल है
तप सयम भगवती अहिंसा
का जिसको सम्बल है
होते देव चरण नत जिसके
उसका अमृत फल है।

धर्म का यह अमृत फल है कि देव भी स्वय वन्दन करते है। वे वास्तव मे इसलिए आते है ताकि धर्मात्मा द्वारा की गयी वन्दना पवित्र स्वर है और उन स्वरो मे देवो के स्वर भी एकलय हो जायें।

वन्दना के इन स्वरो मे
एक स्वर मेरा मिला लो।
अर्चना के रत्न-कण मे
एक कण मेरा मिला लो।।

देव चिर प्रतीक्षित है उस धर्मात्मा को पाने के लिए जिसकी वीणा मधु चुकी हो। जब मानव की वीणा के साथ देवो की वीणा भी झकृत हो जाती है तो परमात्मा भी झूम उठता है प्रकृति नाचने लगती है। अनुभव किया आपने कभी जीवन का यह अद्भुत आनन्द? झूम उठोगे आप भी जब यह आनन्द का स्रोत फूटेगा। कितने लोग झूम पडे थे—अतिमुक्त चैतन्य सूर मीरा—अनेकानेक। आप भी झूमो। अपनी वीणा के टूटे तारो

वह ठीक इसमे व्यतिरेकी है। अधर्म हिंसा संग्रह चायकर्म झूठ बेईमानी जैसे दुर्गुण के कचरे का मलबे को लाकर एकत्रित कर देता है। धर्म और अधर्म के इस अन्तर को आप समझें।

मैं देखता हूँ कि बहुत से लोग अधर्म को सँजोकर रखना चाहते हैं। जानते है अधर्म बुरा है कल्मष है फिर भी अधर्माचरण से अलग नहीं होते। ऐसे लोगो को दीप तो क्या हजारो सूर्यो का आलोक भी लाभ नहीं पहुँचा सकता जो आँख होते हुए भी आँख बन्द कर लेते है। इनसे तो बिचारा अन्धा भी अच्छा जो कम से कम यह तो स्पष्ट जाहिर कर देता है कि मै अन्धा हूँ। जो व्यक्ति कसाई है उसको कुछ नहीं कहा जाता मगर जो आदमी कसाई नहीं है वह यदि एक भी पशु मार देगा तो वह अपराधी और निन्दनीय कहा जाता है।

लोग अधर्म भी करते है और धर्म भी। धर्म कम अधर्म ज्यादा। धर्म को अपनाते है समाज मे प्रतिष्ठा टिकाए रखने के लिए और अधर्म करते है अपना उल्लू सीधा करने के लिये। अधर्म करते है फिर अधर्म के ऊपर धर्म का आवरण लगा देते है धर्म की परत लगा देते है ताकि अधर्म ढका रह जाय। कोढ का रोग और उस पर शानदार पोशाक। पूरी असगति है यह।

लोग करोड़ो की स्मगलिंग करते है टैक्स चुराते है रिश्वत खाते है घी मे चरबी मिलाते है कालाबाजारी करते है एव एसे घिनौने कार्य करते है धन्धे करते है और लाख दो लाख पाच लाख का दान देकर अपने उन पाप को ढक लेते है। मै ऐसे अनेक लोगो को जानता हू अच्छी तरह से। गजब की बात एक और है कि ये लोग अधर्म करते हुए भी अभिनन्दन पत्र पाते है। प्रतिष्ठा होती है मन्दिर की किन्तु मन्दिर की आड मे अपनी प्रतिष्ठा करा लेते है। पचकल्याण उत्सव कराकर उसके बहाने ये पच लोग अपना कल्याण कर लेते है। बोलियाँ बोलकर हजार दो हजार मे इन्द्र-पद पा लेते है और वह गरीब व्यक्ति जो बिचारा रोजाना मन्दिर मे भगवान् की पूजा करता है इन्द्र बनने का सच्चा अधिकारी है एक कोने मे बैठा बैठा अधार्मिको की यह रामलीला देखता रहता है।

अनेक लोग अधर्म करते है लेकिन थोडा सा धर्म करके करके नहीं दिखाके अपने अधर्म को छिपा लेते है। अधर्म का सर्प जीवन घट मे छिपा लेते है और उस पर धर्म का ढक्कन लगाना चाहते है। किन्तु उन अज्ञात लोगो को यह नहीं पता कि वह सर्प अन्दर है और वह भीतर मे धीरे धीरे

[illegible] ... इसी कारण ... [illegible]।

महावीर कहते हैं कि अपने अहंकार को विसर्जित करके मेरे पास आओ। अगर तुम अपने को ही मन में लेकर आओगे तो मैं क्या दूँगा? मेरे पास सिर्फ खाली होकर आओगे तभी तो मैं तुम्हें कुछ दे सकूँगा। तुम घड़े में ही अपने [illegible] अहंकार से भरकर लाये हो तो कभी भी मैं उस घड़े को भर नहीं पाऊँगा। मेरे पास आये हो तो समर्पित हो जाओ, विनम्र हो जाओ, अपने अहंकार का बिल्कुल त्याग करो, फिर देखो मैं क्या उड़ेलता हूँ उसमें जीवन का अमृत।

अत महावीर के प्रति हम सबको समर्पित होना है। अपने अहंकार को छोड़कर मात्र ज्ञान पाने के लिए हम महावीर के पास जाना है। किन्तु एक बात और कि हम महावीर से बँधना नहीं है वरना राग का बन्धन आगे बढ़ने में बाधक हो जायगा। हम तो महावीर के बताये हुए मार्ग पर चलना है। आज से हमारी यात्रा मोक्ष मार्ग की ओर शुरू हो रही है। आज से हमारी यात्रा शुरू हो रही है भीतर के परमात्मा को पाने के लिए। यात्रा की शुरुआत से पहले उनका कहना है कि मेरे पास बहुत पानी भरा है। तुम अपने जीवन का घट लेकर तालाब में उतर आओ। तालाब में उतर गये हम पर एक बात और कि हमने घट को तो पानी में छोड़ दिया है और उस घडे के चारों तरफ पानी भी है मगर जब तक घडे को हम डुबायगे नहीं तब तक वह भरेगा नहीं चाहे वह वर्षों तक उसी तरह से पानी में पडा रहे। यदि हम अपने जीवन के घट को भरना है तो उसे भरने के लिए हमको झुकना पडेगा। वास्तव में हम पानी में डुबकी लगानी पडेगी। बिना

नुके बिना विनीत हुए बिना नम्र हुए कभी भी हमारे जीवन का घट भर नहीं सकता। आज के प्रथम सूत्र में भगवान महावीर यही कहते है–

आणा निद्देसकरे गुरूणमुववायकारए।
इंगियागार सपन्ने से विणीए त्ति वुच्चई।।

महावीर कहते है कि जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन करता है, गुरु की सेवा करता है गुरु के इंगिताकार को जानता है वह विनीत कहलाता है।

यह बिल्कुल एक भाषाशास्त्रीय परिभाषा दी है। कितने सीधे सादे शब्द हैं कही पर भी सजावट नहीं है। विनीत शब्द की जैसी परिभाषा होनी चाहिए वैसी ही दी है। यदि महावीर के स्थान पर कृष्ण होते तो पहले व चार वार अपनी बासुरी बजाते फिर राधा को बुलाते नचाते फिर अपने प्रति समर्पित करते। ऐसा होते तो अपने शिष्यो का बुलाते तब विनय धर्म की प्रेरणा देते। मगर महावीर यह प्रेरणा भी नहीं देते क्योकि भाषाशास्त्री व्यक्ति कभी भी प्रेरणा नहीं देता है। मात्र जैसा होता है वैसा बता देता है। कर्म करना न करना मानना न मानना य तुम्हारी मर्जी की बात है। कोई जोर-जबरदस्ती नहीं है। कोई आग्रह नहीं है।

सूत्र मे विनीत की परिभाषा है और विनय की महिमा का दर्शन ह। सचमुच मानव जीवन म विनय का बड़ा महत्त्व है। जीवन की सफलता की कुजी विनम्रता है विनय है। विद्या का प्रतिफल विनय ह। विद्या ददाति विनयम्। हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि हुए है हरिऔध। उनकी कुछेक सुन्दर पक्तियाँ हैं इस सम्बन्ध मे कि –

विनय करो मे सफल सफलता की है ताली।
विनय पुट बिना नहि रहती मुखडे की लाली।।
विनय कुलिश को भी है कुसुम बनाता।
पाहन जैसे उर को भी है वह पिघलाता।।
निज करतूते कर विनय होता है वहा भी सफल।
रह जाती हैं बुद्धि-बल सहित जहाँ रचना विफल।।

बहुत अच्छी पक्तियाँ है हरिऔध की। कवि ने कहा है कि विनय के हाथो से सफलता मिलती है। जैसे ताले की चाबी मुख्य है वैसे ही जीवन म विनय मुख्य है। मनुष्य की शोभा को बढ़ाने वाला विनय ही तो है। यदि किसी वज्र को कुसुम की तरह नम्र और कोमल बनाना हो तो विनय साक्षात वरदान है। पत्थर जैसे हृदय को भी वह बर्फ की भांति पिघला कर

[illegible] है। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] है। इसीलिए महावीर का सूत्र है—

आणा निद्देसकरे गुरुणमुववायकारए।
इंगियागारसंपन्ने से विणीए त्ति वुच्चई॥

[illegible] आणानिद्देसकरे यानी जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन करता है।

इस तरह समझना। गुरु के दो अर्थ है। पहला तो बिल्कुल प्रचलित है कि आचार्य उपाध्याय और साधु इन तीनो को गुरु कहते है। मगर गुरु का अर्थ यह भी होता है कि जो अपने से बड़े हो। महावीर यह कह सकते थे कि आचार्य की आज्ञा मानो उपाध्याय की आज्ञा मानो साधु की आज्ञा मानो, मगर महावीर बड़े दूरदर्शी व्यक्ति थे। वे बड़ी ही गहराई की बात करते थे। इसीलिए उन्होने मात्र गुरु शब्द का प्रयोग किया। जिसमे आचार्य उपाध्याय साधु ये सभी आ गये और बड़े बुजुर्ग भी आ गये। माता पिता भी आ गये। एक ही शब्द मे सारे लोगो का समावेश कर दिया।

महावीर स्वामी ने कहा कि गुरु की आज्ञा और निर्देशो का पालन करो। वैसे तो अधिकांश लोग चाहे गृहस्थ हो या साधु हो वे गुरु को मानते है स्वीकार करते है। उनके निर्देशो को मानते है, मगर आज्ञाओ का पालन करने वाले कम लोग होते है। मै आपको एक साधु का नाम बताता हूँ जिसका नाम था महोपाध्याय समयसुन्दर। समयसुन्दर ने लिखा है कि मेरे पचासो शिष्य है। न मालूम मैने कितना कष्ट उठाकर इन शिष्यो को पढ़ाया लोगो से मैने सिफारिशे की तब जाकर कही इनको पदवियाँ मिली। सारे भारत मे मैने इनकी प्रसिद्धि कराई राजाओ अधिकारियो तक इनकी पहुँच करायी। मगर बड़ा अफसोस है कि ये लोग मेरी आज्ञा का पालन नहीं करते। ऐसे शिष्य किस काम के जो गुरु की सेवा नहीं करते। वे तो भारभूत है। उन्होने पुन पुन यह कहा है कि 'यदि ते न गुरोर्भक्ता शिष्यैः किं तैर्निरर्थकैः'। इसलिए समयसुन्दर दूसरे साधुओ को कहते है कि साधुओ! यदि तुम्हारे कोई शिष्य नहीं है तो तुम दुःख मत करो। तुम बड़े भाग्यशाली हो कि तुम्हारा कोई शिष्य नहीं है। देखो मेरे तो पचासो शिष्य है फिर भी मै दुःखी हूँ और तुम्हारा एक भी शिष्य नही है तब तुम क्या

दुखी हो। चेला नही है तो चिन्ता मत करो। क्योकि जितने चेले उतने ही अधिक दुख हैं।

चेला नही तउ म करउ चिन्ता दीसइ घणे चेले पणि दुख।

सतान करमि हुआ शिष्य बहुला पणि समयसुन्दर न पायउ सुक्ख।

सचमुच आज के युग म शिष्य कम मिलते है गुरु ज्यादा मिलते है। आज गुरु जितने ढूँढने जाओ मिल जायगे पर शिष्य बहुत कम मिलेगे। श्रोता ढूँढने जाओ तो हजारो की तायदाद म मिलेगे।

मैने सुना है कि एक साधु के पास एक चौधरी पहुँचा। तो उसने देखा कि साधु बाबा सोये हुए हैं। उसने सोचा कि साधु जी सोय हुए हैं। चलो, उनके पैर चाँप दूँ पैर दबा दूँ। यह विचार कर वह साधु का पैर दबाने लगा। साधु अचानक जग गया। उसने सोचा कि यह भक्त ठीक है। बिना कहे बिना पुकारे मेरा पैर दबा रहा है। वास्तव म यह सेवक बडा विशुद्ध भक्त है। क्यो न मै इस आदमी को अपना शिष्य बना लूँ? उसने उस आदमी से पूछा कि भाई! तुम चेहरे से तो चाधरी लगते हो। क्यो भाई! शिष्य बनोग चेला बनोगे? चौधरी बाला कि मै नही जानता कि शिष्य क्या हाता है चेला क्या होता है? साधु ने कहा कि देखो दुनिया मे दो बात होती हैं एक हाता है गुरु और दूसरा होता है चेला। गुरु उसको कहते हैं जो आज्ञा देता है निर्देश देता है और चेला उसको कहते हैं जो उन आज्ञाओ को दौड़ दौड कर पालन करता है। तो चौधरी बोला कि साहब चेला बनना अच्छा नही लगता लेकिन हाँ! गुरु अवश्य बन जाऊँगा।

यह बात एक साधु चौधरी की नही आम है। दुनिया मे सब लोग गुरु बनने के लिए तैयार है मगर शिष्य नही। गुरु ढूँढो तो बहुत मिलते है पर शिष्य नही। जबकि महावीर स्वामी कहते है कि गुरु की आज्ञाओ और निर्देशो का पालन करो। गुरु बनने का प्रयास मत करो शिष्य बनने का प्रयास करो। बोलो कम सुनो ज्यादा। सुनने वाला ही श्रावक है। महावीर यह बात इसलिए कह रहे है क्या कि यदि हम अपने गुरु की आज्ञा का पालन करेगे तो हमारे भीतर विनय धर्म का पालन होगा। यदि उनकी आज्ञाओ का पालन करगे तो उनकी सहज ज्ञान ज्योति हमको मिल जायगी। गुरु का गुरुत्व हम प्राप्त हो जायेगा। आपने कहावत सुनी होगी कि गुरु गुड रह गया और चेला शक्कर बन गया। यह बात उन्ही के लिए है जिन्होने अपने गुरु की आज्ञाओ का पालन किया है जिन्होने गुरु के निर्देशो को पालन किया है।

में भेद नहीं है।

यहाँ ध्यान रखनी है। नागौरा ही भाग्यपूर्ण है। अरे! गुरु की सेवा करते ही देखो। यदि गुरु का सच्चा आशीर्वाद लेना है तो सेवा करो है। यदि गुरु के अंतर से अंतःकरण से आशीर्वाद पाना है तो बिना सेव के गुरु का आशीर्वाद कभी नहीं मिल सकता। गुरु की इच्छा तन मन औ वचन से सेवा कर दी तो हमें आशीर्वाद मिलेगा ही। किसी से आशीर्वा मांगो मत किसी का आशीर्वाद चाहो मत हम काम ही ऐसे करें जिस बिना मांगे आशीर्वाद मिले। आशीर्वाद माँगने की जरूरत नहीं है वह त बिना माँगे मिलेगा हमारी सेवा के प्रभाव से।

सेवा धन से भी हो सकती है किन्तु हमारी अपेक्षा तन मन औ वचन से सेवा अधिक सुलभ है। धन तो किसी के पास हो भी सकता है नहीं भी हो सकता परन्तु मन वचन काया तो सबके पास है। यद्यपि य सत्य है कि सेवा में धन सहायक है किन्तु बिना धन के सेवा नहीं हो सकती यह कहना गलत है। वास्तविक सेवा तो मानसिक वाचिक औ कायिक ही होती है। इसलिए भाग्यशाली है वह जो अपने गुरुओं की त से मन से और वचन से सेवा करता है।

जो अपने गुरुओं के सकेतो को चेष्टाओं को जानता है समझता है वह विनीत है। ये इंगित आदिकालिन युग की ओर ले जाते है जब मनुष्य का विकास होना प्रारम्भ हुआ। इसीलिए आज का विज्ञान महावीर से इस राजी हो जायेगा। वे कहते है कि गुरु कहे तो बाद मे पहले तुम उनके इंगितो सकेतो को समझ लो। पहले जमाने मे तो बस सकेतात्मक भाषा थी। सकेतात्मक लिपि थी। क्योंकि उस समय भाषा तो थी नही मात्र सकेत किया जाता था।

बोलने में और इंगिताकार में बड़ा फर्क है। बोलने से काम करना साधारण बात है। परन्तु इंगितमात्र से काम करना महत्त्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में एक उत्तम पद्य है कि –

उदीरितोऽर्थ पशुनापि गृह्यते हयाश्च नागाश्च वहन्ति देशिता।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जन परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धय ॥

मतलब यह है कि कही हुई बात तो पशु भी समझ जाते हैं। घोड़े और हाथी कहने पर आज्ञा पालन करते हैं। समझदार व्यक्ति बिना कहे केवल मुख देखकर ही इंगिताकार से अपने करणीय कर्त्तव्य को समझ लेते है और तदनुसार आचरण करते है मगर बुद्धि का प्रतिफल तो दूसरे के इगिताकार को जान लेना है।

बिहारी ने इसी सकेतात्मक प्रणाली की चर्चा की है अपने एक दोहे मे। बड़ा प्रसिद्ध दोहा है यह कि–

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भवन मे करत है नैनन ही सो बात॥

भरी सभा में बात हो रही हैं मगर मुँह से नही नयनो के सकेतो से, इंगितो से।

शब्द है इंगियाकार और सकेत। यद्यपि दोनो शब्द पर्यायवाची है किन्तु मै इनमे अन्तर मानता हूँ। इंगिताकार शारीरिक मुद्रा है। यह मुख्यत भावमूलक है। इसे हर कोई नहीं समझ सकता। समझने वाला ही समझ सकता है। नयनो के द्वारा जो बोध कराया जायेगा यह वास्तव मे इंगिताकार का द्योतक है। सकेत स्पष्ट है। सकेत के लिए यह जरूरी नही है कि उस सकेत को वही समझेगा जिसे सकेत किया जा रहा है। दूसरे भी समझ सकते है। किन्तु इंगिताकार मे स्पष्टता नहीं होती। सकेत से भी सूक्ष्म है इंगित प्रणाली। इगितागार सम्पन्ने से विणीए ति वुच्चई जो इंगिताकार को गुरु के इंगितो को जानता है वही विनीत कहा जाता है।

आणा निद्देसकरे गुरुणमुववायकारए।
इंगियागार सम्पन्ने से विणीए त्ति वुच्चई॥

जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है सेवा करता है गुरु के इंगिताकार को जानता है वह विनीत कहलाता है।

जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन करता है यानी कि मन से आज्ञा का पालक होता है। गुरु की सेवा करता है यानी कि तन से। इंगिताकार को जानता है यानी कि चिन्तन से। अर्थात् तन मन और

मस्तिष्क से तीनों आ गये। उन्होंने तन, मन और मस्तिष्क तीनों को जोड़ा। महावीर शिष्यों से कहते हैं कि प्यारे शिष्यो! तुम तन से, मन से और मस्तिष्क से अपने गुरु की आज्ञाओं का पालन करो, उनकी सेवा करो, वैयावृत्य करो, सकेतों को समझो। और जो व्यक्ति ऐसा करता है वह विनीत है। ऐसे व्यक्ति को महावीर ने विनीत कहा है। उस व्यक्ति को उसी प्रकार सम्मान मिलता है जैसे घर में कोई देवता आ जाते हैं। यदि उसके स्थान पर और कोई अविनीत व्यक्ति हो तो उसको ठीक उसी प्रकार से दुत्कारा जाता है जैसे सड़े हुए कानों वाली कुतिया को।

मात्र कान में लग गया रोग सड़न का। वह उसके कान वाला रोग सारे बदन में फैलता है। इसी प्रकार यदि एक विनीत व्यक्ति के स्थान पर अविनीत व्यक्ति आ जाये तो सारे सघ में अविनय रोग का सक्रमण कर देता है और बढ़ाता है। वह सारे सघ को अविनीत कर देता है। इसीलिए महावीर कहते हैं कि हम सबको विनीत बनना चाहिए। जो विनीत होता है वह सदैव स्थायी रूप से रहता है और जो अविनीत होता है, वह हमेशा दुत्कारा जाता है उसका पतन होता है।

जब तक अहकार रहेगा फिर चाहे वह पद का हो विद्या का हो, बल का हो रूप को हो या और कोई हो साधक आगे नहीं बढ़ पायेगा उस व्यक्ति के भीतर विनय का कोई स्थान नहीं होगा। फलत उसके भीतर साधना करने का सकल्प तो हो सकता है पर वह साधना के प्रति समर्पित नहीं हो पायेगा। विनय का सीधा सम्बन्ध हृदय और बुद्धि से है। शारीरिक नम्रता तो उसका प्रतिफल है। भयवश कामवश गरजवश या व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति के लिए वाणी या शरीर में जो विनय के लक्षण दिखाई पड़ते हैं वे वास्तव में विनय नहीं है। विनय तो यह है कि अहकार को सर्वथा परित्याग कर निःस्वार्थ भाव से अपना कर्तव्य मानकर जो अगो से या वचनों में अपनी लघुता दिखलाई जाय, वही विनय है। उसी लघुता से प्रभुता जगती है।

लघुता में प्रभुता बसै प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटी शक्कर लै चली, हाथी के सिर धूरि।।

जब चागत्सुआग से लाओत्से ने पूछा कि चागत्सुआग! मैं तुम्हारे शिष्यों से मिलने जा रहा हूँ। क्या तुम्हारा उनके लिए कोई सन्देश है? तो महान दार्शनिक चागत्सुआग ने कहा कि आओ! तुम मेरा मुँह देखो। मेरे मुँह में तुम्हें क्या क्या दिखाई देता है। लाओत्से ने कहा—आपके मुँह में मात्र

जीभ है दाँत नहीं। चांगचुआंग ने कहा कि क्या तुम इसका मतलब समझ गये हो। उसने कहा, इसका मतलब मैंने समझ लिया है कि दाँत गिर चुके हैं और जीभ अभी है। चांगचुआंग ने पूछा आखिर दाँत क्यों गिरे हैं? लाओत्से ने कहा कि दाँत इसलिए गिर गये हैं कि वे कठोर थे अर्थात् जो कड़क और कठोर होते हैं वे गिर जाते हैं पतित हो जाते हैं मगर जो नम्र होते हैं, मृदुल होते हैं वे जीभ की तरह गिरते नहीं। मरते दम साथ रहते हैं। चांगचुआंग ने कहा कि बस यही एक मात्र संदेश मेरे सारे शिष्यों को देना कि तुम जीभ की तरह मृदुल और विनीत बनो। जो मृदुल और विनीत हैं वे चाहे तूफान में भी पड़ें चाहे बाढ़ में भी पड़ें मगर उनका कुछ नहीं होगा नर्म घास की तरह। नर्म घास कहीं पर भी पड़ी रहे। वह चाहे हजार किलोमीटर पानी के बहाव में बह जाए फिर भी उसका अस्तित्व रहता है। उसके स्थान पर यदि खजूर का पेड़ या अन्य बड़े बड़े पेड़ हों यदि वे पानी के बहाव में बह जाए तो उनका अस्तित्व खत्म हो जायेगा। इसलिए मृदुलता विनम्रता जीवन की मूल आधारशिला है। विनय संसार को महावीर का प्रथम उपदेश है साधना का प्रथम सोपान है। •

चमत्कार : [illegible]

[illegible] चमत्कार [illegible]
[illegible] है [illegible] चमत्कार [illegible] गो।

अध्यात्म के धरातल पर चमत्कार [illegible] है। [illegible] पर [illegible] करके [illegible] सिद्ध होगी। चमत्कार कोई वास्तविकता नहीं है, [illegible] मृग तृष्णा है, मृग मरीचिका है। चमत्कार [illegible] जन्तर मन्तर के [illegible] जाता है। यह वह आकाश पुष्प है जिसके बारे में कोई पता नहीं चलता कि वह कैसे खिला है या कैसे खिलता है।

जादू टोने और जन्तर मन्तर आत्मघाती उपलब्धियाँ हैं। बड़ी बड़ी हस्तियाँ इसके चक्कर में पड़ी हो जाती है। यह तो ठीक वैसा ही है जैसे सिगरेट के धुएँ का गुट्ठी में बन्द करके रखना है। महावीर की भाषा में यह मिथ्यात्व है। जहाँ सम्यक्त्व होता है वहाँ चमत्कार नहीं होता, वरन् यथार्थ होता है। वहाँ जो सगीत सुनाई देता है उसकी मुरली हमारे होठों पर होती है। यह स्वास्थ्य है जहाँ चेतना विराजमान है।

जो लोग चमत्कारो में जीते है या उसमें जीना चाहते है वे लोग अंधेरे में है। अध्यात्म के उजेले घर में उनका स्वागत नहीं होने वाला है।

आप कहते है महावीर चमत्कार में विश्वास रखते थे। पहली बात तो चमत्कार झूठ और महावीर उसमें विश्वास रखते थे यह दूसरा झूठ। झूठ में झूठ को जोड़ तो झूठ ही बचेगा। पता नहीं लोगो को झुठाई इतनी क्या सुहाती है? झूठ को छोड़ेंगे तभी सत्यार्थ का अमृत पाएँगे। पर लोग है ऐसे जो झूठ से गलबाँही दोस्ती रखते है।

हम सब बुद्धिजीवी है। विज्ञान से हमारा घरेलु नाता रिश्ता है। यहाँ सब बात साफ साफ होनी चाहिये। जिस काम को आप कर रहे है, उस

यदि आप न कह सको और उसे चमत्कार मान लो तो जरूर कहीं-न कहीं कोई गडबड़ी है। आप जिसे चमत्कारी मानते है उसके अन्तरंगीय घर म आप घुसिये पैठिये तो आपको सही खबर मिलगी।

मेरी समझ से चमत्कार कभी नही हो सकता। जहाँ-जहा पर चमत्कार की बात है वहाँ-वहाँ आत्म प्रवचना है। निश्चित रूप से भगवान महावीर चमत्कार म विश्वास नहीं रखते थे। यदि महावीर चमत्कार म विश्वास रखते हैं, तो उनका जैनधर्म ही गलत साबित हो जायेगा। इसीलिये न केवल भगवान् महावीर ही अपितु उनके परवर्ती काल म हुए किसी भी जैनाचार्य ने चमत्कार नही दिखाया। चमत्कार के आते ही जैनधर्म हिन्दू धर्म म बदल जायेगा।

जैनधर्म और हिन्दूधर्म म यही सबसे बडा अन्तर है। चमत्कार का मायाजाल हट जाये तो जैनदार्शनिको को सारा हिन्दू दर्शन स्वीकार हो जायेगा। हिन्दूधर्म अधिकतर चलता है ईश्वरवादिता पर। कर्ता धर्ता हर्ता यानी सर्वेसर्वा ईश्वर है। वह जिसका चाहे उद्धार कर सकता है और जिसका चाहे उसे उठाकर पतन के गडढे मे गिरा सकता है। ईश्वर के लिये ससार शतरज का खेल है। जबकि जैनदर्शन चलता है कर्मसिद्धात पर। ईश्वर को यह मात्र नैतिक साध्य के रूप म स्वीकार करता है। जेन दर्शन के अनुसार तो कोई किसी का न तो उद्धार कर सकता है और न ही पतन। जैसा करेगा वैसा भरेगा।

कोई स्त्री अपने शरीर पर किरासन तेल डालकर और दियासलाई की आग लगाने का कर्म करती है तो वह जलेगी ही। जलना उस कर्म का फल है। यदि नही जलती है तो किरासन तेल सही नहीं था पानी रहा होगा, तेल की जगह। एक ओर तो हो किरासन तेल और साथ मे हो दियासलाई की आग तो वहाँ आग लगगी ही लगगी वहाँ बर्फ नही जम सकती। ऐसा चमत्कार नही हो सकता। जो लोग ऐसा दिखाते है वह एक तरह का मायाजाल है। यह ठीक वैसे ही है जैसे यह ससार है। यहाँ ईश्वर का पक्ष नही होता। स्तरीय दार्शनिक श्रीमद्राजचन्द्र ने कहा है —

झेर सुधा समजे नही, जीव खाय फल थाय।
एम शुभाशुभ कर्मनो भोक्तापणु जणाय।।

मतलब यह है कि जिस प्रकार जहर खाने वाला उसके प्रभाव से नही बच सकता उसी प्रकार कर्मो का कर्त्ता भी उनके प्रभाव से नही बच सकता। यह बात जितनी तार्किक है उतनी ही अनुभवसिद्ध। इसमे भ्रम का

स्थान नही है।

मैने पढा है एडरशन को। प्रख्यात पाश्चात्य दार्शनिक है वह जिसने चमत्कार को भ्रमजाल कहा है। उसने लगभग कोई बाईस चीज लिखी है, जिन्हे लोग चमत्कार मानते है। यदि उन बाईस चीजो मे से कोई एक चीज भी आँखो के सामने सम्यक्तया करके दिखा दे उसे, तो वह एक लाख डालर देने को तैयार है और अपनी सारी दार्शनिक मान्यताओ तथा अपने दार्शनिक ग्रथो को वह असत्य मजूर कर लेगा। शायद अभी तक उसे कोई परास्त नही कर पाया।

महावीर ठहरे परम वैज्ञानिक। एडरशन महावीर के वक्तव्यो से प्रभावित हुआ होगा। महावीर सुनी सुनायी बातो पर विश्वास नही करते। वेद इसीलिये तो महावीर के मस्तिष्क मे स्थान प्राप्त नही कर पाये। वेद श्रुति है। श्रुति याने श्रवणित–सुना हुआ। सुनने तो बहुत हैं। लोगो को भी सुनने सुनाने मे बडा मजा आता है। किन्तु देखना दुर्लभ है। श्रोता और वक्ता दोनो नदी के मध्य है और द्रष्टा किनारे पर। सुनना उतना जरूरी नही है जितना देखना। कानो सुनी सो कच्ची आँखो देखी सो सच्ची। इसीलिए महावीर ने श्रुति के स्थान पर दृष्टि पर ज्यादा जोर दिया था। आँखो से देखो यथार्थता को। सुनी सुनायी बाते उतनी विश्वसनीय नही होती जितनी आँखो से देखी होती है। सुनी सुनायी बातो मे चमत्कार की बात भी आ सकती है किन्तु आँखो देखी चीजो म चमत्कार की सभावना भी नही होती।

अहले दानिश आम है।
अहले नजर कमयाब है।

द्रष्टा का ज्ञान सम्यक होता है। शास्त्रो के ज्ञाता बहुत हैं। पण्डित भरे है दुनिया म, मगर वे विद्वान तथाकथित है। किन्तु शुद्ध आँख वाले सम्यक द्रष्टा विरले ही है। महावीर उन विरले लोगो म पहले है। तू कहता कागद की लेखी मै कहता आँखन की देखी–कबीर का यह वक्तव्य बहुत सही है। परम द्रष्टा ही ऐसी बात कह सकते है।

इसीलिए महावीर ने राम तथा कृष्ण की बातो को नही कहा। बुद्ध ने महावीर की बातो का कथन नहीं किया। ईसा ने बुद्ध के वक्तव्यो को प्रगट नहीं किया। कारण हर व्यक्ति के अपने-अपने अनुभव होते है। अनुभवो की अभिव्यक्ति म सब स्वतन्त्र है। राम की अपनी अनुभूति थी महावीर की अपनी बुद्ध की अपनी शकर और तिलक की अपनी। अनुभव मे डूबा

व्यक्ति कभी दूसरे के अनुभव को नहीं कहेगा। हर द्रष्टा के अपने दृष्टिकोण होते हैं। उसके लिए दूसरों की बात सुनी सुनायी बात हैं। स्वानुभूत बात नहीं है। महावीर को जो जचा वह उन्होंने कहा। महावीर विज्ञान के प्रणेता हैं। वे आँखों देखी पर विश्वास करते हैं और वही कहते हैं। इसीलिए महावीर की बातों को विज्ञान इनकार नहीं करता। विज्ञान चमत्कार का स्वीकार नहीं करता और महावीर भी। विज्ञान और महावीर एक ही तराजू के दो पलड़े हैं।

महावीर ने अपने युग में जो क्रान्ति मचाई वह यह थी कि उन्होंने चमत्कारों का विरोध किया। महावीर ने जितनी भी क्रांति मचाई वह सब चमत्कारों को लेकर ही। उनकी अभिलाषा थी कि लोगों की अन्धनिष्ठा दूर हो और वे सत्य के आलोक में प्रामाणिक जीवन बीता सके। उस समय चमत्कार के वशीभूत होकर ही यज्ञ होते थे बलि दी जाती थी क्रियाकाण्ड होते थे अकर्मण्यता पनपी पुरुषार्थ का पतन हुआ—सबके सब चमत्कार के वशीभूत होकर ही। महावीर की दृष्टि में चमत्कार कोई चीज नहीं है। उन्होंने चमत्कार को बिल्कुल इन्कार कर दिया। दुनिया में जितने भी महापुरुष हुए कोई भी महापुरुष चमत्कार नहीं दिखा पाये। किसी ने भी कभी चमत्कार नहीं दिखाया आज तक चाहे हम महावीर को ले चाहे बुद्ध को ले, चाहे ईसा को ले सुकरात को ले पायथागारस को ले। किसी ने चमत्कार नहीं दिखाया। रामकृष्णपरमहंस विवेकानन्द महर्षि आनन्द योगी, रजनीश जैसे भी चमत्कार न दिखा पाये।

सुकरात को जहर का प्याला पिलाया गया लेकिन वे उसे अमृत में न बदल पाये। ईसा को जिन्दा शूली पर चढ़ा दिया गया। ईसा जैसे महापुरुष को शूली पर चढ़ा दिया जाय उससे बड़ा चमत्कार और क्या हो सकता है? महावीर के कानों में कीले ठोकी गयी। कितना अत्याचार किया था लोगों ने महावीर पर। मारा पीटा, घसीटा गालियाँ दी उन्हें। स्वामी रामकृष्ण परमहंस मरते दम तक पीड़ित रहे। कैंसर हो गया लेकिन वे भी चमत्कार न दिखा पाये। साध्वी विचक्षणश्री को भी वर्षों कैंसर रहा। बड़ी महत्त्वपूर्ण और समाधिस्थ स्त्री थी वह। राबिया बसी जैसी ही थी, मगर भोगना पड़ा।

पुराना युग तो चमत्कारों का ही युग था। इसलिये जहाँ भी गुंजाइश

[illegible] कोई भी [illegible] है [illegible] असम्भव कुछ भी नहीं है। [illegible] और [illegible] को प्रकट करता है। [illegible] और [illegible] कुछ सम्भव है वहाँ चमत्कार नहीं है।

आज विज्ञान का युग है। [illegible] अब बहरे भी सुनने लगते हैं, गूंगा भी बोलने लगता है और पंगु भी चलने लगता है। विज्ञान का प्रत्येक आविष्कार नया आश्चर्य है। आज लोग उसे भी नया चमत्कार मानते। ये वायुयान, बिजली, वायरलेस, टेलीविजन, टेलीफोन, ग्रामोफोन, हाइड्रोजन बम, टेप, टारपीडो–इत्यादि तो शायद हमारे पूर्वजों की कल्पना भी नहीं होगी। उनके लिए तो ये सब महाअसम्भव थे। मगर आज कोई कह सकता है कि ये सब सम्भव नहीं है? आँखों से देखे हुए को भला कौन अस्वीकार कर सकता है? उचित समय और उचित श्रम ही नया आविष्कार करता है। इस विज्ञान के सामने चमत्कार की बात नगण्य है।

महाभारत काल में महायुद्ध हुआ। कृष्ण को भगवान् का अवतार माना जाता है। कृष्ण जब ईश्वर के अवतार थे वे चाहते तो अकेले ही सारे कौरवों को नष्ट कर सकते थे। उनके पास सघन शक्ति और शस्त्र थी लेकिन उन्होंने यह चमत्कार नहीं किया। यदि वे ऐसा कर देते तो धर्मनीति और धर्मयुद्ध कौड़ी की कीमत के भी नहीं रहते। अर्जुन युद्ध के मैदान से खिसकने लग गया किन्तु चमत्कार न दिखा सके कृष्ण। यदि कृष्ण चमत्कार दिखा देते तो गीता का एक श्लोक भी नहीं रच पाता। गीता जैसे अमूल्य ग्रन्थ के जन्म के लिए यह जरूरी था कि कृष्ण कोई चमत्कार न दिखाये। कृष्ण ने यह कार्य महत्त्वपूर्ण किया कि युद्धक्षेत्र से पीठ फेरते अर्जुन की पीठ न फेरने दी और इस तरह क्षत्रिय धर्म और वीरत्वधर्म को कलंकित होने से बचा दिया।

यदि कोई व्यक्ति चमत्कार दिखाता है तो इससे सदाचार सद्‌विचार को बहुत बड़ा धक्का लगेगा। आचार विचार को इतना धक्का लगेगा कि साधना-दर्शन समाप्त हो जाएगा। भाग्य और पुरुषार्थ ये दोनो ही नही बचेगे, यदि चमत्कार हो जाये। चमत्कार शास्त्र कर्म शास्त्र के अस्तित्व को क्षति पहुँचायेगा जबकि कर्मशास्त्र सबको मान्य है। हर घट घट म पल पल म कर्म की गति का स्पर्श होता है। जो नियत है उसे भूत वर्तमान या भविष्य मे अनियत नही किया जा सकता—ण एव भूअं वा भव्व वा भविस्सइ वा। इसलिए चमत्कार कभी नही होता। भगवान् महावीर चमत्कार को कभी स्वीकार नही करगे।

कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो कि दिखा दे कि चमत्कार है। जहाँ जहाँ चमत्कार है, वहाँ-वहाँ पक्षपात है। नियमो और सिद्धान्तो म भी जब पक्षपात होता है तो वे नियम और सिद्धान्त किसी एक पक्ष से ही सम्बन्धित होते है सार्वभौम नही है वे। सिद्धान्त शाश्वत होते है चमत्कार शाश्वतता को क्षणभगुर करने वाला है। शास्त्र कालप्रभाव से तिरोहित हो सकते है किन्तु सिद्धान्त अमिट और अनन्त हुआ करते है। इसलिए चमत्कारो का अपवाद सिद्धान्त विरुद्ध है।

जो भी नियम बनते है वे निर्वैयक्तिक और सार्वभौम होते है। ऐसा नही हो सकता कि जहर को पीनेवाला व्यक्ति न मरे या उससे प्रभावित न हो। ऐसा नही हो सकता कि बबूल का बीज बोनेवाला आम पा सके। जो सिद्धान्त है व सब के लिए एक बराबर है। सिद्धान्त यानी सिद्धि का फार्मूला। सिद्धान्त मे नगद चाहिये उधार नहीं। सिद्धान्तो के सामने चमत्कार का अपवाद नही हो सकता।

मैने जिन्दगी भर पाप किये है और अन्त मे जाकर परमात्मा की शरण ले ली और कह दिया कि परमात्मा मुझे उबार दे। लेकिन परमात्मा उबार नही सकता। यह चमत्कार कदापि नही हो सकता कि परमात्मा शरणभूत पापी का उबार दे। यदि परमात्मा शरणभूत को उबारने का चमत्कार दिखा देगे तो किये हुए पाप को कौन भोगेगा? परमात्मा की शरण लेना यह हमारी सद्‌भावना है मगर अपनी नौका को हमे स्वय ही खेना पडेगा तभी परमात्म तट प्राप्त हो पायगा। स्वय पापो से छुटकारा पाने का प्रयास न करके मात्र परमात्मा भगवान् से मुक्ति की प्रार्थना करना स्वय को हीन दीन और परापेक्षी बनाना है। बाइबिल मे बताया है कि वह व्यक्ति स्वर्ग के राज्य मे प्रवेश नहीं कर पायेगा जो ईसा ईसा पुकारता है

अति वह आदमी स्वर्ग के राज्य म प्रविष्ट हो पायेगा जो परमपिता की, इच्छा के अनुसार कार्य करता है।

वस्तुत सम्यक् ज्ञान सम्यक् दृष्टि और सम्यक आचार ही परमात्मा तक पहुँचने क तरीके है, ऐसा कुदकुन्द ने नियमसार मे लिखा है। परमात्मा न तो किसी को ससार से पार कर सकते है और न किसी प्रकार की उपलब्धि मे सहयोगी है। यदि हमलोग ऐसे उद्धारक मे निष्ठा करेगे जो हमारी प्रार्थना से हमे पाप स उबार ले तो इससे सदाचार की महिमा को वडा भारी धक्का लगेगा। सब लोग पाप ही पाप करेगे। पुण्य कोई नही करेगा। जब इच्छा हो चले जाओ परमात्मा के पास, परमात्मा पार लगा देगा। फिर क्यो न पाप करे? फिर तो चार्वाकिया की वात आ जायेगी कि क्या है पाप और पुण्य? खाओ पीओ, मौज उडाओ— ऋण कृत्वा घृत पिवत। इस तरह तो नास्तिकता चरम सीमा तक पहुँच जाएगी। कुछ भी नहीं बचेगा इस चमत्कार के साथ। चमत्कारो का बवण्डर सब धूलिधूसरित कर देगा। इसलिए चमत्कार से हमको दूर होना है। इसीलिए भगवान् महावीर चमत्कार को नही मानते थे। ओर उनके जीवन मे एक भी ऐसा प्रसग नही है जिससे यह सावित हो सके कि महावीर चमत्कार मे विश्वास रखते थे।

चमत्कार को वणिक लोग मान सकते है, क्षत्रिय लोग नही। वणिक का हर सौदा ही ऐसा करता है जो असम्भव हो। जिसमे लागत कम, उपलब्धि अधिक हो। खरीद तो उधार और विक्रय नगद। वह अपने जीवन मे यही चमत्कार मानता है। इसमे उसका बनियापन है, लेकिन महावीर क्षत्रिय थे—महावीर से पहले हुए तेर्वास तीर्थंकर—ऋषभ से पार्श्व तक—वे भी क्षत्रिय थे। यही तो खास वात है। जैनिया के सारे तीर्थंकर धर्म प्रवर्तक क्षत्रिय और आज के सारे जैन वणिक। तीर्थंकर चमत्कार के विरुद्ध आन्दोलन करता है और वणिक चमत्कारा मे विश्वास। आज का जैनी चमत्कारो का अनुगामी मात्र है। जैनो म स्थानकवासी और तेरहपन्थी—ये लोग तो चमत्कार के फन्दे म सबसे ज्यादा जकडे है। ये महावीर की मूर्ति को नहीं पूजगे कहगे यह पत्थर है—घर सजाने का खिलौना। किन्तु यह कितने मजे की वात है कि ये लोग उन देवी देवताओ के मन्दिर मे दिन मे अनेक बार जाकर नाक रगडगे जो काफी चमत्कारिक माने जाते है। वे देवी देवता फिर चाहे सम्यक्त्वधारी हो चाहे मिथ्यात्वी—इससे उनको कोई प्रयोजन नहीं है। फल यह हुआ कि वे न तो पूरे मूर्तिपूजक जैन हुए और न

अमूर्तिपूजक। विचार धोबी के गधे की हालत हो गई। धोबी का गधा न घर का न घाट का।

ये लोग उसी धर्म को उसी सन्त को उसी भगवान को आदर देना चाहते हैं जो चमत्कारों से भरा है। मगर जिन व्यक्तियों के पास पराक्रम है पुरुषार्थ है वे व्यक्ति चमत्कार को कभी नहीं मांगते। जैनों के तीर्थंकर पुरुषार्थ भावना से ओतप्रोत होते हैं। हर असम्भव को सम्भव करने वाला ही सत्यतः तीर्थंकर है। इसीलिए वे सबसे पहले इन्सान के रूप में ईश्वर बनाते हैं, कैवल्य और सर्वज्ञता हासिल करते हैं ताकि संसार का प्रथम असम्भव कार्य सम्भव बन जाय और लोगों का इस बात से विश्वास हट जाये कि दुनिया में कोई चीज असम्भव भी है।

जिन्हें हम तीर्थंकर-अतिशय कहते हैं वे अतिशय कोई चमत्कारिक आश्चर्य नहीं है। अनेक आधुनिक विज्ञान उन्हें नहीं मानते। कहते हैं कि ये सब ढकोशले हैं परन्तु मैं उन्हें मानता हूँ। जैसे तीर्थंकर मनुष्य होते हैं और उनके साथ जो अतिशय जोड़ते हैं वे मानवमात्र में देखे जा सकते हैं। उदाहरणतः मैं आभामण्डल–प्रभामण्डल को लेता हूँ। हम देखते हैं चित्रों में कि राम कृष्ण, महावीर बुद्ध शंकराचार्य या अन्य किसी महापुरुषों के आस पास आभामण्डल चित्रित है। बहुत से सन्तों के चित्रों में भी प्रभामण्डल की रेखाएँ दिखाई जाती हैं। सन्त हरिकेशवल चण्डाल थे सन्त कबीर जुलाहा थे, सन्त गोरा कुम्हकार थे रैदास जूता चप्पल बनाते थे फिर भी प्रभामण्डल दिखाते हैं हम उनके आस पास। अनेक लोग या तो इसे कल्पना मानते हैं या फिर कोई महान् चमत्कार। आप लोग जब साकर उठे प्रातःकाल तब आँखें खोलते ही इस प्रभामंडल की झलक देख सकते हैं। यदि उसका दर्शन करने का लक्ष्य है तो दर्शन हो सकता है। सूर्य की चकाचौंध में वह प्रभामण्डल दिख नहीं पाता।

आज के विज्ञान के अनुसार यह प्रभामण्डल प्रत्येक व्यक्ति के आसपास रहता है। वैज्ञानिक तो कहते हैं कि यह प्रभामण्डल पशुओं और पेड़पौधों के पास भी होता है। वैज्ञानिक बताते हैं कि जीव तथा अजीव चेतन तथा अचेतन को सिद्ध करनेवाला यह प्रभा या आभामण्डल ही है। जिसके आस पास प्रभामण्डल नहीं है वह शव है मृतक है। हाँ! यह सम्भव है कि किसी व्यक्ति का प्रभामण्डल विस्तृत हो और किसी का संकुचित किसी का दृश्य और किसी का अदृश्य। वस्तुतः व्यक्ति जितना अधिक जीवन्त होता है उसका प्रभामण्डल उतना ही अधिक विस्तृत और स्पष्ट

दृष्टिगोचर होता है। अब तो खैर इस प्रभामण्डल को हर आदमी देख सकता है। सन् उन्नीस सौ तीस में ऐसा रासायनिक प्रक्रियामूलक यन्त्र तैयार किया गया था जिसके द्वारा हर किसीके प्रभामण्डल का—आभामण्डल का दर्शन किया जा सकता है। हम जिस केवलज्ञान आदि की चर्चा करते हैं वह वास्तव में इसी प्रभामण्डल की विस्तृतता है। जब किसी जीवन्त साधक को सुदूर की वस्तु को देखना या जानना होता है तो वह अपने इसी प्रभामण्डल को साधन बनाता है। वह अपने प्रभामण्डल की किरणों को एकत्र कर केन्द्रीभूत करता है। और वे दूरगामी किरणें उस मनोवांछित तत्त्व का स्पष्ट अवलोकन करा देती हैं। सोवियत रूस में किरलियान फोटोग्राफी के विकास से तो यह बात और स्पष्ट हो जाती है। भीतर के विचार जिस रंग के होंगे काले पीले धौले वैसा ही रंग का प्रभामण्डल हमारे मस्तिष्क के इर्दगिर्द उभर आएगा। महावीर के माथे के आसपास जो प्रभामण्डल की चमक है वह एक मानवीय मनोवैज्ञानिक सत्य है।

हम दादा गुरुदेव को चमत्कारिक पुरुष कहते हैं लेकिन दादा गुरुदेव ने कभी चमत्कार नहीं दिखाया। यदि दादा गुरुदेव को हम चमत्कारिक मानें तो उनका साधुत्व खत्म हो जायगा। उनका आचार्यत्व समाप्त हो जाएगा। वे साधु नहीं आचार्य नहीं एक मदारी हो जाएँगे। ऐसे संत व्यक्ति को जैनागमों में परदर्शी कहा है वह जिनदर्शी नहीं है। वह संतत्व और साधुत्व—दोनों से च्युत है।

इसलिए चमत्कार न तो स्वस्थ साधना है न कोई शुद्ध आदर्श है। यह [illegible] भूमिका की बात नहीं है। आज के वैज्ञानिक और प्रगतिशील युग में यह अन्धविश्वास मात्र है। इसमें आत्म विकास का नामोनिशान नहीं है। आज भी लोग टोना टोटका जन्तर मन्तर के फेर में पड़े रहते हैं। और जो इनके जाल में एक बार फँस गया तो वह मुक्त होने वाला नहीं। शायद ही कभी—इसी आशंका और सम्भावना के भँवर में वह डूबता रहता है। वह मान्यताओं की [illegible] में [illegible] हो जाता है। पतंजलि की भाषा में यह दर्शन न सूक्ष्म है न स्थूल—अपितु [illegible] की छाया पर है। [illegible] वह तब होता है जब उसे भयानक हानि होती है या निर्धनता का [illegible] होता है।

[illegible] और [illegible] के [illegible] में बार बार [illegible] है। [illegible] है [illegible] है [illegible]

वर्ष पहले थे। लोगा द्वारा इन टोने टोटको म फँसकर अपनी तवीयत ठीक करने के लिए पशुआ की बलि देना अधिक रुपया पाने की लालसा से घर का रुपया खो बैठना, गाँ वाने के लिए बाँम द्वारा दूसरे के बच्चे की हत्या कर देना अपने पति को वश म करने क लिए जन्तर मन्तर करना य सब कोरी अन्धनिष्ठा की बाते है। इनम कोई सार नही है। गहराई से देखे तो असारता ही नजर आएगी। ठीक वैसे ही जैसे प्याज के छिलके उतारते जाओ, उतारते जाओ, अन्त म सार कुछ भी हाथ नहीं लगता। रोगनिवारण क लिए डाक्टर से चिकित्सा कराओ दवाई लो। ज्यादा रुपया कमाने के लिए ज्यादा श्रम करो। बाँझ स्त्री को भला कभी बेटा होता है? पति को वश म करना है तो अपने सद्व्यवहारा के द्वारा वश मे करो। टोने टोटका से ये चमत्कार शक्य नहीं है।

आप रोजाना पढ़ते होगे अखवारो म तावीज और अगूठिया के बारे मे। बड़े चक्कर म फँसाते है वे लोगा को। वे अखवारा मे छपाते है कि यह अगूठी सिद्धिदायनी है इसे जो पहनेगा उसे सात दिन के अन्दर नौकरी मिल जाएगी। इसका मूल्य मात्र पच्चीस रुपये है। लोग खरीद लेते है। सात दिन क्या सात सप्ताह म भी जब उसे नौकरी नही मिलती तो वह पछताता है कि पच्चीस रुपये भी बेकार गए। नौकरी मिलने के स्थान पर ज्योतिषी पडित को उल्टे पच्चीस रुपये नौकरी के घर स देने पड़े। यानी बाजार आलू खरीदने गये। आलू-वालू तो कुछ मिला नही पीछे भालू और लग गया। जान जोखिम म लेने के देने पड गये।

मैंने सुना है कि एक छात्र ने एक अगूठी खरीदी जिसका नाम था महाफलदायिनी। विक्रेता पडित ने कहा कि इस अगूठी का यह चमत्कार है कि इसे जो भी पहनेगा वह अपनी परीक्षा म प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण होगा। छात्र ने अगूठी खरीद ली और पाठ्यक्रम की पुस्तको को पढ़ना बन्द कर दिया। क्योकि उसे बताया गया था कि वह इस अगूठी के महाप्रभाव से प्रथम श्रेणी प्राप्त करेगा। घर वाले उसे पढ़ने क लिए कहते तो वह कहता कि आप चिन्ता न करे। मै प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होऊँगा। परीक्षाएँ हुई। परीक्षाफल घोषित हुआ। बिना पढ़नेवाला क्या खाक पास होगा? वह प्रथमश्रेणी से उत्तीर्ण होने के बजाय प्रथमश्रेणी से अनुत्तीर्ण हुआ। अभिभावको ने उसे भारी उपालम्भ दिया। आखिर उसने महाफलदायिनी अगूठी वाली सारी बात बतायी और कहा कि अब भविष्य मे मै इन सब पर *कभी विश्वास न करूँगा। यह महाफलदायिनी अगूठी का ही महाफल है*

[illegible] निर्माण करते हैं। [illegible] फिर भी कोई चमत्कार [illegible]

महावीर जन्म से पहले एक ब्राह्मणी की कोख में थे। महावीर क्षत्रिय थे। क्षत्रिय कभी चमत्कार को स्वीकार नहीं करते। तो ब्राह्मणी की कोख से महावीर का जन्म नहीं हो सकता। उसके लिए क्षत्रिय का गर्भ चाहिए। युद्ध के मैदान में यदि कोई व्यक्ति चमत्कार दिखाता भी है तो क्षत्रिय चमत्कार को नहीं देखता। वह तो उसे अपमान समझता है और युद्ध करता ही चला जाता है। इस चमत्कार के विरोध के लिए ही दुनिया का पहला ऑपरेशन हुआ। महावीर के पच्चीस सौ वर्ष बाद जो गर्भ परिवर्तन की बात प्रकट हुई उसे महावीर के जीवन प्रसंग में सहजता से देखी जा सकती है। गर्भ परिवर्तन के विचार का सूत्रपात महावीर से हुआ और ब्राह्मणी का गर्भ त्रिशला की कुक्षि में आया। बहुत से लोग महावीर के गर्भ स्थानान्तरण को चमत्कार मानते हैं। लेकिन यह चमत्कार नहीं है। आज तो हर डाक्टर यह चमत्कार दिखा सकता है। हर विशिष्ट चिकित्सक में यह चमत्कार दिखाने की शक्ति है। तब हम कैसे मानें कि यह कोई बहुत बड़ा चमत्कार है।

जब महावीर सात आठ वर्ष के हो गये एक दिन खेल रहे थे। उन्होंने एक सर्प को आते देखकर उसे पकड़ लिया और उछालकर दूर फेंक दिया। लोगों ने सोचा यह चमत्कार है। लेकिन यह चमत्कार नहीं महावीर की निडरता का प्रतीक है। साधना के लिये महावीरत्व को पाने के लिये साहस की जरूरत है निडरता की जरूरत है। इसे चमत्कार मानना भारी भूल है। साहसी निडर और महावीर व्यक्ति ही साधना कर सकते हैं—यह तो इस बात का परिचायक है।

इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारण कर महावीर से पाठशाला में कई प्रश्न पूछे। महावीर के गुरु स्वयं आश्चर्यचकित हो रहे थे कि छोटा सा बच्चा कैसी कैसी बातें बता रहा है लेकिन इन्द्र को कोई आश्चर्य ही नहीं था। क्योंकि वह तो महावीर की ज्ञान शक्ति के बारे में जानता था। इन्द्र ने तो सारी बात खुलासा कर दी। लोगों को यह चमत्कार लग रहा था पर इन्द्र ने बताया यह चमत्कार नहीं, महावीर का निजी ज्ञान है। ये ज्ञान के

धनी है।

महावीर तीस वर्ष की उम्र म साधु ब[गये थे। चलते हुए जब आगे बढ़े साधना करने के लिय तो एक ग्वाल ने उनके कानों म कील ठोकी लेकिन महावीर कोई चमत्कार न दिखा सके। उनके पास बहुत ज्ञान था बहुत शक्ति भी तीर्थंकर की शक्ति थी किन्तु फिर भी व चमत्कार न दिखा सके। यह घटना तो महावीर क अन्तर ऊर्जा को विकसित करने म सहायक बनी। सहनशीलता और सहिष्णुता का यह अद्वितीय प्रसग है विश्व-दर्शन म।

चण्डकौशिक वाली घटना म कहत ह हम कि यह बहुत बडा चमत्कार है लेकिन मैं इसे चमत्कार नहीं मानता। चण्डकोशिक भगवान महावीर को एक बार दो बार तीन बार डँसता ह। चण्डकोशिक जिसकी फुफकार से सारा जगल नष्ट भ्रष्ट हो जाता था उसकी तीन तीन फुफकारो स भी महावीर को कुछ भी नहीं हुआ उल्ट महावीर के अँगूठ से खून की जगह दूध बहा। आप इसे आश्चर्य मानेगे चमत्कार मानेगे। लेकिन म इसे न तो आश्चर्य मानता हूँ और न ही चमत्कार।

दिल्ली की बात है। एक बार एक डाक्टर मेरे पास आये। वे जैन ही थे। उन्होने मुझ कहा कि भगवान महावीर क जीवन म चण्डकौशिक ओर दूध बहने की जो घटना है क्या आप उसमे विश्वास रखते है? मैंने कहा बिल्कुल रखता हूँ। उन्होन कहा कि यह कस हो सकता है? आप मनुष्य के शरीर मे कहीं स भी दूध निकालकर बता दीजिये तब हम मानग कि यह सत्य है। हम मान लग कि चण्डकोशिक ने डँसा था आर महावीर क अँगूठे म दूध प्रवाहित हुआ था। मैने अमरिका जापान इग्लैंड सब जगह भ्रमण किया है और बडे-बड आपरेशन किय है देख ह लेकिन कहीं भी किसी भी आपरेशन को करते समय मुझे शरीर म दूध नहीं मिला। तब महावीर स्वामी क शरीर स दूध कैस निकल गया?

मैन कहा कि आपकी बात बिल्कुल ठीक ह। लेकिन एक प्रश्न पूछता हूँ कि स्त्रियो के स्तन से दूध कैस बाहर निकलता है? जब बच्चा पैदा होता है तभी निकलता है उससे पहले नहीं निकलता। वध्या स्त्री के स्तना मे दूध कभी नहीं आता। मातृत्व के उमडते ही स्तना स दूध बह पडता है। बच्चे को दूर स देखकर भी कभी कभी माँ के स्तना से दूध निकल पडता है क्या आप इस बात को मानते है? उन्होने कहा कि ये तो हारमान क परिवर्तन स ऐसा हो जाता है और माँ का वात्सल्य बच्चे के प्रति होता ह इसलिये

चमत्कार में नहीं।

पैंतीस अतिशय और पैंतीस वाणी इसे लोग कहते हैं चमत्कार पर ऐसा नहीं है। यह तो तीर्थंकर की महिमा है। तीर्थंकर होने के कारण ये स अतिशय घटित होते हैं। महावीर स्वामी स्वयं ये अतिशय नहीं दिखाते स्व कोई चमत्कार नहीं दिखाते। यह तो तीर्थंकर का स्वभाव है। यह तो तीर्थंकर पद की महिमा है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि श्रद्धा और आस्था में अतिशयोक्ति की भावना आ जाती है। आचारांग सूत्र जैन का सबसे पुराना लिपिबद्ध ग्रन्थ है। उसमें महावीर का जीवन दर्शन पढ़िये। सच्चे महावीर का सच्चा जीवन-दर्शन वर्णित है। सच्चाई का वर्णन है अतिशयत का वर्णन नहीं है।

हम आजकल कुछेक आचार्यों को युगप्रधान कहते हैं। लेकिन आ के युगप्रधान पुरुष में कोई भी अतिशय देखने को नहीं मिलता। यदि ह जिनदत्तसूरि अथवा अन्य आचार्य को जिनको हम कहते है कि ये चमत्कार थे तो आज के युग प्रधानों में भी चमत्कार होने चाहिए। लेकिन चमत्कार नहीं है। उपाध्याय देवचन्द्र ने तो युगप्रधान पद की महिमा बता हुए कहा कि जो आचार्य युग प्रधान है वह यदि घर में आ जाये तो सा घर ही पवित्र हो जाता है। उनका यदि हम पैर धोते चरण प्रक्षालन क और उस पानी को घर में छिड़क तो शान्ति हो जाती है। यह जिनदत्तसू का प्रभाव नहीं, यह युगप्रधानता का प्रभाव है। यह किसी आचार्य व शक्ति नहीं है यह तो आचार्यत्व की शक्ति है। अतिशय महावीर स्वा

की शक्ति नहीं है यह तो तीर्थंकरत्व की शक्ति है तीर्थंकर की महिमा है।

हम लोग चमत्कार के पीछे पड़े हैं। हम पूजा करते है चमत्कार के लिए। प्रार्थना करते है चमत्कार के लिए। दादा वाड़ी जाते हैं चमत्कार के लिए। प्रार्थना करते है चमत्कार के लिए। हमारा मन ही कुछ ऐसा है कि हम चमत्कार को ही स्वीकार करते है। क्या यह कम चमत्कार है कि जिस धर्म के प्रवर्तक चमत्कार को नहीं मानते थे उस धर्म के अनुयायी केवल चमत्कार ही चमत्कार चिल्लाते हैं व केवल चमत्कार को ही मानते है। उसी के आगे सिर नमाते हैं। इसीलिए तो चमत्कार को लोगों ने पूजा-प्रार्थना की अटूट कड़ी माना है। आप लोग पूजा में बोलते है नमस्कार है चमत्कार को।

आप मन्दिर गए भोमियाजी को कहा अथवा भगवान् पार्श्वनाथ के गए अथवा और किसी के और कहेंगे– हे भगवान! मेरी घड़ी गुम हो गई है। दो हजार रुपये की घड़ी थी। यदि घड़ी मिल जायेगी तो दो रुपये का प्रसाद चढ़ाऊँगा। महावीर ऐसा नहीं कहते कि मेरा देवदुष्य खो गया है उसको वापस पाने के लिए मैं इन्द्र को पूजूँ प्रसाद चढ़ाऊँ। महावीर तो ऐसे वीर थे कि उन्होने प्रसाद शब्द का कभी उल्लेख भी नहीं किया। यदि प्रसाद होता और प्रसाद से चमत्कार घटता तो इसका उल्लेख कहीं न कहीं जरूर ही आगम ग्रन्थो में होता। हम दो रुपये का प्रसाद चढ़ाकर दो हजार रुपये का चमत्कार चाहते हैं। यह घूसखोरी भगवान के दरबार में घुसनी भी नहीं होनी चाहिये।

मैं जब वाराणसी– काशी में था तो वहाँ मैं विश्वनाथ मन्दिर गया। भक्तो की भारी भीड़। पुजारी पण्डे कह रहे थे कि यहाँ बाबा पर जो एक रुपया चढ़ायेगा उसे विश्वनाथ बाबा लाख देंगे।

एक ग्रामीण आदमी आया। उसने जब यह सुना तो एक रुपया चढ़ा दिया। पुजारी ने फिर वही अपना रटा रटाया फार्मूला दोहराया। उस आदमी ने एक रुपया और चढ़ा दिया। मैंने सोचा कि यह कौन सा गणित है कि एक का सीधा लाख। पुजारी भी लाभ देता है। भला भगवान के यहाँ कोई टकसाल थोड़ी है। रुपया चढ़ाने वाले लाखो हैं। भगवान के दरबार में धन नहीं है मन की शान्ति मिलती है। वह भी लाख बार प्रयास करो तब कहीं जाकर एक बार सफलता मिलती है। तो हम लोग चमत्कार को ही मानते है, चमत्कार के ही वशीभूत है। महावीर चमत्कार को नहीं मानते। वे चमत्कार में विश्वास भी नहीं रखते।

हम महावीर को भूल गये। बाद म कई आई हुई परम्पराओ को ि
वैठे है। मै चाहता हूँ कि हम महावीर के शुद्ध मार्ग को जाने। जैसे गणित
मे है कि एक और एक दो होते है ऐसा ही महावीर का मार्ग है, उस
कल्पना की उडान नही गणित और विज्ञान का दर्शन होता है। अत ज
तक महावीर के शुद्ध मार्ग को नही बताया जायेगा तब तक जैन धर्म क
मार्ग अशुद्ध रहेगा हमारी शुद्धता के लिए शुद्ध मार्ग का दर्शन एव ज्ञा
जरूरी है।

आज जेनधर्म मे जो परम्पराये फैली हुई है वे परम्पराय वास्तव म
जेन धर्म की नही है भगवान् महावीर द्वारा निदिष्ट नही है ये हमार
अपनी बनाई परम्पराये है। हमने ही बनाई है। सारे चमत्कार हमारे ही द्वार
बने बनाय हुए है। ये तीर्थंकर क बनाए हुए नही है।

तो इसलिए महावीर के जीवन म ऐसा कोई भी प्रसग नही है, जिसर
यह सावित हो सके कि भगवान् महावीर ने चमत्कार दिखाया था या उनक
चमत्कार मे विश्वास था। कोई भी महापुरुष कोई भी आत्म गवेषव
निर्वाणाभिमुख व्यक्ति चमत्कार के फन्दे मे नही फँसा। उन्होने कभ
चमत्कार दिखाया ही नही। महावीर के सारे उपदेश चमत्कार के विरोध
है। महावीर के सारे उपदेश सारे वक्तव्य ऐसे है जैसे स्वय महावीर थे
उन्होने तो जैसा सत्य था वैसा कहा। महावीर नग्न रहे। जैसा अस्तित्व थ
वैसा व्यक्त किया। कोई वस्त्रावरण नही कोई साज नही कोई शृँगार नही
कोई सजावट नही कोई काव्यता नही। बिल्कुल गणितीय हिसाब है
वैज्ञानिक हिसाब है। काव्य मे शृँगार का आकर्षण है नवजात उड़ती
कल्पनाएँ है। और गणित और विज्ञान मे जैसा होता है वैसा प्रदर्शित किया
जाता है। महावीर गणितज्ञ और वैज्ञानिक भी थे अध्यात्म-जगत के।
स्पष्टता वैज्ञानिकता और प्रामाणिकता ही उनके वक्तव्यो की विशेषताएँ है।

हम चमत्कार को उससे जोडकर बडी भूल करते है। चमत्कार को
हटा दिया जाय तभी महावीर स्वामी का विशुद्ध मार्ग बचेगा। मै आपको
जैन परम्परा को उतना ही नही बताना चाहता जितना मै चाहता हूँ कि
आप सब महावीर स्वामी क विशुद्ध मार्ग को समझ एक सद्गुरु और
अर्हत् तीर्थंकर की मूल बातो को समझे। जो आदमी महावीर के विशुद्ध
मार्ग को समझ लेगा वह सचमुच महावीर बन जायेगा निज म छिपे जिनत्व
को प्राप्त कर लेगा। सच्चे अर्थों म वह तभी सच्चा जैन हो पायेगा। उसके
बाद म चली आई हुई परम्पराओ म भिन्न भिन्न अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए

हालांकि विमान यात्रा यह कोई निर्णय नहीं है। आकाश से च इसकी हम पूर्णरूपेण निन्दा नहीं कर सकते। ऐसे अनेक अनेक उदाहरण जिनमे ज्ञात होता है कि प्राचीन ऋषि महर्षि आकाश मे चलते थे आकाशचारी होते थे। वे गगन मे विहार करते थे। अन्तर इतना ही है कि वे अपनी तप शक्ति के आधार पर—स्वशक्ति के आधार पर ही आकाश मे उडते थे इसलिए आकाशचारी कहलाते थे। एतदर्थ हम यह तो कह ही नहीं सकते कि हवा मे चलना गगन मे विहार करना गलत है। पानी की नावा मे जहाज मे केवल महावीर ही नहीं बल्कि उनके पश्चात् होने वाले आचार्यो और मुनियो ने भी नौका-जहाज इत्यादि का प्रयोग किया था। ऐसे ढेर सारे उदाहरण है हमारे पास जिनमे मुनियो द्वारा नावा का उपयोग किया जाना सिद्ध होता है। महावीर स्वामी स्वय नौका मे चढे थे फिर भी वे जिन्दगी भर पदयात्राये ही करते रहे। नौका का यदि वे उपयोग नहीं करते तो उनकी पद यात्राये अवरुद्ध हो जाती। अत नौका का उपयोग अनिवार्यता होने पर ही किया जाता था। मैने भी किया है। जियागज-अजीमगज दोनो के बीच मे नदी है किन्तु पुल नहीं है। अत नौका का उपयोग हुआ। पहले जो मुनि आकाशचारी थे वे आकाश मे तभी उडते जब अत्यन्त आवश्यक हो जाता कि यदि हम इस सिद्धि का उपयोग नहीं करेगे तो किसी बडे कार्य से लाभान्वित न हो पाएँगे।

जैन आचार्य तो यहाँ तक कि भगवान की पूजा करने के लिए पुष्प लाने हेतु भी आकाश मे उडे और पुष्प लाये। स्वय अपने साथ मे पुष्प लेकर आये लेकिन वह एक परिस्थिति थी। उन आचार्यो के लिए जैन धर्म के गौरव की रक्षा करने के लिए उन्हे ऐसे कार्य भी करने पडे जो उनके लिये अकरणीय है।

प्रश्न ठीक है कि मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है।

वस्तुत यात्रा मनुष्य का स्वभाव बन गया है। जैसे ही यात्रा रुकी वैसे ही मरण हुआ। जब तक यात्रा रुकी कि उसका परिश्रम रुक गया। यात्रा की व्याकुलता यात्रा की विह्वलता यात्रा का कष्ट और दु ख सब कुछ समाप्त हो जाता है।

आज मनुष्य केवल शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। वह केवल शब्द की गति से यात्रा करना ही नहीं चाहता उसकी तो इच्छा है कि वह मन की गति से यात्रा करे। शब्द तो कब पहुँचेगा लेकिन

पदयात्रा
विश्व दर्शन की मानवीय तकनीक

प्रश्न है — आज विज्ञान के युग में जब आवागमन के द्रुतगामी साधन उपलब्ध हैं और मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है तब पदयात्राओं के महत्त्व का प्रतिपादन करना क्या युक्ति संगत है?

आज का युग विज्ञान युग कहा जाता है किन्तु यह युग कोई आज का युग नहीं है। हमारा भारत पहले भी विज्ञान का युग था। जिन जिन चीजों का आज आविष्कार हुआ है उन सभी वस्तुओं का उन सभी आविष्कारों का मूल स्रोत बहुत पहले ही कहा जा चुका है लिखा जा चुका है। विज्ञान ने ऐसा कोई भी आविष्कार नहीं किया जिसके बारे में संक्षिप्त अथवा विस्तृत रूप में प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख न हुआ हो। मूल आधार तो प्राचीन काल का ही है बीज तो पहले का ही है। आज का विज्ञान केवल उसे अंकुरित करता है। बीज बहुत पुराना है अनादि है।

हम कोई भी उदाहरण ले सकते हैं जैसे प्रश्नकर्ता के अनुसार आवागमन के द्रुतगामी साधन किन्तु ये कोई आज के आविष्कार नहीं हैं। इनके बारे में हमने अनेक शास्त्रों में अनेक ग्रन्थों में कुछ न-कुछ उदाहरण अवश्य पाये हैं जैसे विमान। रामायण में उल्लेख है कि हनुमान सात समुद्रों का उल्लंघन करके सात समुद्रों को पार करके सीता तक पहुँचे अथवा जब लक्ष्मण मूर्छित हो गये तब हनुमान आकाशमार्ग से संजीवनी बूँटी लेने के लिए पहुँचे। हवा में उड़ने की कल्पना मनुष्य हवा में भी उड़ सकता है ऐसी अवधारणा हजारों साल पहले आ चुकी थी। हमने तो उन्हीं नियमों के आधार पर एक नये ढंग का विमान बना लिया। निश्चित रूप से आज विज्ञान ने हमें द्रुतगामी साधन उपलब्ध कराये हैं। अब मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है।

हालाकि विमान यात्रा यह कोई निन्दनीय नही है। आकाश से च इसकी हम पूर्णरूपेण निन्दा नही कर सकते। ऐसे अनेक-अनेक उदाहरण जिनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन ऋषि महर्षि आकाश मे चलते थे आकाशचारी होते थे। वे गगन म विहार करते थे। अन्तर इतना ही है कि वे अपनी तप शक्ति के आधार पर--स्वशक्ति व आधार पर ही आकाश म उडते थ इसलिए आकाशचारी कहलाते थे। एतदर्थ हम यह तो कह ही नहीं सकते कि हवा मे चलना गगन म विहार करना गलत है। पानी की नाका म जहाज म केवल महावीर ही नही वल्कि उनके पश्चात् होने वाले आचार्यों और मुनियो ने भी नौका-जहाज इत्यादि का प्रयोग किया था। ऐसे ढेर सारे उदाहरण है हमारे पास जिनमे मुनियो द्वारा नौका का उपयोग किया जाना सिद्ध होता है। महावीर स्वामी स्वय नौका मे चढे थे फिर भी वे जिन्दगी भर पदयात्राये ही करते रहे। नौका का यदि वे उपयोग नही करते तो उनकी पद यात्राये अवरुद्ध हो जाती। अत नौका का उपयोग अनिवार्यता होने पर ही किया जाता था। मैने भी किया है। जियागज-अजीमगज दोनो के बीच मे नदी है किन्तु पुल नही है। अत नौका का उपयोग हुआ। पहले जो मुनि आकाशचारी थ वे आकाश म तभी उडते जव अत्यन्त आवश्यक हो जाता कि यदि हम इस सिद्धि का उपयोग नही करेगे तो किसी वडे कार्य से लाभान्वित न हो पाएँगे।

जैन आचार्य तो यहाँ तक कि भगवान की पूजा करने के लिए पुष्प लाने हेतु भी आकाश मे उडे और पुष्प लाये। स्वय अपने साथ म पुष्प लेकर आये लेकिन वह एक परिस्थिति थी। उन आचार्यों के लिए जैन धर्म के गौरव की रक्षा करने के लिए उन्हे ऐसे कार्य भी करने पडे जो उनके लिये अकरणीय है।

प्रश्न ठीक है कि मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है।

वस्तुत यात्रा मनुष्य का स्वभाव वन गया है। जैसे ही यात्रा रुकी वसे ही मोक्ष हुआ। जब तक यात्रा रुकी कि उसका परिश्रम रुक गया। यात्रा की व्याकुलता यात्रा की विह्वलता यात्रा का कष्ट और दुख सब कुछ समाप्त हो जाता है।

आज मनुष्य केवल शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। वह केवल शब्द की गति से यात्रा करना ही नहीं चाहता उसकी तो इच्छा है कि वह मन की गति से यात्रा करे। शब्द तो कब पहुँचेगा लेकिन

[illegible] ।

टेलिविजन है। यहाँ पर चित्र आते हैं लेकिन टेलिविजन की मशीन चलाई जाए चित्र सामने आ जायेगा। इसी तरह से रेडियो का है। वैसे ही जो परम ज्ञानी/केवलज्ञानी है उनकी आत्मा में वे शब्द प्रतिध्वनित होंगे। जो प्रश्न पूछा जायगा उसका उत्तर देने के लिए परम ज्ञानी को प्रयास नहीं करना पड़ता वह स्वतः अनायास ही निकलता है। परम ज्ञानी पूर्वभव बताते हैं। परम ज्ञानी कोई ज्योतिषी थोड़े ही है कि आप पहुँच जाइए और कहें कि मेरा पूर्व जन्म कहाँ हुआ था और फिर वे अपने ज्ञान बल के आधार पर आपके लिए घंटे और दस मिनट समय खराब करें। परम ज्ञानी व्यक्ति से तो आपने पूछा कि इस आत्म टेलीविजन में अपने आप सारे चित्र आ जाते हैं। आत्मा के दर्पण में अपने आप सब कुछ प्रतिबिम्बित होने लगता है। सारे चित्र घटाक्रम इसलिए कह दिये जाते हैं बिना प्रयास के। प्रयास नहीं होता परम ज्ञानी में। यदि प्रयास रहा तो परम

तो कृष्ण महावीर बुद्ध के शब्द को सुन सकते है।

शब्द हर जगह पहुँचता है। इसीलिए मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। यात्रा बहुत अनिवार्य है। यात्रा शिक्षा का एक साधन है। अनेक अनेक स्थानों में जाने से अनेक अनेक स्थानों के दर्शन से हमारे ज्ञान में अभिवृद्धि होती है। यूरोप में तो विद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने के बाद जब तक यात्रा नहीं की जाती तब तक शिक्षा को अधूरी मानी जाती है। इसीलिए हम देखते हैं इन सड़कों पर कि बहुत से विदेशी लोग नवयुवक लोग यहाँ पर पहुँचते है और देश पर्यटन करते है देश की संस्कृति को पहचानते है। असली शिक्षा तो इस पर्यटन से मिलती है स्वयं के अनुभव से स्वयं के देखने से मिलती है न कि केवल पढ़ने से। भारतीय लोग कितने है जो विदेशों में जाकर गली गली में भटके। लेकिन विदेशी लोग भारत में पहुँचते है दूसरे देशों में भी पहुँचते है। पर्यटन के बल ज्ञान हासिल करते है।

बिना यात्रा की शिक्षा पूरी होती ही नहीं है। हिमालय के बारे में हमने पढ़ा। हिमालय बर्फ से आच्छादित है गौरीशंकर का पहाड़ है। इतना सुन्दर है हिमालय कि देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जायेगा। पढ़ लिया हमने किताबों में यह सब किन्तु वह शिक्षा तभी हम सम्यक रूपेण समझ पायेंगे जब हम स्वयं हिमालय में चले जायेंगे। किताबों में हिमालय के बारे में जो हमने पढ़ा और जो हम स्वयं हिमालय पर जाकर देखेंगे उसमें जमीन आसमान का फर्क होगा। किताबों में पढ़ी हुई शिक्षा कल भूल जायेंगे लेकिन आँखों से देख कर पायी गयी शिक्षा हम जिन्दगी भर मरते समय तक नहीं

नानी कभी नहीं हुआ। वे तो निष्प्रयास होते है।

दुनिया म जितने महापुरुष हुए जिन्होने शब्द की गति के विज्ञान को जाना उन्होने कभी कोई शास्त्र नही लिखा। कृष्ण महावीर बुद्ध किसी ने भी नही लिखा स्वय। कृष्ण न अर्जुन को उपदेश दिया किन्तु उसे लिखा नही। महावीर ने गौतम को वक्तव्य दिये मगर उन ग्रन्थो म आबद्ध नही किया। बुद्ध ने आनन्द से हुई वार्ता को कभी लिपिबद्ध नही किया। उन्होने तो बस कहा। वस्तुत उन मनीषियो को यह ज्ञात हो गया था कि हम जो कह रहे है वह ग्रन्थो से भी अधिक चिरकाल तक रहेगा। ग्रन्थ काल कवलित हो सकते है शब्द तो स्थायी है। न काटे जा सकते है न जलाये जा सकते है इसीलिए महापुरुषो के शब्द आज भी जीवित हैं। परिव्याप्त हैं वे ससार म विद्युत् तरगो की भाँति। आज भी यदि हम चाहे तो कृष्ण महावीर बुद्ध के शब्दो को सुन सकते हैं।

शब्द हर जगह पहुँचता है। इसीलिए मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। यात्रा यह वस्तुत अनिवार्य है। यात्रा शिक्षा का एक साधन है। अनेक अनेक स्थानो म जाने से अनेक अनेक स्थानो के दर्शन से हमारे ज्ञान म अभिवृद्धि होती है। यूरोप म तो विद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने के बाद जब तक यात्रा नही की जाती तब तक शिक्षा को अधूरी समझी जाती है। इसीलिए हम देखते है इन सडको पर कि बहुत से विदेशी लोग नवयुवक लोग यहाँ पर पहुँचते हैं और देश पर्यटन करते है देश की सस्कृति को पहचानते है। असली शिक्षा तो इस पर्यटन से मिलती है स्वय के अनुभव मे स्वय के देखने से मिलती है न कि केवल पढ़ने मे। भारतीय लोग कितने है जो विदेशो म जाकर गली गली म भटके। लेकिन विदेशी लोग भारत म पहुँचते है दूसरे देशो म भी पहुँचते । पर्यटन के बल ज्ञान हासिल करते हैं।

बिना यात्रा की शिक्षा पूरी होती ही नही है। हिमालय के बारे म हमने पढ़ा। हिमालय बर्फ से आच्छादित है गौरीशकर के पहाड है। इतना सुन्दर है हिमालय कि देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जायगा। पढ लिया हमने किताबो म यह सब किन्तु वह शिक्षा तभी हम सम्यक रूपेण समझ पायगे जब हम स्वय हिमालय म चले जायेगे। किताबो म हिमालय के बारे म जो हमने पढ़ा और जो हम स्वय हिमालय पर जाकर देखगे उसमे जमीन आसमान का फर्क होगा। किताबो मे पढ़ी हुई शिक्षा कल भूल जायगे लेकिन आँखो से देख कर पायी गयी शिक्षा हम जिन्दगी भर मरते समय तक नहीं

ज्ञानी कभी नहीं हुआ। वे तो निष्प्रयास होते है।

दुनिया म जितने महापुरुष हुए जिन्होने शब्द की गति के विज्ञान को जाना उन्हाने कभी कोई शास्त्र नहीं लिखा। कृष्ण महावीर बुद्ध किसी ने भी नहीं लिखा स्वय। कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया किन्तु उसे लिखा नहीं। महावीर ने गौतम को वक्तव्य दिये मगर उसे ग्रन्था म आवद्ध नहीं किया। बुद्ध ने आनन्द स हुई बाता को कभी लिपिवद्ध नहीं किया। उन्होने तो बस कहा। वस्तुत उन मनीषिया को यह ज्ञात हा गया था कि हम जा कह रहे है वह ग्रन्था से भी अधिक चिरकाल तक रहेगा। ग्रन्थ काल कवलित हा सकते है शब्द तो स्थायी है। न काटे जा सकत है न जलाये जा सकते है इसीलिए महापुरुषो के शब्द आज भी जीवित है। परिव्याप्त है वे ससार मे विद्युत् तरगा की भाँति। आज भी यदि हम चाह तो कृष्ण महावीर बुद्ध के शब्दा का सुन सकते है।

शब्द हर जगह पहुँचता है। इसीलिए मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। यात्रा यह बहुत अनिवार्य है। यात्रा शिक्षा का एक साधन है। अनेक-अनेक स्थाना म जाने स अनेक अनेक स्थाना के दर्शन से हमारे ज्ञान म अभिवृद्धि होती है। यूरोप मे तो विद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने के बाद जब तक यात्रा नही की जाती तब तक शिक्षा को अधूरी समझी जाती है। इसीलिए हम देखते है इन सडका पर कि बहुत से विदेशी लाग नवयुवक लोग यहाँ पर पहुँचत ह और देश पर्यटन करत ह देश की सस्कृति को पहचानते है। असली शिक्षा तो इस पर्यटन स मिलती ह स्वय के अनुभव मे स्वय के देखने से मिलती है न कि केवल पढ़ने म। भारतीय लाग कितने है जा विदेशा म जाकर गली गली म भटके। लेकिन विदेशी लाग भारत म पहुँचते है दूसर देशा म भी पहुँचत है। पर्यटन के बल ज्ञान हासिल करत ह।

बिना यात्रा की शिक्षा पूरी हाती ही नहीं है। हिमालय क बारे म हमने पढ़ा। हिमालय वर्फ स आच्छादित है गौरीशकर का पहाड है। इतना सुन्दर है हिमालय कि देखते ही मनुष्य मुग्ध हा जायेगा। पढ़ लिया हमने किताबा म यह सब किन्तु वह शिक्षा तभी हम सम्यक रूपेण समझ पायगे जब हम स्वय हिमालय मे चले जायगे। किताबा म हिमालय के बारे म जो हमने पढ़ा और जो हम स्वय हिमालय पर जाकर देखगे उसम जमीन आसमान का फर्क होगा। किताबो म पढ़ी हुई शिक्षा कल भूल जायगे लेकिन आँखा स देख कर पायी गयी शिक्षा हम जिन्दगी भर मरते समय तक नहीं

न्त कभी नहीं हुआ। वे तो चिरन्तन होते हैं।

दुनिया में जितने महापुरुष हुए जिन्होंने शब्द की शक्ति को पहचाना उन्होंने कभी कोई शस्त्र नहीं लिया। कृष्ण, महावीर, बुद्ध किसी ने भी नहीं लिया शस्त्र। कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया किन्तु उसे लिखा नहीं। महावीर ने गौतम को समझाया किन्तु उसे ग्रन्थ में आबद्ध नहीं किया। बुद्ध ने आनन्द से हुई बातों को कभी लिपिबद्ध नहीं किया। उन्होंने तो बस कहा। वस्तुतः उन मनीषियों को यह ज्ञात हो गया था कि हम जो कह रहे हैं वह ग्रन्थ से भी अधिक विस्तार तक रहेगा। ग्रन्थ कदाचित् नष्ट हो सकते हैं शब्द तो अमर्त्य हैं। न कट सकते हैं न समाप्त हो सकते हैं इसीलिए महापुरुषों के शब्द आज भी जीवित हैं। परिव्याप्त हैं वे संसार में विद्युत् तरंगों की भाँति। आज भी यदि हम चाहें तो कृष्ण, महावीर, बुद्ध के शब्दों को सुन सकते हैं।

शब्द हर जगह पहुँचता है। इसीलिए मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। यात्रा यह बहुत अनिवार्य है। यात्रा शिक्षा का एक साधन है। अनेक अनेक स्थानों में जाने से अनेक अनेक स्थानों के दर्शन से हमारे ज्ञान में अभिवृद्धि होती है। यूरोप में तो विद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने के बाद जब तक यात्रा नहीं की जाती तब तक शिक्षा को अधूरी समझी जाती है। इसीलिए हम देखते हैं इन सड़कों पर कि बहुत से विदेशी लोग नवयुवक लोग यहाँ पर पहुँचते हैं और देश पर्यटन करते हैं देश की संस्कृति को पहचानते हैं। असली शिक्षा तो इस पर्यटन से मिलती है स्वयं के अनुभव से, स्वयं के देखने से मिलती है न कि केवल पढ़ने से। भारतीय लोग कितने हैं जो विदेशों में जाकर गली गली में भटके। लेकिन विदेशी लोग भारत में पहुँचते हैं दूसरे देशों में भी पहुँचते हैं। पर्यटन से वह ज्ञान हासिल करते हैं।

बिना यात्रा की शिक्षा पूरी होती ही नहीं है। हिमालय के बारे में हमने पढ़ा। हिमालय बर्फ से आच्छादित है गौरीशंकर का पहाड़ है। इतना सुन्दर है हिमालय कि देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जायेगा। पढ़ लिया हमने किताबों में यह सब किन्तु वह शिक्षा तभी हम सम्यक् रूपेण समझ पायेंगे जब हम स्वयं हिमालय में चले जायेंगे। किताबों में हिमालय के बारे में जो हमने पढ़ा और जो हम स्वयं हिमालय पर जाकर देखेंगे उसमें जमीन आसमान का फर्क होगा। किताबों में पढ़ी हुई शिक्षा कल भूल जायेंगे लेकिन आँखों से देख कर पायी गयी शिक्षा हम जिन्दगी भर मरते समय तक नहीं

[illegible] कभी नहीं हुआ। वे तो निष्काम होते हैं।

दुनिया में जितने महापुरुष हुए [illegible] की भी के लिए [illegible] उन्होंने कभी कोई शास्त्र नहीं लिखा। कृष्ण, महावीर, बुद्ध किसी ने भी नहीं लिखा स्वयं। कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया किन्तु उसे लिखा नहीं। महावीर ने गौतम को उपदेश दिया मगर उसे ग्रन्थ में आबद्ध नहीं किया। बुद्ध ने आनन्द से हुई चर्चा को कभी लिपिबद्ध नहीं किया। उन्होंने तो बस कहा। वस्तुतः उनके द्वारा दिए गए शब्द ही आज तक [illegible] में गूँज रहे हैं। यह ग्रन्थ से भी अधिक स्थायी तत्त्व होगा। ग्रन्थ कभी खण्डित हो सकते हैं, शब्द तो शाश्वत है। ग्रन्थ फट जा सकते हैं, जलाये जा सकते हैं। इसीलिए महापुरुषों के शब्द आज भी जीवित हैं। परिव्याप्त हैं वे संसार में विद्युत् तरंग की भाँति। आज भी यदि हम चाहें तो कृष्ण, महावीर, बुद्ध के शब्दों को सुन सकते हैं।

शब्द हर जगह पहुँचता है। इसीलिए मनुष्य शब्द की गति में यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। यात्रा बहुत अनिवार्य है। यात्रा शिक्षा का एक साधन है। अनेक अनेक स्थानों में जाने से, अनेक अनेक स्थानों के दर्शन से हमारे ज्ञान में अभिवृद्धि होती है। यूरोप में तो विद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने के बाद जब तक यात्रा नहीं की जाती तब तक शिक्षा को अधूरी समझी जाती है। इसीलिए हम देखते हैं इन सड़कों पर कि बहुत से विदेशी लोग, नवयुवक लोग यहाँ पर पहुँचते हैं और देश पर्यटन करते हैं, देश की संस्कृति को पहचानते हैं। असली शिक्षा तो इस पर्यटन से मिलती है, स्वयं के अनुभव में, स्वयं के देखने से मिलती है न कि केवल पन्नों से। भारतीय लोग चिन्ता है जो विदेशों में जाकर गली गली में भटकें। लेकिन विदेशी लोग भारत में पहुँचते हैं, दूसरे देशों में भी पहुँचते हैं। पर्यटन के बल ज्ञान हासिल करते हैं।

बिना यात्रा की शिक्षा पूरी होती ही नहीं है। हिमालय के बारे में हमने पढ़ा। हिमालय बर्फ से आच्छादित है, गौरीशंकर के पहाड़ हैं। इतना सुन्दर है हिमालय कि देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जायगा। पढ़ लिया हमने किताबों में यह सब, किन्तु यह शिक्षा तभी हम सम्यक् रूपेण समझ पायेंगे जब हम स्वयं हिमालय में चले जायेंगे। किताबों में हिमालय के बारे में जो हमने पढ़ा और जो हम स्वयं हिमालय पर जाकर देखेंगे, उसमें जमीन आसमान का फर्क होगा। किताबों में पढ़ी हुई शिक्षा कल भूल जायेंगे लेकिन आँखों से देख कर पायी गयी शिक्षा हम जिन्दगी भर मरते समय तक नहीं

ऐसा कभी नहीं हुआ। वे तो निष्काम होते हैं।

दुनिया में जितने महापुरुष हुए जिन्होंने शब्द की महिमा का ज्ञान कराया उन्होंने कभी कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। कृष्ण, महावीर, बुद्ध किसी ने भी नहीं लिखा ग्रन्थ। कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया किन्तु उसे लिखा नहीं। महावीर ने गौतम को उपदेश दिये मगर उन्हें ग्रन्थों में आबद्ध नहीं किया। बुद्ध ने आनन्द से हुई बातों को कभी लिपिबद्ध नहीं किया। उन्होंने तो बस कहा। वस्तुतः उन्हें विदित था यह ज्ञात हो गया था कि शब्द में जो बह रहा है वह ग्रन्थों से भी अधिक चिरस्थायी बना रहेगा। ग्रन्थ कल प्रज्वलित हो सकते हैं शब्द तो अमर हैं। न काटे जा सकते हैं न जलाये जा सकते हैं इसीलिए महापुरुषों के शब्द आज भी जीवित हैं। परिव्याप्त हैं वे संसार में विद्युत् तरंग की भाँति। आज भी यदि हम चाहें तो कृष्ण, महावीर, बुद्ध के शब्दों को सुन सकते हैं।

शब्द हर जगह पहुँचता है। इसीलिए मनुष्य शब्द की गति में यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। यात्रा यह बहुत अनिवार्य है। यात्रा शिक्षा का एक साधन है। अनेक अनेक स्थानों में जाने से अनेक अनेक स्थानों के दर्शन से हमारे ज्ञान में अभिवृद्धि होती है। यूरोप में तो विद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने के बाद जब तक यात्रा नहीं की जाती तब तक शिक्षा को अधूरी समझी जाती है। इसीलिए हम देखते हैं इन मुल्कों पर कि बहुत से विदेशी लोग, नवयुवक लोग यहाँ पर पहुँचते हैं और देश पर्यटन करते हैं देश की संस्कृति को पहचानते हैं। असली शिक्षा तो इस पर्यटन से मिलती है स्वयं के अनुभव से स्वयं के देखने से मिलती है न कि केवल पढ़ने से। भारतीय लोग कितने हैं जो विदेशों में जाकर गली गली में भटकें। लेकिन विदेशी लोग भारत में पहुँचते हैं दूसरे देशों में भी पहुँचते हैं। पर्यटन के बल ज्ञान हासिल करते हैं।

बिना यात्रा की शिक्षा पूरी होती ही नहीं है। हिमालय के बारे में हमने पढ़ा। हिमालय बर्फ से आच्छादित है गौरीशंकर के पहाड़ हैं। इतना सुन्दर है हिमालय कि देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जायगा। पढ़ लिया हमने किताबों में यह सब किन्तु वह शिक्षा तभी हम सम्यक् रूपेण समझ पायेंगे जब हम स्वयं हिमालय में चले जायेंगे। किताबों में हिमालय के बारे में जो हमने पढ़ा और जो हम स्वयं हिमालय पर जाकर देखेंगे उसमें जमीन आसमान का फर्क होगा। किताबों में पढ़ी हुई शिक्षा कल भूल जायेंगे लेकिन आँखों से देख कर पायी गयी शिक्षा हम जिन्दगी भर मरते समय तक नहीं

ज्ञानी कभी नहीं हुआ। वे तो निष्प्रयास होते हैं।

दुनिया मे जितने महापुरुष हुए जिन्होंने शब्द की गति के विज्ञान को जाना उन्होंने कभी कोई शास्त्र नही लिखा। कृष्ण महावीर बुद्ध किसी ने भी नही लिखा स्वय। कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया किन्तु उसे लिखा नही। महावीर ने गौतम को वक्तव्य दिये मगर उन ग्रन्थो मे आबद्ध नहीं किया। बुद्ध ने आनन्द से हुई बातो को कभी लिपिबद्ध नहीं किया। उन्होंने तो बस कहा। वस्तुत उन मनीषियो को यह ज्ञात हो गया था कि हम जो कह रहे हैं वह ग्रन्थो से भी अधिक चिरकाल तक रहेगा। ग्रन्थ काल कवलित हो सकते है, शब्द तो स्थायी है। न काटे जा सकते हैं न जलाये जा सकते हैं इसीलिए महापुरुषो के शब्द आज भी जीवित हैं। परिव्याप्त है वे ससार मे विद्युत् तरगो की भाँति। आज भी यदि हम चाहे तो कृष्ण महावीर बुद्ध के शब्दो को सुन सकते है।

शब्द हर जगह पहुँचता है। इसीलिए मनुष्य शब्द की गति से यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। यात्रा यह बहुत अनिवार्य है। यात्रा शिक्षा का एक साधन है। अनेक अनेक स्थानो मे जाने से अनेक अनेक स्थानो के दर्शन से हमारे ज्ञान मे अभिवृद्धि होती है। यूरोप मे तो विद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने के बाद जब तक यात्रा नहीं की जाती तब तक शिक्षा को अधूरी समझी जाती है। इसीलिए हम देखते है इन सडको पर कि बहुत से विदेशी लोग नवयुवक लोग यहाँ पर पहुँचते हैं और देश पर्यटन करते हैं देश की सस्कृति को पहचानते है। असली शिक्षा तो बस पर्यटन से मिलती है स्वय के अनुभव मे स्वय के देखने से मिलती है न कि केवल पढने मे। भारतीय लोग कितने हैं जो विदेशो मे जाकर गली गली मे भटके। लेकिन विदेशी लोग भारत मे पहुँचते हैं दूसरे देशो मे भी पहुँचते हैं। पर्यटन के बल ज्ञान हासिल करते हैं।

बिना यात्रा की शिक्षा पूरी होती ही नहीं है। हिमालय के बारे मे हमने पढा। हिमालय बर्फ से आच्छादित है गौरीशकर के पहाड है। इतना सुदर है हिमालय कि देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जायगा। पढ लिया हमने किताबो मे यह सब किन्तु वह शिक्षा तभी हम सम्यक रूपेण समझ पायगे जब हम स्वय हिमालय मे चले जायगे। किताबो मे हिमालय के बारे मे जो हमने पढा और जो हम स्वय हिमालय पर जाकर देखेगे उसमे जमीन आसमान का फर्क होगा। किताबो मे पढी हुई शिक्षा कल भूल जायगे लेकिन आँखो से देख कर पायी गयी शिक्षा हम जिन्दगी भर मरते समय तक नहीं

शर्ग, कभी नहीं हुआ। व तो निष्प्राण होते हैं।

दुनिया म जितने महापुरुष हुए जिन्होने शब्द की गति व शिक्षा को माना उनमे कभी कोई शास्त्र नहीं लिखा। कृष्ण महावीर बुद्ध किसी ने भी नहीं लिखा स्वय। कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया किन्तु ग्रन्थ लिखा नहीं। महावीर ने गौतम को वक्तव्य दिये मगर उन ग्रन्थो म आबद्ध नहीं किया। बुद्ध ने आनन्द से हुई वार्ता को कभी लिपिबद्ध नहीं किया। इन्होने कहा। वस्तुत उन महापुरुषो को यह ज्ञान हो गया था कि जो शब्द वह रहे है वह ग्रन्थो से भी अधिक चिरकाल तक रहेगा। ग्रन्थ केवल भस्मीभूत हो सकते है शब्द तो अमर्त्य है। न काटे जा सकते है न जलाये जा सकते है इसीलिए महापुरुषो के शब्द आज भी जीवित है। परिव्याप्त है वे ससार म विद्युत् तरगो की भाँति। आज भी यदि हम चाहे तो कृष्ण महावीर बुद्ध के शब्दो को सुन सकते है।

शब्द हर जगह पहुँचता है। इसीलिए मनुष्य शब्द की गति म यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। यात्रा यह बहुत अनिवार्य है। यात्रा शिक्षा का एक साधन है। अनेक-अनेक स्थानो म जाने से अनेक अनेक स्थानो के दर्शन से हमारे ज्ञान म अभिवृद्धि होती है। यूरोप म तो विद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने के बाद जब तक यात्रा नहीं की जाती तब तक शिक्षा को अधूरी समझी जाती है। इसीलिए हम देखते है इन रास्तो पर कि बहुत से विदेशी लोग नवयुवक लोग यहाँ पर पहुँचते है और देश पर्यटन करते है देश की संस्कृति को पहचानते है। असली शिक्षा तो इस पर्यटन से मिलती है स्वय के अनुभव से स्वय के देखने से मिलती है न कि केवल पन्नो से। भारतीय लोग चिन्ता है जो विदेशो म जाकर गली गली म भटके। लेकिन विदेशी लोग भारत म पहुँचते है दूसरे देशो म भी पहुँचते है। पर्यटन के बल ज्ञान हासिल करते है।

बिना यात्रा की शिक्षा पूरी होती ही नहीं है। हिमालय के बारे म हमने पढ़ा। हिमालय बर्फ से आच्छादित है गौरीशंकर के पहाड है। इतना सुन्दर है हिमालय कि देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जायगा। पढ लिया हमने किताबो म यह सब किन्तु वह शिक्षा तभी हम सम्यक रूपेण समझ पायगे जब हम स्वय हिमालय म चले जायगे। किताबो म हिमालय के बारे म जो हमने पढ़ा और जो हम स्वय हिमालय पर जाकर देखेगे उसमे जमीन आसमान का फर्क होगा। किताबो म पढ़ी हुई शिक्षा कल भूल जायगे लेकिन आँखो से देख कर पायी गयी शिक्षा हम जिन्दगी भर मरते समय तक नहीं

भाषी कभी नहीं हुआ। वे तो निश्चयात्मक रहते है।

दुनिया में जितने महापुरुष हुए जिन्होंने शब्द का महत्व समझा था उन्होंने कभी कोई शास्त्र नहीं लिखा। कृष्ण, महावीर, बुद्ध किसी ने नहीं लिखा स्वयं। कृष्ण ने अर्जुन का उपदेश दिया किन्तु उसे लिखा नहीं। महावीर ने गौतम को बताया दिया मगर उस ग्रन्थ में आबद्ध नहीं किया। बुद्ध ने आनन्द से हुई वार्ता को कभी लिपिबद्ध नहीं किया। उन्होंने तो बस कहा। वस्तुत उन मनीषियों को यह ज्ञात हो गया था कि हम जो कह रहे हैं यह ग्रन्थों से भी अधिक चिरकाल तक रहेगा। ग्रन्थ कल नष्ट हो सकते हैं शब्द तो अनादि है। ग्रन्थ काटे जा सकते हैं, जलाए जा सकते हैं इसीलिए महापुरुषों के शब्द आज भी जीवित है। परिव्याप्त है वे ससार में विद्युत तरंगों की भाँति। आज भी यदि हम चाहे तो कृष्ण, महावीर, बुद्ध के शब्दों को सुन सकते हैं।

शब्द हर जगह पहुँचता है। इसीलिए मनुष्य शब्द की गति में यात्रा करने की तैयारी कर रहा है। यात्रा यह बहुत अनिवार्य है। यात्रा शिक्षा का एक साधन है। अनेक-अनेक स्थानों में जाने से अनेक अनेक स्थानों के दर्शन से हमारे ज्ञान में अभिवृद्धि होती है। यूरोप में तो विद्यालय की शिक्षा पूर्ण होने के बाद जब तक यात्रा नहीं की जाती तब तक शिक्षा को अधूरी समझी जाती है। इसीलिए हम देखते हैं इन सड़कों पर कि बहुत से विदेशी लोग नवयुवक लोग यहाँ पर पहुँचते हैं और देश पर्यटन करते हैं देश की संस्कृति को पहचानते है। असली शिक्षा तो इस पर्यटन से मिलती है स्वयं के अनुभव से, स्वयं के देखने से मिलती है न कि केवल पढ़ने से। भारतीय लोग कितने है जो विदेशों में जाकर गली गली में भटके। लेकिन विदेशी लोग भारत में पहुँचते है दूसरे देशों में भी पहुँचते हैं। पर्यटन कर वह ज्ञान हासिल करते हैं।

बिना यात्रा की शिक्षा पूरी होती ही नहीं है। हिमालय के बारे में हमने पढ़ा। हिमालय बर्फ से आच्छादित है गौरीशंकर के पहाड़ है। इतना सुन्दर है हिमालय कि देखते ही मनुष्य मुग्ध हो जायेगा। पढ़ लिया हमने किताबों में यह सब किन्तु वह शिक्षा तभी हम सम्यक रूपेण समझ पायेंगे जब हम स्वयं हिमालय में चले जायेंगे। किताबों में हिमालय के बारे में जो हमने पढ़ा और जो हम स्वयं हिमालय पर जाकर देखेंगे उसमें जमीन आसमान का फर्क होगा। किताबों में पढ़ी हुई शिक्षा कल भूल जायेंगे लेकिन आँखों से देख कर पायी गयी शिक्षा हम जिन्दगी भर मरते समय तक नहीं

नारदजी पहुँचे उसके पास और कहा कि ए भाई! मै ब्रह्मा के पास जा रहा हूँ। तुम्हें क्या कुछ पुछवाना है कि तुम्हारी मुक्ति कब होगी? वह युवक बोला अरे महाशय! मैने तो अभी-अभी सन्यास लिया है अभी अभी हरिकीर्तन शुरु किया है। फिर मेरी मुक्ति कहाँ से हो जायगी। अभी तो मुझे जन्मो जन्मो तक तपस्या और साधना करनी पडेगी तब कहीं जाकर मेरी मुक्ति होगी। यदि आप की इच्छा है तो ब्रह्माजी से पूछ लीजिएगा।

नारदजी पहुँचे ब्रह्माजी के पास बात चीत की और वापस लौट आये। सबसे पहले उसी सन्यासी के पास पहुँचे और बोले कि सन्यासी! मै ब्रह्मा के पास गया था। उन्होने बताया कि तुम्हारी मुक्ति तीन जन्मो के बाद होगी। यह सुनते ही वह बोखला उठा कि मुझे मुक्ति अभी तीन जन्मो के बाद मिलेगी! क्या मुझे मुक्ति पाने के लिए तीन बार और जन्म लेना पडेगा? धिक्कार है ऐसी मुक्ति को। मैने अपनी सारी जिन्दगी लगा दी इस मुक्ति की प्राप्ति के लिए मगर ब्रह्मा कहते है कि अभी तुझे तीन जन्म लेने पडेंगे मुक्ति प्राप्ति के लिए। ऐसी मुक्ति मुझ नहीं चाहिए ऐसे परमात्मा हम नही चाहिए। उसने अपनी माला फेंक दी कपडे उतार कर फेंक दिये जनेऊ निकाल कर फेंक दी खडाऊ कमण्डल आदि सब कुछ फेंक दिये और कहा कि जिस मुक्ति को पाने के लिए जन्म जन्म साधना करनी पडती है वह मुक्ति नीरस है मुझे नहीं चाहिए। यह कह कर उसने सन्यास छोड दिया।

नारदजी को बडा आश्चर्य हुआ लेकिन वे बोल भी तो क्या सकते। चल पडे आगे। पहुँचे उस युवक के पास और बोले कि युवा साधक! ब्रह्मा ने तुम्हें कहलाया है कि तुम जिस पेड के नीचे बैठे हो जिस बरगद के पेड के नीचे गिनो कि उस पेड में कितनी पत्तियाँ है। उस पेड में जितनी पत्तियाँ है उतने भव और करने पडेंगे तुम्हें मुक्ति के लिए। इस पर वह युवक बहुत खुश हुआ और बोला कि वाह! ससार मे तो अनेक वृक्ष है। उनकी असख्य पत्तियाँ है किन्तु भगवान् मुझ पर इतने खुश है कि कहते है इसी एक बरगद के पेड मे जितने पत्ते है मात्र उतने ही जन्म तुम्हें लेने है। नारदजी इस बात को सुनकर आश्चर्य चकित हो गये कि एक आदमी को तीन जन्म के बाद मुक्ति मिल रही है तो भी वह कहता है कि मुझे मुक्ति नही चाहिए और दूसरे आदमी को हजारो लाखो जन्म लेने पड रहे हैं इस ससार से मुक्ति के लिए। फिर भी वह खुश है।

बस महावीर हमे इसी ओर सकेत दे रहे है। वे यह कह रहे है कि

आशावाद अलाभ-चिन्ता से मुक्ति

सूत्र है—

जज्जवाह न लभामि अविलाभा मुए सिया।
जो एव पडिसंचिक्खे अलाभो तं न तज्जए॥

आज मुझे नहीं मिला परन्तु सम्भव है कल मिल जाय—जो इस प्रकार सोचता है उसे अलाभ नहीं सताता।

बहुत गहरी बात है यह। सुनने में तो बहुत सीधी सादी बात है लेकिन आज के सारे पाश्चात्य दर्शन की नींव महावीर ने पच्चीस सौ वर्ष पहले ही खड़ी कर दी थी। अतः महावीर की नींव पच्चीस सौ वर्ष पुरानी है और वह नींव इतनी मजबूत है कि उस पर चाहे जितने भी महल खड़े किये जाय मगर वह नींव ढह नहीं सकती।

इस सूत्र को समझने के लिए मैं एक छोटी सी कहानी कहता हूँ। कहानी बहुत पुरानी है। एक सन्यासी बहुत काल से साधना कर रहा था। उसके शरीर में मात्र हड्डियों का कंकाल ही रह गया था और कुछ भी न बचा था। एक दिन उधर से वीणा लिये जोड़ पहने और पैरों में खड़ाऊ धारण किये नारदजी निकले। नारद ने देखा कि सन्यासी बड़ी साधना कर रहा है। नारदजी उस सन्यासी के पास पहुँचे और प्रेमपूर्वक बातचीत की। जाते समय नारदजी ने सन्यासी से कहा कि सन्यासी! मैं ब्रह्मा के पास जा रहा हूँ तुम्हारा यदि कोई काम हो तो बता दो। सन्यासी ने कहा नारदजी! आप ब्रह्मा के पास जा रहे हैं तो थोड़ा सा प्रश्न हल कर दीजिएगा। आते समय ब्रह्मा से पूछते आइएगा कि मेरी मुक्ति कब होगी?

नारदजी रवाना हुए। कुछ और आगे बढ़े तो देखा कि एक युवक जिसने अभी दीक्षा ली है और जो हरिकीर्तन में मस्त तल्लीन है। नाच रहा है गा रहा है बीच बाजार में। लोग कह रहे थे अरे देखो यह लड़का साधु तो हो गया मगर पागल हो गया है। यह दिन भर बाजार में हरिकीर्तन कर रहा है।

आशा के साथ राम ने रावण के साथ महायुद्ध किया था। आखिर रावण निराश हो गया। जब हार का समय आया तब रावण हताश हो गया। सोचा कि मै जीत न पाऊगा। राम की मुठ्ठी भर सेना ने रावण की अथाह सेना को हरा दिया तो एक मात्र आशावाद पर।

महाभारत का युद्ध हुआ। पाण्डव कितने? पॉच। और कौरव कितने? सौ। मगर पॉच की सख्या सौ की बराबरी करती थी। पाण्डव जैसे ही आते कि कौरव घबडा जाते। अरे पाण्डव आये। मात्र पॉच ने सौ कौरवो को हरा दिया। कृष्ण ने अर्जुन के भीतर प्राण फूक दिये कि तू अपनी आशा का कभी समाप्त न होने दे। तू अपनी आशा पर डटे रह। अपने मन को हर समय प्रसन्न रख। विजय तेरी होगी। हार नही हो सकती। आगे बढ। पीछे कभी मत हट। आप भी इसी तरह अनुभव करते रहिए कि मै कभी भी पीछे नही हटूँगा। एक बात को दुहराते रहिए कि आज नही मिला है तो कल जरूर मिलेगा। इस आशा पर आप जीवित रहिए तो कभी भी नहीं हारेगे।

महावीर के समर्थक हुए स्वेट मार्डन। आज के मच पर खडे है स्वेट मार्डन परम आशावादी और शास्त्रीय मच पर खडे है महावीर। वे भी परम आशावादी है। स्वेट मार्डन ने एक पुस्तक लिखी है एव्री मैन ए किंग'। यानी प्रत्येक आदमी राजा है। इसका हिन्दी अनुवाद भी छप चुका है जिसका नाम है व्यक्तित्व का विकास। स्वेट मार्डन ने अपनी सारी पुस्तक मे एक बात पर जोर दिया है कि तुम यदि अपनी आशा पर डट हो और उसके अनुसार ईमानदारीपूर्वक कर्म करते हो तो ससार तुम्हे निश्चय ही विजयश्री की माला पहनायेगा।

बात बिलकुल ठीक है। महावीर राम कृष्ण मीरा ये सभी लोग आशा पर जीते थे। यदि मीरा आशा पर नहीं जीती तो उस परमात्मा कभी भी दर्शन नही देते। मीरा गलिया म भटकी वृन्दावन की गलियो म गयी मथुरा की गलिया म गयी। कहाँ से-कहाँ तक की यात्रा की थी मगर एक आशा थी उसके भीतर कि कृष्ण के दर्शन होगे ही। इसी आशा को लेकर उसने अपना राजपरिवार छोडा ससार छोडा घर द्वार सब कुछ छोड दिया। उसकी आशा अन्त म फलीभूत हुई। कृष्ण के दर्शन हुए। आज नही मिला तो क्या इसका मतलब कभी नहीं मिलेगा? हम आशा के अनुरूप पुरुषार्थ करे। आज नही तो कल अवश्य मिलेगा। पुरुषार्थ तो हमारा ही होगा। पुरुषार्थ ही विजय है।

मैने पढ़ी है एक कहानी कि एक साधु था। वह साधु फक्कड था

तू इसको भूल जा कि कल नहीं मिलेगा। आज तुझे मुक्ति नहीं मिल रही है तो यह मत सोच कि आज मुझे मुक्ति नहीं मिल रही है तो फिर मुक्ति चाहिए ही नहीं। तब तुझे अलाभ सतायेगा। तुझे हानि दुःख, भय आदि सतायेंगे। इसी के स्थान पर तू यह सोच कि मुक्ति आज नहीं मिली, परन्तु सम्भव है कल मिल जायगी। जो इस प्रकार का विचार रखता है उसको अलाभ नहीं सताता। उसको हानि नहीं सताती। उसको कष्ट, निष्फलता प्रतिकूलता आदि कभी नहीं सताते।

महावीर स्वामी ने बहुत गहरी बात कही है। इस गाथा से ऐसा लगता है कि महावीर परम आशावादी व्यक्ति थे। वे आशा के धागे से आगे से आगे बढ़ते है। आशा के रस्से को पकड़कर एवरेस्ट की भी चढ़ाई करते है। वे कहते है कि तू चिन्ता मत कर, तू अपना कार्य करते जा। तुझे अलाभ कभी नहीं सतायेगा। यदि निराश हो जाओगे तो साधना कैसे करोगे? महावीर ने साढ़े बारह वर्ष तक साधना की मात्र आशावाद को लेकर। बुद्ध की तरह यदि निराश हो जाते तो क्या उनको इतनी जल्दी कैवल्य मिल सकता? बुद्ध ने साधना की और देखा कि अभी तक मुझे ज्ञान नहीं मिला तो बुद्ध ने तपस्या का त्याग कर दिया। मगर महावीर इसी सूत्र पर डटे रहे कि भले ही मुझे आज मुक्ति न मिले, परन्तु सम्भव है कि कल मिल जाय। महावीर इसी आशा को लेकर अपनी साधना में जमे रहे कि आज सर्वांगीण विशुद्धता उपलब्ध नहीं हो रही है पर कल हो जायगी। होगी एक न एक दिन अवश्य सम्भावित होगी। साढ़े बारह वर्षों तक इसी सूत्र का अनुभव किया। यह सूत्र कोई थोथा सूत्र नहीं है। बासी या उधार लिया हुआ नहीं है। यह मूल निधि है व्याज नहीं। महावीर ने सारी जिन्दगी की बात कही है। जीवन के समग्र अनुभवों का नवनीत और निचोड़ है यह सूत्र।

राम ने आशा पर अवलम्बित होकर ही रावण के साथ युद्ध किया था। रावण के पास कितनी शक्ति थी राम की अपेक्षा। राम के पास तो रावण की शक्ति देखते कुछ भी नहीं थी। मात्र इने गिने बन्दर थे। जबकि रावण के पास हर तरह की सैन्य शक्ति थी, परन्तु राम को यह पक्का विश्वास था कि विजय मेरी ही होगी। और निश्चित होगी। यहाँ तक की लक्ष्मण मूर्छित हो गये। राम की आधी सेना खत्म हो गयी। राम के पास कोई दैवी शक्ति नहीं रह गयी। फिर भी राम के पास एक अथाह विश्वास था। एक ऐसी आशा बंधी हुई थी कि मेरी विजय अवश्य होगी। बस इसी

मस्त औलिया। उस साधु की किसी ने पगड़ी चुरा ली। जब वह नेगरा सोचने लगा कि मैं किस आदमी के पास जाऊँ अपनी पगड़ी खोजने के लिए। तो वह पहुँच गया श्मशान पर और जाकर बैठ गया। लोग आते और पूछते क्या बाबा! साधना कर रहे हो? नहीं साधु का उत्तर था। तो यहाँ श्मशान पर किसलिए बैठे हो? उसने कहा ऐसा किसी ने मेरी पगड़ी चुरा ली है। जिसने पगड़ी चुरायी है वह एक न एक दिन तो यहाँ आयेगा ही, अवश्य आयेगा और जिस दिन वह आयेगा उस दिन उससे वापस ले लूँगा।

वैसे ही जीवन में भी एक न एक दिन अवश्य लाभ होता है। अवश्य विजय मिलती है। कोई भी यहाँ पर असफल नहीं हो सकता। यदि मन में निराश हो गये तो वहीं असफलता मिल गयी। हम आशावाद पर जीते हैं। आशा ही जीवन की आत्मा है। स्वेट मार्डन कहता है कि तू चिन्ता मत कर विजयश्री की माला तुम्हें ही मिलेगी। महावीर भी यही बात कह रहे हैं कि आज तुम्हें नहीं मिला परन्तु संभव है कि कल मिल जाये। जो इस प्रकार सोचता है उसे अलाभ नहीं सताता।

तो हमारे भीतर निराशा नहीं आनी चाहिए। आशा को समझो कि यह रत्न है मणि है। जहाँ कहीं भी आशा की मणि दिखायी दे, उसे सजा लो और निराशा को ठुकरा दो वैसे ही जैसे रद्दी कागजों को ठुकरा देते हैं। निराशा को रद्दी की टोकरी समझो। अपने भीतर हम आशा के बीज बोते हैं फिर तो हमारा भविष्य उज्ज्वल होगा ही।

बहुत से लोग ऐसा कहते हैं कि भविष्य अंधकारमय होता है पर महावीर इस गाथा के द्वारा यह स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि यदि तुम्हारे भीतर आशा की किरण है तो अंधकार दूर हो जायेगा। ठीक है बहुत लोगों का भविष्य अंधकारमय होता है मगर तुम आशा की किरण उसमें से प्रकट कर लो। यदि तुम्हारे भीतर आशा की किरण, आशा की दीपप्रभा प्रगट हो गयी तो तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल हो जायगा तुम्हारा भविष्य प्रकाशवान हो जायेगा।

इसीलिए हम आशावाद के आधार पर उत्तम जीवन जीते हैं। एक ज्योति भी आशावाद की प्रगट हो गयी तो यों समझो जैसे कि आकाश में बादल छा गये हैं। सघन बादल हैं। चारों तरफ अंधकार ही अंधकार है मगर बिजली की एक चमक उस सारे अंधकार को दूर कर देती है। जितनी देर तक बिजली चमकती रहेगी उतनी देर तक हमारे भीतर आशा पनपती रहेगी। उतनी देर तक हमारा मार्ग प्रशस्त बना रहेगा।

अगर बीच मे निराशा पाप गई तो या समनो कि उसने अपराध करने शुरु कर दिये है। वह कर्त्तव्य मार्ग पर चलने के लिये उद्यत तो हुआ किन्तु मार्गवर्ती कठिनाइयो से घबड़ाकर बीच म ही पथच्युत हो गया।

वस्तुत मानव की तीन कोटियाँ है। हीन कोटि के व व्यक्ति है जो किसी उत्तम कार्य म आनेवाले विघ्नो के भय स उस कार्य का आरम्भ नही करते। मध्यम कोटि के वे व्यक्ति है जो उत्तम कार्यो का आरम्भ तो कर देते है किन्तु बीच म विघ्न आ पडने पर उस कार्य का परित्याग कर देते है और उत्तम कोटि क व व्यक्ति माने गए है जो विघ्नो के द्वारा बार बार प्रतिहत होते हुए भी अपने द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्य का जीते जी परित्याग नही करते।

एक ऐतिहासिक घटना है। मुझे यह घटना काफी प्रिय लगी। बौद्ध भिक्षुओ का एक सघ इकठ्ठा हुआ सगीति हुई सगोष्ठी का आयोजन हुआ। कहते है कि जब श्यालकोट म बौद्ध भिक्षुओ का सघ आयोजित हुआ तो यह प्रश्न हुआ कि हमने श्यालकोट म भिक्षुओ का सघ आयोजित तो किया है मगर यहाँ का जो राजपुरोहित है वह व्यक्ति बडा कट्टर है। वह किसी हालत मे बौद्ध धर्म के प्रति समर्पित कर दिया जाय तो सारे ब्राह्मण पण्डित बौद्ध धर्म म आ जायगे।

अब प्रश्न यह उठा कि उस राजपुरोहित को कौन अपने काबू म करेगा। सब लोग चुप हो गये। आखिर एक छोटा सा साधारण बौद्ध भिक्षु उठा और बोला कि मैं छोटा हूँ मगर प्रयास करूँगा। सभी साधुओ न मना किया कि अभी तू पढ़ा लिखा नही है। तू भिक्षु जीवन के बारे म जानता नही है और वह परम प्रकाण्ड पण्डित है तू उसके पास कैसे जायगा? मगर उसने तो दृढ निश्चय कर लिया कि मै उस राजपुरोहित को अवश्य काबू म करूँगा।

वह निकल पडा। उस राजपुरोहित के घर पर पहुँचा तो वह बाहर आया और वह बौद्ध भिक्षु को डॉटने लगा फटकारने लगा गालिया देने लगा। उस बौद्ध भिक्षु का तिरस्कार किया। यहाँ तक कि उसे धक्के मारकर निकलवा दिया। बौद्ध भिक्षु कुछ नही बोला वापस आ गया।

दूसरे दिन फिर पहुँचा और बोला क्या दातव्य अन्न-जल की कोई सुविधा है। जैसे ही राजपुरोहित ने देखा कि कल वाला ही भिक्षु आया है और अन्न-दान माँग रहा है तो उसने अपने कर्मचारियो को आदेश दिया कि इसे धक्के मार कर निकाल दो। कर्मचारियो ने उसे धक्के मारकर बाहर

अब मन [illegible] । व्यापार म जितना [illegible] हो [illegible]
मिलती है। देश और [illegible] मिला गया। [illegible]
है [illegible] है। [illegible] नहीं की [illegible]
[illegible] नहीं [illegible] । [illegible] हानि लाभ होते रहते है।
[illegible] पेट [illegible] गा। [illegible] टट
जायगा। किन्तु [illegible] है कि [illegible] का घाटा हो गया
तो [illegible] तो [illegible] होता ही है। [illegible] प्रयास [illegible] कि
[illegible] लाभ के [illegible] कमाऊँगा।

एक आदमी को लाभ मिलता है और दूसरे आदमी को अलाभ कभी नहीं सताता। यह [illegible] म मान्यता पर आधारित है। इसलिए हम निराश नहीं होना चाहिए। आशावाद पर जीना चाहिए। चाहे व्यवसाय हो चाहे गृहस्थी हो चाहे साधना हो या कुछ भी हो यदि हमारे भीतर आशा है तो हम आगे से आगे बढ़ते जायेंगे।

चाहे जितनी सघन घटा हो
निशि-निशा म तिमिर छटा हो।
पर विद्युत् की एक चमक जग
जग भूतल ज्योतित करती है।
आशा पर दुनिया जीती है।

कवि के शब्द है चाहे जितनी सघन घटा हो निशि निशा म तिमिर छटा हो। यानी कि बादलों की घटा चाहे जितनी उमड़ी हो और अंधकार चाहे जितना भी छटा हुआ हो पर विद्युत् की एक चमक सम्पूर्ण भूतल को प्रकाशित कर देती है। सारी दुनिया आशा पर चलती है। यदि उसमे प्रकाश की एक किरण भी मिल गयी हो। सचमुच सारे संसार म आकाश पाताल जहाँ पर भी अंधकार है सारा का सारा अंधकार दूर हो जायगा। वास्तव म सारी दुनिया आशा पर ही चलती है। आशा पर ही टिकी हुई है।

मन को आशा से हरा भरा रखो से बढ़ कर ऊँचा उठाने वाली अन्य कोई आदत नहीं है। अच्छे उद्देश्यों की प्राप्ति के दृढ़ आत्म विश्वास म अद्भुत शक्ति छिपी है। शास्त्रों का निष्कर्ष है कि मन एव मनुष्याणां कारण बन्ध मोक्षयो मनुष्यो के लिये अपना मन ही मुक्ति और बन्धन का कारण है।

जहाँ तक मेरा अनुभव है वहाँ तक मेरी आत्मा यही कहती है कि

आप अपने अन्दर विश्वास रख कि मै एक आशावादी हूँ कर्मठ हूँ मै विजयी हूँ मै सफलता प्राप्त करके रहूँगा। मै सफल होकर ही रहूगा असफल नही होऊँगा मै अवश्य प्रसन्न रहूँगा दु खी और उदास नही रहूगा। अपना उद्धार अपने हाथो मे है। जो इस प्रकार का विश्वास रखता है उसका कभी पतन नही होता। गीता का चिर उद्घोष है कि--

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन ।।

मतलब साफ है। यहाँ पर एक मजदूर लोग उपस्थित है जो गीता के समर्थक है। इसलिये उन्हे यह श्लोक भी ध्यान मे होगा। मतलब यह है कि अपने मे ही अपना उद्धार करो। अपने को कभी निराश और उदास नही रखना चाहिये। अपना सबसे बडा मित्र और सबसे बडा शत्रु आप स्वय है। अपनी अच्छी इच्छाओ को कभी आप मन्द न होने दे।

आशा के दीपक को कभी बुझने न दे अन्यथा जीवन तिमिराच्छादित हो जायेगा, भटक जायगा अन्धी गलियो मे। यदि इच्छा को आशा को निरन्तर मन मे दुहराया जाये उसे दृढ बलवती और पुष्ट बनाने की प्रक्रिया जारी रखी जाये तो व्यक्ति के व्यक्तित्व को उसकी कार्यशक्ति को बल मिलेगा और उसे अपना उद्देश्य प्राप्त करने मे अवश्य सफलता मिलेगी। अपने मन मे कभी हीन भावना नही आनी देनी चाहिये। मन को कभी पतन की ओर नही जाने देना चाहिये। उस ऊचे आदर्शो के प्रति उस जाकर महत् की प्राप्ति मे लगाकर अपने को हमेशा उत्तम भावनाओ से युक्त रखना चाहिये। मन मे सच यह विश्वास रखना चाहिये कि मै उत्तम की ओर बढता जा रहा हूँ। निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर हू। किसी उत्कृष्ट रचना या श्रेष्ठ निर्माण मे संलग्न होता जा रहा हू। यदि अपना सपना पूर्ण होता न दिखाई दे तो उससे घबडाना नही चाहिये। देखना यह चाहिये कि कार्य साकार होने के प्रयत्न मे कहा क्या त्रुटि कहा कमी रह गई है उस ओर ध्यान देना चाहिये। उन त्रुटियो को दूर करना ही सफलता हमारे चरण चूमेगी।

यहाँ पर बहुत सारे व्यक्ति बैठे है [illegible] इतिहास [illegible] जानकर बैठे है। आपको इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना [illegible] गोरी की [illegible] पृथ्वीराज को पराजित करना [illegible] बार [illegible] [illegible] और सत्तरह बार [illegible] किन्तु [illegible] पर [illegible] सफलता [illegible] [illegible]

गुफा मे आत्महत्या के लिए घुसा। इसी बीच उसकी दृष्टि अपने जाल तक पहुँचने के लिए प्रयत्न करती हुई मकड़ी पर पड़ी। वह गौर से उसे देखने लगा। और गिरने पर भी सतरहवी बार के प्रयास मे सफल हो गई और वह अपने जाल तक पहुँच गई। मुहम्मद गोरी के लिए यह घटना अत्यन्त प्रेरणादायक हुई। उसने सोचा कि जब एक क्षुद्र कीट के मन मे निराशा का भाव नही जगा है तो मै तो मानव हूँ! क्या सतरहवी बार के प्रयास में सफल नही हो सकता? तदनुसार आत्महत्या से वह विरत हो गया और पुन उसने प्रयत्न किया। अपनी कमजोरियो और कमियो को दूर किया और दुगुने साहस एव उत्साह से आक्रमण किया। उसे अपने प्रयास मे सफलता मिल ही गई।

इसलिए निराशा को तिलांजलि दे। आशा को अपने जीवन की वाटिका मे कल्पवृक्ष की तरह रोप दे। आशावाद की अग्नि पर निराशा के कचरे को बिल्कुल जला डाले। आशावाद प्राण है। अपने भीतर प्राणो की प्रतिष्ठा करे। जिस प्रकार सूर्योदय होता है तो वनस्पतियो को प्राण मिल जाता है व खिल जाती है। ठीक उसी प्रकार से हमारे मन म आशावाद का सूर्योदय होता है तो हमारे जीवन की आशाएँ ठीक उसी प्रकार से फलीभूत होती है विकसित होती है जिस प्रकार सूर्योदय होने से वनस्पतियाँ खिल जाती है।

> सूर्य किरण बन जाओ हे कवि!
> खारे जल से अमृत खींचो।
> भवसागर दुख खार कणों से,
> आशा वर्षा कर जग सींचो॥

कवि का कथन है वाटर मार्यशिल। खारे समुद्र से मधुरता लो और ममता के माध्यम के द्वारा आशा का जल बरसाओ विश्व को सिंचित करो।

निज पर शासन फिर अनुशासन

आज का प्रवचन आपकी पसन्द है। प्रवचन का विषय भी आपका अनुरोध भी आपका। आप लोगो की 'अनुशासन' पर सुनने की उत्कण्ठा है। बात सही है, उत्कण्ठा स्वाभाविक है। अनुशासन हर क्षेत्र से जुडा है। पैदा होने के बाद जब तक मरते नही है तब तक अनुशासन से छुटकारा नही। हम जन्मे, माता पिता के अनुशासन मे बड़े हुए। शिक्षालय गए शिक्षको के अनुशासन मे रहना पड़ा। नौकरी की मालिक के अनुशासन म रहे। इतने समय तक तो अनुशासित रहे। अब क्रम उल्टा चलेगा। अब हम अनुशासक बने। पहले प्रजा थे अब राजा बने। पहले बीज थे अब वृक्ष बने। विवाह हुआ पत्नी के अनुशासक बने बच्चो के अनुशासक बने। अनुशासित या अनुशासक कोई भी रूप हो अनुशासन हमारे जीवन का धर्म है।

'अनुशासन' मुझे भी बहुत प्रिय लगता है। यह शब्द मरा हुआ शव नही है जिन्दा है। प्राण फूँके है शब्द रचयिता ने। फिर उस प्राणदाता का नाम हम चाहे जो कहे प्रकृति, ईश्वर, पाणिनी हेमचन्द्र। उससे मुझे कोई विरोध नही है। किन्तु इतना निश्चित है कि यह जीवन्त है।

अनुशासन शब्द की निष्पत्ति भी कम मधुर नही है। इस शब्द की निष्पत्ति 'अनु' उपसर्ग पूर्वक 'शास्' धातु से हुई है। उपसर्ग भी श्रेष्ठ और धातु भी श्रेष्ठ। सुनने मे भी कर्णप्रिय है। वैदिको का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है तैतिरीयोपनिषद् महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमे अनुशासन की व्याख्या ईश्वर वचन स्वरूप की गई है। अत इस शब्द की मूल्यवत्ता आप सब सहजत समझ सकते हैं। जिस शब्द को ईश्वर का वचन कहा जाता है वह शब्द तो शब्द-कोष का हीरा है, कोहिनूर हीरा।

इसीलिए अनुशासन बडा अच्छा शब्द है। यह जैसे आपको प्रिय है वैसे ही मुझे भी। राजनेताओ को तो सबमे ज्यादा प्रिय है। धर्मनेताओ की तो पूछो ही मत। राजनेता यानी शासक-वर्ग और धर्म-नेता

[illegible]

आरोपण है। गोद तो बाँझ भी ले सकती है मगर मातृत्व और गर्भ धारण की बात कहाँ है उसमे? बेटे मे माँ का ही खून होता है बाँझ का नहीं। जैसे गर्भधारण कर माँ बनना और उससे पुत्र की प्रसूति होना श्रेष्ठ है, वैसे ही अनुशासन के सम्बन्ध मे है।

पहले अनुशासन मे तो शासक भी श्रेष्ठ और शासित भी श्रेष्ठ—दोनो श्रेष्ठ है मगर दूसरे वाले अनुशासन मे श्रेष्ठता की वह गरिमा कहाँ? जैसे द्रोणाचार्य शासक और एकलव्य शासित, कृष्ण शासक और अर्जुन शासित राम शासक और लक्ष्मण भरत अनुशासित महावीर शासक और गौतम शासित बुद्ध शासक और आनन्द शासित। इस ढग के तो शासक भी अच्छे और शासित भी अच्छे। दोनो की महिमा है। दोनो की गरिमा है। इसमे तो बडो को भी वही सम्मान और छोटो को भी वही सम्मान। वस्तुत अनुशासन के बल पर छोटे ने भी अपने को बडे जैसा योग्य बना लिया है। अत हम लोग दोनो की गौरव गाथा गाते हैं। विश्व विकास राष्ट्र उत्थान ऐसे शासन-अनुशासन से ही सम्भव है।

कैदी गुलाम नौकर ये सब दूसरे ढग के अनुशासित है। कैदी न्यायाधीश और जेलर से अनुशासित है। गुलाम तथा नौकर मालिक से अनुशासित है।

पहले अनुशासन मे शासित का शासक के प्रति आदर होता है और श्रद्धा होती है। जबकि दूसरे मे शासित मजबूर होता है शासक से शासित होने मे। भीतर मे उसके विद्रोह के अगारे धधकते है उस शासक के प्रति। आप देखते है कि एक तो है वैवाहिक सम्बन्ध और एक है बलात्कार । पशु हमेशा बलात्कार करते है। उनका विवाह नही होता। और मनुष्य जाति मे

विवाह होता है। जो मनुष्य होकर बलात्कार करता है वह मनुष्यत्व को कलंकित करता है। मनुष्य होकर भी वह निम्नतम पशु है। कितना फर्क हुआ दोनो मे। एक म स्वाभाविकता ओर समर्पण भावना है और दूसरे मे जोर-जबर्दस्ती। एक मे मानवीय प्रकृति है और दूसरे म पाशविक प्रवृत्ति है। जैसे शेर को देखकर अन्य जानवर घबरा जाते है थर थर काँपने लगते हैं और जैसे हमारे सामने बन्दूक लेकर कोई डाकू आ जाए तो हमारे छक्के छूट जाते हैं और जैसा वह कहता है वैसा ही करना पडता है वैसे ही दूसरा अनुशासन है। मात्र एक बलात् आरोपण है वह। बस इसके अलावा कुछ नही।

पहला तो नम्रता और आत्म सयम से युक्त है। उसका अपना आदर्श है, आदर्श की भूमिका है। दूसरा तो दु ख और दीनता से भरा है लोभ और भय क कारण है और व्यक्ति अनिच्छापूर्वक उसका पालन करता है। दासता की समस्या और परतन्त्रता की समस्या इसी से सभव है पहले से कभी नही।

आजकल तो बलात् आरोपित अनुशासन का बोलबाला है। ऐसे अनुशासन को तो अनुशासन कहने की इच्छा भी नही होती। यह कोई अनुशासन थोड़े ही है एक तरह का भ्रष्टाचार है दुराचार है। इससे हानि ही हानि हुई है नुकसान ही नुकसान।

हम अपन राष्ट्र की ओर जब नजर डालते है तो लगता है कि आज सारे भारतवर्ष म अनुशासन हीनता का दौरा है। चारो ओर अनुशासन हीनता ही व्याप्त है। कही तोड़ फोड हो रही है तो कही आगजनी के विध्वसक रूप हमारे सामने प्रस्तुत हो रहे है। कही प्रस्ताव पास किये जाते है तो कही रोष प्रकट होता है। कही छोटी मोटी बातो को लेकर शिक्षकों और अधिकारियों के पुतले जलाये जाते है तो कही पर जलसे जुलूस निकाले जाते है। कही पर दिन-दहाडे ही हत्याएँ हो जाती है और हत्यारो को पकड भी नही पाते तो कही पर दिन दहाड़ ही द्रौपदियो का चीर हरण होता है और उनका कोई रक्षा-कवच कृष्ण दिखाई नही देता। तो कही हजारो हजार स्त्रियो को दहेज के पीछे जिन्दा जला दिया जाता है किन्तु जलानेवालो म से कितने व्यक्तियो को फाँसी मिलती है।

लोग सोचते थे कि भारत जब स्वतन्त्र होगा तब प्रगति के पथ पर चलेगा। जो अशान्ति है वह मिट जायेगी। जो अनुशासनहीनता और बलात् आरोपित अनुशासनशीलता है वह हट जायेगी। लेकिन स्वतन्त्रता-प्राप्ति के

गा कार्य ति इन उनके विपरीत ही हुआ। अनुशासनहीनता मिटी नहीं अपितु शत गुणी बढ़ी ही है।

भारत म आज जितनी अनुशासनहीनता है दुनिया म शायद ही ऐसा कोई देश या राष्ट्र होगा जि जिसम उतनी अनुशासनहीनता हो। यहाँ हाट मे कोई आदमी आपको ईमानदार नहीं मिलेगा। इसीलिए यदि कोई आदमी ईमानदार दिखाई देता है तो उसका फोटो अखबारा म छापा जाता है। सौ नेईमानों म एक ईमानदार मिल जाये तो सौभाग्य समझो। इसी तरह कोई सत्य बोलने वाला नहीं मिलेगा। कोर्ट-कचहरी म तो स्पष्ट है कि दो म से एक पक्ष झूठा होता है। और कभी कभी तो दोनों पक्ष झूठे साबित हो जाते है। इसीलिए तो कहते है कि दुनिया म सब जगह सूखी लकड़ी जलती है मगर कचहरियों म गीली लकड़ी भी जलती है। यानी वहाँ सच्चे भी झूठे हो जाते है और झूठे भी सच्चे। जैसे आजकल बिना पानी या मिलावट का दूध मिलना कठिन हो गया है, वैसा ही सत्य के साथ है। झूठ की मिलावट है सत्य के साथ। इसी प्रकार चोरी है। प्राय हर इन्सान चोर बना हुआ है। कोई छोटा चोर तो कोई बडा चोर कोई प्रगट तो कोई अप्रगट। दूसरे देशो पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो वहाँ पर धर्म कर्म न होते हुए भी उनका जीवन बडा अनुशासनपूर्ण है। उनका राष्ट्र अनुशासनपूर्ण है। मेरे पास जो भारतीय विदशों से आते हैं। वे मुझे बताते है कि विदेशो म हम सुखी हैं। कारण वहा सबकुछ व्यवस्थित है। यदि हम अपना कैमरा भूल गये किसी टैक्सी म और उस कैमरे पर हमारा पता लिखा है तो हम चिन्ता नहीं टैक्सी चालक अपने आप हमारे घर पहुँचा देगा। समय की भी पाबन्दी है। यानी कि बडा अनुशासन है वहाँ। और जहाँ अनुशासन की अनुगूज है, वहाँ कष्ट कैसा?

भारत की स्वतन्त्रता के बाद जो देश स्वतन्त्र हुए थे वे भी आज भारत से आगे है। द्वितीय विश्वयुद्ध मे जो देश समाप्तप्राय हो गये थे वे देश आज इतने विकसित हो गये है कि उनकी होड़ लेनेवाला कोई नहीं है। जापान आज कितना विकासशील है, सब जानते है। मै कई बार जापानी बौद्ध भिक्षुओं से, और वहाँ के नागरिक लोगो से मिला, मुझे लगा कि उनम से हरेक इन्सान के रोम रोम म अनुशासन है। उनका सतत चिन्तन यही है कि हम अपना विकास कैसे करे और हमारा राष्ट्र कैसे समुन्नत हो। उनके रक्त की हर बूँद म यही भावना भरी है।

अनुशासन हीनता भारत म बहुत ज्यादा महसूस होती है। यह तो

थोड़ी सी भारतीय मनीषियो की देन ही समझिये कि उन्होने भारतीयो के भीतर थोड़ा सा पाप का डर भर दिया। बस इसलिए थोड़ी बहुत अनुशासनशीलता बची हुई है। वरना यहाँ वाले लोग तो अनुशासनहीनता मे ऐसा प्रवेश करते कि दुनिया चकित रह जाती। कारण यहाँ सिकन्दर नेपोलियन चगेज खाँ नादिरशाह और हिटलर जैसे महत्त्वाकाक्षावाले लोग भरे पडे है। आखिर इसका क्या कारण है कि इतनी अनुशासनहीनता बनी हुई है? क्या कारण है कि हमारा देश हमारा राष्ट्र दूसरे राष्ट्रो से पिछड़ा हुआ है?

भारत म इन सबके समाधान के लिए हजारो सस्थाएँ, हजारो सेवासघ, समितियाँ बनी हैं। इन सबका एक ही लक्ष्य है कि हमारा समाज कैसे बढे राष्ट्र का विकास कैसे हो शासन कैसे सुव्यवस्थित बने। सभी का यही एकमात्र मूलभूत उद्देश्य है। मेरा विचार है कि इन सारी सस्थाओ और समितियो को अपेक्षित सफलता इसलिए नही मिल रही है क्योकि वे समाज को सुधारना चाहते हैं खुद सुधरना नही चाहते। यह रास्ता गलत है। फिर एक साथ सौवी सीढ़ी पर चढ़ना भी तो मुश्किल है। जो छलाग लगाते है बीच मे ही धोखा खा जाते है। पैर की हड्डी टूट जाती है यानी सस्था असफल हो जाती है। आखिर हम कोई बन्दर तो है नही जो लम्बी छलाँग लगाये। सफलता क्रमिक यात्रा है। एक एक कदम एक एक सीढ़ी। कार्य समयसाध्य है श्रमसाध्य है, पर स्थायी है। ओस बिन्दुओ की तरह इसका जीवन नही होगा सच्चे मोती की तरह होगा।

राष्ट्र विकसित तभी होगा जब हर व्यक्ति का जीवन विकसित होगा। राष्ट्र का मतलब भवनो का या राज्यो का समूह नही है। राष्ट्र है व्यक्तियो का समूह समाज का समूह। जैसे पर्वत की सबसे छोटी इकाई बालूकण है, सिन्धु की सबसे छोटी इकाई बिन्दु है। वैसे ही राष्ट्र/समाज की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति है। व्यक्ति व्यक्ति मिलकर समाज बनता है। गाँव गाँव मिलकर शहर बनता है। शहर शहर मिलकर प्रान्त बनता है। प्रान्तो के परस्पर मिलने पर राष्ट्र बनता है। राष्ट्रो का समुदाय ही विश्व है। सारे विश्व का मूल व्यक्ति है। व्यष्टि मे समष्टि समाहित है। ठीक वैसे ही जैसे छोटे से बीज मे विशाल वृक्ष का भविष्य निहित होता है। कलकत्ता के बोटानिकल गार्डन मे जो वट-वृक्ष है कितना बड़ा है वह। ससार का सबसे बडा पेड़ है वह। एक पेड की इतनी शाखाएँ फैली है कि एक साथ दस हजार घोड़े बाधे जा सकते हैं। उस वृक्ष की डालियाँ, पत्ते फूल फल इन

सबको परिवार समाज शहर प्रान्त और राष्ट्र आदि गणगिये।

इसलिये जब व्यक्ति के जीवन का विकास होगा, तो परिवार के जीवन का विकास होगा। वह स्वय अनुशासित रहेगा तो सारा परिवार अनुशासित रहेगा। जब परिवार सुधरेगे तो मुहल्ला सुधरेगा। जब मुहल्ला तब गाँव जब गाँव तब शहर जब शहर तब राज्य, जब राज्य तब राष्ट्र और जब राष्ट्र तब विश्व। एक से एक आगे से आगे सुधरते रहगे। अनुशासित होते रहगे। प्रभावना इसी का नाम है। इस पद्धति को भगवान् महावीर ने प्रभावना नाम दिया है। ध्वनि विज्ञान के अनुसार जैस ध्वनि आगे से आगे बढ़ती है यह वैसी ही प्रक्रिया है इसलिए यह अवैज्ञानिक नही है, वैज्ञानिक है अतार्किक नही तार्किक है।

तो हम अनुशासन को सर्वप्रथम व्यक्ति से जोडे। क्योकि अनुशासनहीनता हर व्यक्ति के रोम रोम म समायी हुई है। क्रान्ति की जरूरत है हर व्यक्ति म, हर जीवन मे। जीवन के प्रत्यक क्षेत्र मे अनुशासन की जरूरत है। और, बहुत ज्यादा जरूरत है। बिना अनुशासन के कही भी और कभी भी सफलता की सम्भावना नही की जा सकती। फिर चाहे वैयक्तिक जीवन हो चाहे सार्वजनिक। बिना अनुशासन के कोई भी व्यवस्था का सचालन नहीं हो सकता। देश वही उन्नत हो सकता है जिसकी प्रजा और जिसका राजा या मुखिया दोनो अनुशासन के पालक हो। यदि ऐसा नही है तो हमारी भावी पीढ़ी भी अनुशासनहीन होगी। कैक्टर के बीज से गुलाब की सम्भावना भी तो कैसे की जा सकती है? जब किसी का पिता अनुशासन मे नही है तो उसका पुत्र अनुशासनहीन हो इसम कौन सी नई बात है। यह बात तो परम्परागत है।

मैने सुना है कि एक व्यक्ति के घर मे बाहर से कोई आदमी आया। बाहर दरवाजे पर खडे होकर उसने घटी बजायी, भीतर से एक बच्चे न दरवाजा खोला तो उस आदमी ने पूछा कि क्या तुम्हारे पिता घर मे है? लड़के न कहा कि म घर म जाकर देखकर आता हूँ। लडका घर म गया और पिता से कहा कि बाहर एक महोदय आये है। आपके बारे मे पूछ रहे है। पिता बोले उन्हे जाकर कह दो कि पिताजी घर मे नही हैं। लडका वापस आया घर के बाहर और आगन्तुक से बोला, माफ कीजिये साहब! पिताजी कहते हैं कि मै आपको जा कर बोल दूँ कि पिताजी घर मे नही हैं। इसलिए पिताजी के कथनानुसार पिताजी घर मे नही है।

जब पिता स्वय ऐसी अनुशासनहीनता सिखलाता है स्वय के आचरण

के द्वारा ऐसा उपदेश दे रहा है तो उसके पुत्र के द्वारा आखिर कैसी सम्भावना की जा सकती है? और यदि हर बच्चा बिल्कुल सत्यवादी निकल जाये और बाहर जाकर यही कहे कि पिताजी ने मुझे कहा है कि बाहर जाकर बोल दे कि पिताजी घर मे नही है तो बिचारे की खटिया खडी कर दे पिता। उसका घर मे रहना मुश्किल हो जाये। बच्चा झूठा नही है, मगर घर का माहौल उसे झूठा बनने की शिक्षा देता है।

यही तो मूल कारण है जिससे आज चारो तरफ अनुशासनहीनता व्याप्त है। प्राय हर घर म अनुशासनहीनता है हर विद्यार्थी मे अनुशासनहीनता है। आज ऐसा विद्यार्थी हमे दिखाई नही देगा जैसा था एकलव्य। एक भी नही मिलेगा। ढूँढलो चाहे जितना। भला पाऊडर के दूध म से मक्खन कैसे निकलेगा? अब वह एकलव्य कहाँ मिलेगा जो गुरु द्रोणाचार्य को गुरु दक्षिणा मे अँगूठा काटकर दे दे। आज के जितने भी विद्यार्थी है वे अगूठा कभी नही देगे। अगूठा न दिखाये तभी तक त्राण समझिये। आज के विद्यार्थी एकलव्य जैसे अँगूठा देते नही द्रोणाचार्य जैसे गुरूओ को अगूठा दिखाते है।

इस अनुशासनहीनता का श्रेय अभिभावको को है। अनुशासन की शिक्षा हमे अपने घर से ही अभिभावको द्वारा और विद्यालय मे अध्यापको के द्वारा मिलने लग जाये तो भविष्य का जीवन सही होगा विशृंखलित नही होगा अव्यवस्थित नही होगा। मै देखता हूँ कि लोग अनुशासन का सम्बन्ध ज्यादातर सैनिको से जोडते है। हालाँकि वह सही है। इसीलिए जब अनुशासन के सम्बन्ध मे आदर्श उदाहरण देना हो तो कहा जाता है मिल्ट्री इन्स्ट्रक्शन' यानी सैनिक-अनुशासन। लेकिन अनुशासन सभी के लिए अनिवार्य है। इन नन्हे मुन्ने बच्चो के लिए तो अनुशासन की महती आवश्यकता है। ये बच्चे ही तो भावी विश्व के कर्णधार है। विश्वविकास के भाग्यविधाता बच्चे ही है। इसलिए इनके हित के लिए आत्महित के लिए लोक कल्याण के लिए भावी पीढी के लिए आदर्श सस्थापित करने के लिए अनुशासन कितना जरूरी है इसे आप सब तो क्या गँवार भी आज समझ सकता है।

जिसके जीवन मे अनुशासन नही है जिसके घर मे अनुशासन नही है वह अपने बुजुर्गों का अपने गुरुओ का अनादर कर देता है। माँ बाप भाई से लडाई कर बैठता है शादी होते ही माँ बाप से अलग घर बसा लेता है। यानी स्वेच्छाचारिता को वह बढोतरी देता है। यहाँ पर इतने सारे वृद्धजन विराजमान हैं, किसी से भी यह शिकायत सुनी जा सकती है। सब लोग

यही चाहते है कि हम सब एक हो मिलकर रहे, अनुशासनापूर्ण जीये। किन्तु एक बात और है और वह यह कि लोग केवल एकता का ढिंढोरा पीटते है। ढिंढोरा पीटते है मैने कहा। इसका मतलब यह है कि लोग एकता एकता केवल चिल्लाते है एकता के सूत्र मे बँधते कोई नही। बन्धन अप्रिय है। सब स्वाधीन रहना चाहते है। एकता मे आते ही अनुशासन आ जायेगा। और यह किसी को झट से पसन्द नही है कि हम अनुशासित रहे। एकता को क्रियान्वित करना है तो अनुशासन सर्वप्रथम अपेक्षित है। अत हम अनुशासन की यात्रा प्रारभ करे। मगर एक बात ध्यान रख कि यात्रा की शुरूआत अपने ही घर से हो अपने घरवालो की शुभकामनाओ के साथ हो। यानी पहले निज पर शासन करो फिर दूसरो पर अनुशासन। अपनी भाषा म कहूँ तो आत्मानुशासन सर्वप्रथम हो।

यात्रा दूसरे के घर से कभी शुरु न करे। यात्रा हो अपने घर से प्रारम्भ। अनुशासन हो स्वय पर। दूसरे से जुडे कि अपने से हटे। और, जो अपने से जुडा है वह कही से विछुडा नही है। आरोहण स्व का स्व पर हो पर का बेकार है। खर्चा करने से पहले अपनी जेब को टटोल ले। कही ऐसा न हो कि खर्चा कर दिया और जब पैसे चुकाने के लिए जेब मे हाथ डाले तो जेब कटी मिले पैसा नही हो। बेइज्जती हो जाएगी ऐसे तो।

इसीलिए तो जो भारतीय साधु लोग विदेशो मे धर्मप्रचार करने के लिए जाते है उनके लिए यहाँ के लोग कहते है कि पहले अपने देश को तो सुधार लो बाद मे कही और जाना। खुद का भाई तो भूखे मर रहा है और दुनिया भर को बड़े बड़े दान देते हो ताकि नाम हो। इसका मतलब यह नही कि मै यह कहना चाहता हूँ कि विदेशो म धर्मप्रचारार्थ साधुओ का जाना गलत काम है। वह भी जरूरी है। भारत का कोई ठेका थोड़े ही है कि जो उसका अकेल उपयोग करे। बौद्ध भिक्षु आनन्द भी तो गया था। विवेकानन्द सुशीलमुनि बहुत से साधु लोग गये और जा भी रहे है किन्तु पहले निज को भी सम्भालना जरूरी है। भिक्षु आनन्द जैसे आत्मानुशास्ता लोग कही जाएँगे धर्म प्रचार प्रसार होगा। विवेकानन्द गये सदाचार और सद्विचार की गंगा यमुना बहायी। जैनधर्म भी यह कार्य करने की प्रेरणा देता है। उत्तराध्ययनसूत्र म मैने पढ़ा है कि महावीर ने गौतम को कहा था कि हे गौतम। क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर। प्रबुद्ध तथा उपशान्त होकर संयतभाव से ग्राम और नगर मे सब जगह विचरण कर। शान्ति का मार्ग बढ़ा।

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे गाम गए नगरे व संजए।
संतिमग्ग च बूहए समय गोयम मा पमायए।।

आजकल मैं देखता हूँ कि बाहर देशो मे जानेवाले अनेक साधु सन्त लोग आत्म च्युत है। मात्र लोकैषणा है कि मेरी ख्याति ससार भर मे हो। मैं केवल एक-आध देश का अनुशास्ता नहीं अपितु सारे ससार का अनुशास्ता बनूँ। सब लोग मेरे अनुयायी बने। वह एक तरह की राजनीति मे प्रविष्ट हो जाता है और धर्मनीति से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। फलत जो साधु दुनिया भर को अनुशासित करना चाहता है वह स्वय पूंजीपतियो राजनेताओ वगैरह से पराधीन और अनुशासित हो जाता है।

दिल्ली की एक बात मुझे याद है। हमारे पास एक योगीराज पधारे थे। बड़ी अच्छी कीर्ति थी उनकी। बड़े बड़े देशी विदेशी राजनेताओ आदि तक उनकी पहुंच थी और अच्छा सम्पर्क था। उनके साथ उनका एक सचिव भी था। बातचीत हुई योगासन आदि के सम्बन्ध मे। उन्होने मुझे भी कई तरह के नये नये आसन बतलाए। जब वे जाने लगे तो मैंने उनसे निवेदन किया कि अब पुन आप कब पधारेंगे? ऐसा कहते ही एक मिनिट वे रुक गये। मैंने फिर कहा कि क्या बात है कोई दिक्कत है क्या? उन्होने कहा दिक्कत यह है कि मै पैसे को छूता नहीं हूँ। मेरे सारे पैसे मेरे सचिव के पास रहते हैं। वह आ सकेगा या नहीं यह उससे पूछकर बता सकता हूँ। चूकि उनके सचिव नीचे चले गये थे कार मे बैठ गये थे मैंने आखिर उनसे कह दिया कि यह बात तो जची नहीं। आपने सचिव के पास पैसे रखकर स्वय को उसके पराधीन बना लिया है आप उससे अनुशासित हो गये। अच्छा होता इससे तो आप स्वय पैसे रख लेते। चोर के द्वारा कोतवाल को डाँटने की बात हो गयी यह तो। मैंने मन मे सोचा कि दुनिया मे मालिक नौकर तो बहुत है किन्तु यहाँ तो उल्टी रीत है कि मालिक नौकर का नौकर है, एक तरह का गुलाम।

प्राय यही देखा जाता है कि हर आदमी दूसरो से अनुशासित है। पुत्र पिता से अनुशासित है। नौकर सेठ से अनुशासित है। पत्नी पति से अनुशासित है। जैसे शोषक और शोषित दो होते हैं वैसे ही अनुशासक और अनुशासित दो हो गये। इसान इन्ही दो रूपो मे विभक्त हो गया है। बँटवारा हो गया ससार का इन दो भागो मे अनुशासक और अनुशासित मे। जो पति अपनी पत्नी को अनुशासित रखना चाहता है उस पति को भी किसी के आगे जाकर अनुशासित होना पड़ता है। प्रत्येक आदमी चाहता है

यह सघ म अनुशासन को प्रतिष्ठित कर पाता है। उसे तो जलाने होते हैं दीप से दीप को। समणसुत्त' म एक गाथा है

जह दीवा दीवसय पइप्पए सो य दिप्पए दीवो।
दीवसमा आयरिया दिप्पंति पर च दीवेति।।

कहा है कि दीवसमा आयरिया—दीपसमा आचार्या — यह बात जिस भी व्यक्ति ने कही है वह व्यक्ति सच्चे अर्थों म महिमामडित रहा होगा। ऐसी वाणी वक्ता और श्रोता दोनो को प्रभावित करती है। यह वाणी निज पर शासन फिर अनुशासन की भावना से ओतप्रोत है।

देखिये यह बात बिल्कुल सत्य है कि मात्र सत्य का आचरण और आचरित सत्य का ज्ञान दोनो जरूरी है। मै जो कहना चाहता हूँ, वह मेरे आचरण म हो तभी प्रभावना होगी। कोई व्यक्ति डूब रहा है। मैं लोगो को कहता हूँ कि बिचारा डूब रहा है उसे बचाओ। कौन कूदेगा पानी म? इसी जगह पर मै स्वय पानी मे कूद जाऊँ तो मेरे साथ और भी लोग कूद जायगे। अब जैसे इस जैन भवन मे झाडू लगाना है। किसी को कह दूँ तो शायद वह सकोच कर जाए। जाएगा नौकर को बुलाने। मगर जब मुझे खुद झाडू लगाते देख ले तो दौड़ा दौड़ा आयेगा।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का इतिहास कहता है कि उसके सस्थापक हुए मदनमोहन मालवीय। एक बार उन्होने देखा कि विश्वविद्यालय के एक कम्पाउण्ड म काफी कचरा पड़ा है। उस कम्पाउण्ड म से बहुत से छात्र अध्यापक और कर्मचारी जा आ रहे है। कुछेक लोगो ने तो कहा कि विश्वविद्यालय की व्यवस्था ठीक नहीं है। इतनी गन्दगी पड़ी है। अकस्मात् उधर स कुलपति पण्डित मदनमोहन मालवीय भी गुजरे। उन्होने वह कचरा देखा। कोने म एक झाडू पड़ा था उन्होने झाडू उठाया और बुहारी निकालने लगे। एक कुलपति को झाडू निकालते देख सारे कर्मचारी अध्यापक दौड़े आए और देखते देखते ही सब लोगो ने स्थान स्वच्छ कर दिया।

अब आप देखिये कि कुलपति ने किसी को कहा नहीं किन्तु सिर्फ कर्म सेवा भाड़ लगाने जैसा कार्य कर दिया। यह है स्वशासित की प्रभावना। और ऐसे अनुशासक से अनुशासित होने म भी एक मजा है विकास का आधार है। तभी तो उस विश्वविद्यालय ने आशातीत विकास किया।

हमारे आचरण की पवित्रता ही दूसरो को कुछ सिखा सकती है। मगर अफसोस है कि भीतर म न तो आचरण की पवित्रता है और न अनुशासन की निष्ठा। और बिना अनुशासन के व्यक्ति चाहे जितने भाषण

लोक न और परलोक मे ऐसा नगर सुखी होता है।

महावीर के समय के जीवन को देख लीजिये। जब उन्होने अभिनिष्क्रमण किया वे एक राजकुमार थे उनके पास शासन था, वे शासक थे। लेकिन उन्होंने पाया कि जब तक स्व का स्व पर शासन नहीं हुआ है, तब तक वे सच्चे शासक सच्चे शास्ता हुए ही नहीं।

अलबर्ट आइन्स्टीन के बारे मे कहा जाता है कि जब आइन्स्टीन मर रहे थे तब लोगो ने देखा कि आइन्स्टीन को जीवन का प्रायश्चित है। आइन्स्टीन ने कहा है कि मैने इतने सारे आविष्कार किये लेकिन उस तत्त्व का मै आविष्कार नहीं कर पाया जिसके निकल जाने पर मै मर जाऊँगा। ओह! परम सत्य तो अन्धेरे मे रह गया। आत्मा खो गयी, शरीर रह गया। निधि गायब हो गई थकर रह गये।

इसीलिए मै तो यही कहता हूँ कि जब तक व्यक्ति स्वय का अनुशास्ता स्वय का आविष्कारक नहीं हुआ तब तक वह चाहे जिसका अनुशासक और आविष्कारक बन जाये, कोई लाभ नहीं होगा अन्त मे उस अनुशासन उस आविष्कार की निरर्थकता का बोध होगा।

भगवान् महावीर ने बारह वर्ष तक तपस्या की। केवल इसी के लिए कि स्वय का स्वय पर अनुशासन हो, वह साधना पूर्ण हो। भगवान् बुद्ध के पास क्या कमी थी लेकिन फिर भी फक्कड़ आदमी बन गये और निकल गये एकाकी जगल मे। परानुशासन कर सकते थे शक्ति थी राजशाही दोनो के पास थी। यदि वे ऐसा करते तो उन्हे आइन्स्टीन की तरह अन्तत निराशा झेलनी पड़ती। इसीलिए आत्मानुशासन को पाने के लिए ही जगलो मे भटके तपस्या की साधना की।

मूल चीज तो आत्मानुशासन ही है। आत्मानुशासित सबको शासित कर सकता है। चाहे राम हो या कृष्ण हो महावीर हो या बुद्ध हो नानक हो सबको आत्मानुशासन सबसे पहले करना पड़ा। उसी के बाद वे दूसरो को परिवर्तित कर पाए। अपने-अपने मत के प्रवर्तक बने। आचारागसूत्र मे महावीर का अनुभव बताया है और वह यह कि 'जे एग जाणइ से सव्व जाणइ' जो एक को अपने आपको' जानता है वह सबको, सारी दुनिया को जानता है। बहुमूल्यता स्वय की है।

इस अमूल्य नीति को समझो। राजनेता और धर्मनेता मे यही तो अन्तर हो जाता है। राजनेता हमेशा दूसरो पर अनुशासन करना चाहता है। और, इसी चाह से प्रभावित होकर वह चुनाव लड़ता है मत मागता है

अनुशासन एवं नियम भी ढीला नहीं किया।

एक दिन पत्नी ने अपनी पड़ोसिन से पूछा कि वे गुझे जो भी काम कहते है, मै करने के लिए तैयार हूँ। लेकिन वे साथ मे यह भी कह देते है कि यह करो नहीं तो। पड़ोसिन ने कहा कि एक काम करो। अब की बार वे कह कि यह काम करो नहीं तो' तुम पूछ लेना कि नहीं तो क्या होगा।

यही हुआ। पति घर आया। आते ही उसने कहा जल्दी से पानी गरम करो नहीं तो! अब की बार पत्नी ने हिम्मत बटोर ली और साहस करके पूछ लिया कि नहीं तो क्या होगा? पति बोला नहीं तो क्या होगा ठडे पानी मे स्नान कर लूँगा और क्या होगा। इसके अलावा तो और कुछ भी नहीं हो सकता।

उस पति बेचारे ने सोचा भी नही था कि आखिर कोई दिन ऐसा भी आयेगा जिस दिन पत्नी यह भी कह दे नहीं तो क्या होगा। उसने तो अभी तक यही जाना कि पत्नी को अनुशासित रखना है। उसे यह नहीं पता था कि पत्नी यह भी कह सकती है कि तुम्हे भी अनुशासन मे रहना पड़ेगा। भला दोनो पक्ष जब तक परस्पर अनुशासन से युक्त नहीं होंगे तब तक सन्धि कैसे होगी। एक पहिया साइकिल का और दूसरा लगा दो ट्रक का, तब गाडी कैसे चलेगी।

पति चाहता है कि पत्नी मुझसे अनुशासित रहे। पिता चाहता है कि पुत्र मुझसे अनुशासित रहे। मै जैसा कहूँ वह वैसा ही करे। लेकिन जब वही पिता अपने पिता के पास पहुँचता है तो क्या वह उसी ढग से अनुशासित रखता है अपने आप को अपने पिता के सामने जैसा वह अपने पुत्र को अनुशासित रखना चाहता है। जो आदमी दूसरो पर अनुशासन करना चाहता है जब वह किसी दूसरे के द्वारा अनुशासित होता है तो उसे बड़ी तकलीफ होती है।

पति चाहता है कि मेरी पत्नी मुझ से अनुशासित रहे वह उस अनुशासन का यदि सामान्य भी उल्लघन कर देगी तो पति पत्नी का आदर्श उसी समय नष्ट हो जायेगा। पति की अपेक्षा जैसे ही पत्नी के द्वारा उपेक्षित हुई क्रोध आ जायेगा उसे। क्रोध तभी पैदा होता है जब हम दूसरो से जो भी अपेक्षाएँ रखते है व जैसी ही उपेक्षा मे बदली क्रोध की उत्पत्ति हो जाएगी। जैसे पति चाहता है कि मै व्यवसाय से निवृत्त होकर जैसे ही घर पहुँचूँ मेरी पत्नी मेरे स्वागत के लिए मुस्कुराती हुई द्वार पर

समाधि हो गयी।

एक दिन वह फकीर भी उसी मार्ग से गुजरा जिसने वजारे को गधा दिया था। उसने उस कब्र के बारे मे लोगो से चर्चा सुनी तो वह भी कब्र पर झुका। लेकिन जसे ही उसने वहाँ अपने पुरान भक्त का वैठे देखा तो उससे पूछा कि यह कब्र किसकी हे और तू यहाँ क्यो रो रहा है? उस वजारे ने कहा कि अब आपके सामने सत्य को छिपाकर रखने की मेरे पास ताकत नही है अत मारी आपवीती सत्य कथा कह दी फकीर को। वडी हँसी आई फकीर को उसकी वात सुनकर। वजार ने पूछा कि आपको हँसी क्या आई? फकीर बोला कि मै जहाँ रहता हू वहाँ पर भी एक कब्र है जिसे लोग वडी श्रद्धा स पूजते है। आज मै तुम्हे वताता हूँ कि वह कब्र इसी गधे की माँ की हे।

इसी को कहा जाता है अन्ध विश्वास। कुछ लोग अपनी आजीविका के लिए इन अन्ध विश्वासो को धर्म का मुकुट पहना देते है। और इस तरह धर्म के नाम पर अन्धविश्वास वर्धमान होते जाते हे। जब तक ये अन्धविश्वास समाप्त नही होगे तव तक धम का प्रकाश विस्तार नही पा सकता। सचमुच अन्धविश्वास के अन्धियार को दूर करने के लिए विवेकशीलता का चिराग अपेक्षित है।

अन्धा उत्साह आर अन्धा विश्वास दोना विना लगाम के घोडे है। उस घाड पर वैठकर भीड भरे राजपथ पर दौडना खतर स भरा हे।

जो लोग अन्धे को मार्गदर्शक वना लते है व अभीष्ट रास्त से वचित हो जात है। लकीर के फकीर भी अन्धे हाते है। वे दूसरो की आँखो के आश्रित होते है। जानते है आप कि लीक लीक कौन चलता हे? अन्धनिष्ठावान चलता है लीक लीक।

लीक लीक गाडी चले लीक ही चले कपूत।
लीक छोड तीना चल शायर सिंह सपूत।।

अत हमे अन्धविश्वासो को खदेडना है। हमे अनुकरण नही सत्य का अनुसन्धान करना है। लीक लीक नहीं चलना है। मुझे तो अन्धविश्वासो की छाया भी पसन्द नहीं है। मै अन्धविश्वास का भी समर्थक नहीं हूँ। और उस मार्ग को अपनाने वालो को भी मैं अच्छा नही समझता। इसलिए धर्म एव सत्य की स्थापना के लिए अन्धविश्वासो को जड से उखाड फेक देना चाहिए प्रज्ञा के आधार पर।

अन्धविश्वासो की तुम्बी की वेला को तो मूल से ही उखाडा जाता

आचार-व्यवहार हो देशकालानुरूप

प्रश्न है : हमारे आचार व्यवहार हमेशा एक जैसे हों या देश और काल के अनुसार उनमें परिवर्तन कर सकते हैं?

यहूदियों की एक कथा है। एक फकीर था। उसकी एक वजारे ने काफी सेवा की। जिस पर प्रसन्न होकर फकीर ने वजारे को एक गधा भेंट दिया। गधे को पाकर वजारा बड़ा खुश हुआ। गधा स्वामिभक्त था। वह वजारे की सेवा करता और वजारा उसकी। दोनों को एक दूसरे के प्रति बहुत प्रेम हो गया।

एक दिन वजारा माल बेचने के लिए गधे पर बैठकर दूसरे गाँव गया। दुर्भाग्य ऐसा कि गधा मार्ग में ही बीमार हो गया। उसके पेट में इतना दर्द उठा कि वह वहीं पर मर गया। वजारे को अत्यधिक शोक हुआ गधे की मृत्यु पर। उसके लिए गधा क्या मरा कमाकर देने वाला एक [illegible] मर गया। आखिर उसने गधे की कब्र बनायी और कब्र के पास बैठकर दुःख के दो आँसू ढलकाए।

इतने में ही उधर से एक राही गुजरा। उसने सोचा कि अवश्य ही यहाँ कोई न कोई सिद्ध महान् फकीर का निधन हुआ है। श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए वह भी कब्र के पास आया और जेब से दो रुपये निकालकर चढ़ा दिए। वजारा देखता ही रह गया। वह कुछ बोला नहीं लेकिन [illegible] उसे हँसी अवश्य आ गई।

वह राही अगले गाँव में गया और लोगों से उस कब्र का जिक्र किया। ग्रामीण लोग आए। उन्होंने भी यथाशक्ति पैसे चढ़ाए। वजारे के लिए तो यह भी एक तरह का व्यवसाय हो गया। गधा जब जिन्दा था तब इतना कमाकर नहीं देता था जितना कि मरने के बाद दे रहा था।

यह [illegible] लगी। जितने दर्शनार्थी आते कब्र का उतना ही [illegible] होता। और इस तरह गधे की कब्र सिद्ध पहुँचे हुए फकीर की

समाधि हो गयी।

एक दिन वह फकीर भी उसी मार्ग से गुजरा जिसने बनारे को गधा दिया था। उसने उस कब्र के बारे म लोगा से चर्चा सुनी तो वह भी कब्र पर रुका। लेकिन जैसे ही उसने वहाँ अपन पुराने भक्त का बैठ देखा तो उससे पूछा कि यह कब्र किसकी है और तू यहाँ क्या रो रहा है? उस बनारे ने कहा कि अब आपके सामने सत्य को छिपाकर रखने की मेरे पास ताकत नही है अत सारी आपबीती सत्य कथा कह दी फकीर को। बडी हँसी आई फकीर को उसकी बात सुनकर। बजार ने पूछा कि आपको हँसी क्यो आई? फकीर बोला कि मै जहाँ रहता हूँ वहाँ पर भी एक कब्र है जिसे लोग बडी श्रद्धा से पूजत है। आज मै तुम्हे बताता हूँ कि वह कब्र इसी गधे की माँ की है।

इसी को कहा जाता है अन्ध विश्वास। कुछ लोग अपनी आजीविका क लिए इन अन्ध विश्वासो को धर्म का मुकुट पहना देते है। और इस तरह धर्म के नाम पर अन्धविश्वास वर्धमान होते जात है। जब तक ये अन्धविश्वास समाप्त नही होगे तब तक धर्म का प्रकाश विस्तार नही पा सकता। सचमुच अन्धविश्वास के अन्धियार को दूर करने के लिए विवेकशीलता का चिराग अपेक्षित है।

अन्धा उत्साह और अन्धा विश्वास दोनो बिना लगाम के घोडे है। उस घोडे पर बैठकर भीड भरे राजपथ पर दौडना खतरे से भरा है।

जो लोग अन्धे को मार्गदर्शक बना लेत है वे अभीष्ट रास्ते से वचित हो जाते है। लकीर के फकीर भी अन्धे होते हैं। वे दूसरो की आँखो के आश्रित होते है। जानते है आप कि लीक-लीक कौन चलता है? अन्धनिष्ठावान चलता है लीक लीक।

लीक लीक गाडी चले लीक ही चल कपूत।

लीक छोड़ तीनो चले शायर सिह सपूत।।

अत हमे अन्धविश्वासो को खदेड़ना है। हम अनुकरण नही सत्य का अनुसन्धान करना है। लीक लीक नही चलना है। मुझे तो अन्धविश्वासो की छाया भी पसन्द नही है। मैं अन्धविश्वास का भी समर्थक नही हूँ। और उस मार्ग को अपनाने वाले को भी मैं अच्छा नही समझता। इसलिए धर्म एव सत्य की स्थापना क लिए अन्धविश्वासो को जड से उखाड फेक देना चाहिए प्रज्ञा के आधार पर।

अन्धविश्वासो की तुम्बी की बेला को तो मूल से ही उखाडा जाता

समभाय राजा ने भी राजस्थान के उद्धार और मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया है। अब तो और अमूर्तिपूजक साधु साध्वियाँ द्वारा प्रतिष्ठाएँ के मन्दिरों में तीर्थों में स्नात्र पूजा पूजन भी करा जाते हैं। उनका विरोध नहीं है। अच्छी बात है यह। वस्तुत सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता। इतिहास पर लात नहीं मारी जा सकती। एक समय के मूर्ति का समर्थन फिर विरोध और अब वापस समर्थन-यह सब देशकालानुरूप परिवर्तन है।

एक समय था जब कोई साधु लाउडस्पीकर पर बोलता तो समाज में काफी हो हल्ला मच जाता। बड़े बड़े लोग इसका विरोध करते थे। मैंने सुना है कि भीलवाड़ा में जब सुशीलकुमार जी का चातुर्मास था तो वे लाउडस्पीकर पर बोलने लगे। आचार्य तुलसी जी ने इसका विरोध किया। वह एक समय था उस समय उसका प्रचलन नहीं था लेकिन उन्होंने जब इसकी उपयोगिता समझी तो वे सभी बड़े धड़ल्ले के साथ अब लाउडस्पीकर में बोलते हैं।

इसी तरह जैसे सपनों की बोलियाँ होती हैं चैत्यवासियों ने सपनों की बोलियों का प्रचलन किया। इसमें है कुछ भी नहीं। जिस दिन कल्पसूत्र पढ़ते हैं उस दिन न तो सपने दिखाई दिये त्रिशला रानी को और न महावीर का जन्म हुआ। मन्दिर संचालन या मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिए या अन्य कार्यों को दृष्टि में रखते हुए इस प्रथा को उपयोगी समझा गया। लोग कम से कम पर्युषण में अवश्यमेव ही अपने धर्मस्थानों में पहुँचते हैं। अतः मन्दिरों के जीर्णोद्धार इत्यादि कार्य करवाने के लिए इस परम्परा में कुछ न होते हुए भी चालू रखा गया। इसकी उपयोगिता थी इसीलिए चालू रखा गया। आज भी उसकी उपयोगिता है इसीलिए चालू ही रखा जा रहा है।

इस तरह हम कोई भी प्रथा ले लें देश और काल के अनुसार न केवल आचार और व्यवहार में अपितु हर चीज में परिवर्तन आया ही आया है। लेकिन यह परिवर्तन तभी करना चाहिए जब उस परिवर्तन के द्वारा उसका भविष्य कुछ लाभदायक सिद्ध होता हो। केवल नवीनता के आग्रह में अपनी प्राचीन परम्परा को तोड़ देना भी अच्छा नहीं है। पुराना हमेशा कूड़ा कचरा होता है यह बात कहनी भी अच्छी नहीं है। आजकल विज्ञान का पूर्णरूपेण सही कहना यह भी बात अच्छी नहीं है यदि अणुबम या चार सौ बीस टन का एक हाइड्रोजन बम गिर जाय तो जो आदमी विज्ञान का

अच्छा बताते है वे लोग ही भस्म हो जायेगे और शेष लोग विज्ञान का नाम सुनते ही कॉप उठगे।

नवीन चीज हमेशा अच्छी नही होती और पुरानी चीज हमेशा बुरी नही होती लेकिन पुरातन का मोह भी अच्छा नही है और नवीनता का आग्रह भी अच्छा नही होता। एक समय होता है जब वर्षा होती है तो अच्छा लगता है। चारो तरफ अकाल है सूखा पड गया है उस समय यदि वर्षा होती है तो वर्षा उपयोगी है। उस समय वर्षा किस काम की जब चारो तरफ बाढ ही बाढ आयी हुई हो। समय के अनुसार ही वर्षा अच्छी लगती है। होली के दिन लोग रग डालते है। वह होली के दिन ही अच्छा लगता है। दीपावली के दिन उन रगो से सने हुए वस्त्र यदि कोई पहनता है तो वे रग भरे वस्त्र बडे बुरे लगते है। शिव अपने समय म ही कल्याणकारी होता है जब वह बिगड जाता है तो बडा प्रलय मचा देता है। उसका ताडव नृत्य ससार के लिए बडा विनाशकारी हो जाता है। अत देश और काल के अनुरूप ही प्रत्येक चीज म परिवर्तन होता है। देश और काल के अनुरूप ही प्रत्येक कथन म परिवर्तन होता है। यदि परम्परा अच्छी नही है तो उन्हे तोडकर नये को ग्रहण कर लेना चाहिए।

अब बहुत से लोग ऐसे भी है जो नयी चीज अच्छी होते हुए भी नयी चीज को ग्रहण नही करते बस पुराने को ही पकडे रहते है। यह यथार्थत दुराग्रह है। जिस व्यक्ति की आँखो पर दुराग्रह की पटटी बन्धी है उसे वास्तविक तथ्य का सम्यक दर्शन नही हो सकता। इस पट्टी को बाँधकर चलना भूल भुलैया के अन्ध गलियारो मे भटकना है। इसलिए सत्य के राजमार्ग को पाने के लिए उबरना अनिवार्य है। सारहीन का परित्याग करने म उलझन नही होनी चाहिए। जैसे शरीर भोजन लेता है साथ ही उत्सर्ग करता है। अगर ऐसा न हो तो शारीरिक क्रियाएँ नही हो सकती बन्द हो जाएगी। बचपन म जो पैन्ट-कोट पहनते थे उन्ही को सारे जीवन भर नही पहना जा सकता। नया पैन्ट-कोट सिलाना ही पड़ेगा।

नयी चीज अच्छी है तो उसको भी ग्रहण करना पडेगा। नई चीज हमेशा बुरी नही होती उसमे कोई अच्छी बात भी होती है।

वस्तुत हम जिस युग मे पैदा हुए है हमारे लिए तो वही युग सबसे अच्छा है। महावीर स्वामी के लिए उनका अपना युग अच्छा था। हमारे लिए तो वही युग अच्छा है जिस युग म हम जीते है। इसीलिए हम अपने युग पर लाछन नही लगा सकते है। ठीक है महावीर और ऋषभदेव के माता

[illegible] हमारे [illegible] [illegible] हमारे [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] सामायिक के समय।

[illegible] परम्परा को तोड़ा। परम्परा नहीं [illegible] स्तुति नहीं मानते थे। राजेन्द्रसूरि ने तीन थुइ का प्रचलन [illegible] ठीक था [illegible] सीमा तक कि [illegible] देवताओं का आह्वान करना और 'थुइ' [illegible] उच्चारण करना सामायिक जैसी आध्यात्मिक प्रक्रियाओं में अच्छी बात नहीं है।

सामायिक में देवी देवताओं की स्तुति की परम्परा को उन्होंने तोड़ा। त्रिस्तुति परम्परा चली। लेकिन लोग चौथी स्तुति को क्या पकड़े हुए हैं इसका भी अपना कारण है। यदि वह वास्तव में फालतू ही होती तो लोग उसे छोड़ भी देते। ऐसे क्रांतिकारी आचार्य कम होते है। आचार्य राजेन्द्रसूरि का कथन अपनी सीमा तक ठीक था। लेकिन दूसरे मूर्तिपूजक जैन लोग फिर भी चौथी थुई को क्या बोलते है इसे समझें।

वस्तुत श्रावक जब साधना में संलग्न होता है तो स्वाभाविक है कि जब वह आत्मरमण करेगा आत्मसाधना और ध्यान योग में तल्लीन होगा तो कोई उपसर्ग परिताप भी आ सकता है। कोई असुरीय परीषह भी आ सकता है। इसलिए श्रावक चतुर्थ स्तुति के द्वारा देवी देवताओं का आह्वान करते है ताकि हम जो साधना कार्य कर रहे है उसमें किसी तरह से विघ्न न आ जाय। यदि विघ्न आ जाता है तो हमने जो चतुर्थ स्तुति बोली है उसके द्वारा वह विघ्न दूर हो जाय। लक्ष्मण ने तो यही किया था। लक्ष्मण ने रेखा खींच दी थी। सीता रेखा से कहीं बाहर न निकल जाय इसलिए वह रेखा खींची गयी थी। जो रेखा खींची जाती है उसका अपना उद्देश्य होता है। प्रत्येक रेखा किसी न किसी भावी शुभ के लिए खींची जाती है। कालकाचार्य ने पचमी सवत्सरी की परम्परा को बदलकर चौथ की परम्परा चलायी। आज यदि उस परम्परा को कोई वापस पचमी में बदलता है तो वह कार्य गलत नही माना जायेगा। वैसे तो सवत्सरी तीज की कीजिए चौथ को कीजिये और चाहे दूज को कीजिए और चाहे रोजाना कीजिए उसमें कोई फर्क नही पड़ता है। धर्म ध्यान के लिए साधना के लिए तो सारे दिन एक जैसे ही होते है। इसलिए यदि कोई उपयोगिता समझता है सवत्सरी

की चीज को वापस फगगी न करो की तो यह कार्य भी अच्छा है।

एक परम्परा तो बडी विशाल अवरोधक है और यह साध्वियो के प्रवचन के सम्बन्ध म। बहुत से गच्छ वाले साध्वियों को प्रवचन देना एव उनका प्रवचन सुनना अनुचित समझते हैं। यदि साध्वियो के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है तो हम यह कैसे कह सकते है कि भगवान महावीर ने नारी-जाति का उद्धार किया और उसे भी एकाधिकार रखने वाले मानव के समान ही सामाजिक एव आध्यात्मिक क्षेत्र म एकसम स्थान दिया।

आप जरा सोचिये कि जो साधु लोग पुरुषो के बीच साध्वियो को प्रवचन देने की मनाही करते है उस साध्वी म वह ताकत भरी हुई है ना गिरते हुए साधुओ को भी थाम सकती है। आगम मान्य उदाहरण है कि राजुल साध्वी-जीवन म गिरनार की ओर नागोवाली पगडडी पर गुजर रही होती है। भयकर बरसात आती है। राजुल अपनी सहयोगिनी साध्वियो से अलग थलग हो जाती है। काले काले बादलो से अधियारा फैल जाता है। भीगी राजुल एक गुफा म घुसती है। अधेरा देखकर भीगे कपडो को सुखाने के लिए अपने वस्त्र उतारती है। अधेरी गुफा म निर्वस्त्र हो गई राजुल। सहसा विजली कौंधी। राजुल तब सकपका गई जब उसने देखा गुफा म सामने एक मुनि खड़ा था। उसने गीले वस्त्रो को ही उठाकर किसी तरह अपना शरीर ढका। मुनि और कोई नही अपितु रथनमि था। साधु-जीवन मे रहते हुए भी राजुल को देखकर रथनमि की काम ज्वाला भडक उठी। उसने राजुल से प्रणय याचना की अनेकविध राजुल को समझाया। पर उस नारी म साधुई जिदगी थी।

उसने रथनेमि को आडे हाथो लिया और लताडा। बोली आप एक मुनि हैं और मैं साध्वी। आपने ससार छोड़ा और छोडे हुए का वापस भोगना चाहते है ? वमित पदार्थ का सेवन करना श्वान कर्म है। मुनि उस अगन्धन जातीय सर्प की भाँति है जो आग म जलकर मर सकता है किन्तु उद्गीर्ण जहर को वापस नहीं ले सकता। मै उस उद्गीर्ण विष जैसी ही हूँ। जीवन म किय गये पापो का पछतावा करने के लिए और उन्हे धोने के लिए आप साधु बने है पर जो आदमी साधु जीवन म पाप करेगा उसके पापो को धोने के लिए और कोई रास्ता नहीं है। आप बनिये निर्वात कक्ष म रहे हुए दीप की लौ की तरह अकम्प, निश्चल।

रथनेमि जागा। वह गिर पडा राजुल के पैरो पर। बोला सती! तून

लेकिन बाहर में दिखाते है कि हम तो उसी परम्परा पर चल रहे है। बाहर से तो डींगे हाँकते हैं लेकिन भीतर से सब कुछ बदला हुआ है। क्या फर्क पडता है यदि बाहर के चोले को भी वैसा ही कर दे जैसा भीतर का चोला है। जैसे कि उदाहरण दूँ– कुछ परम्पराएँ जैन धर्म मे यह बात कहती है कि धर्मशाला बनाना या मन्दिर बनाना ये सब पाप के काम है। मन्दिर बनाते है या मूर्ति बनाते है तो पृथ्वीकाय की हिंसा हुई अभिषेक किया अपकाय की हिंसा हुई दीपक जलाया अग्नि व वायु की हिंसा हुई फूल चढ़ाये वनस्पतिकाय की हिंसा हुई। ठीक है हिंसा हुई मान लिया। लेकिन एक बात पूछता हूँ कि जो लोग यह बात कहते हैं उनको कहिये यदि तुमने मकान बनाया है तो तुम देखते नहीं हो कि नालन्दा का विश्वविद्यालय खण्डहर हो गया। इतने बड़े बड़े राजमहल थे आज सब पर उल्लू बोलते है। फिर तू मकान क्यो बना रहा है? फिर मकान बनाने का हिंसामूलक कृत्य क्यो कर रहे हो। ईंट चूना पत्थर को सजाकर उस पर क्यो गुमान करते हो? और चलो माना कि मकान शरीर की आवश्यकता है। तुम धर्मशाला क्यो बनाते हो? जब एक तरफ कहते हो कि धर्मशाला बनाना पाप है तो फिर उसको 'धर्मशाला' क्या कहते हो 'पापशाला' क्यो नही कहते। जबकि दुनिया मे ऐसा कोई मूर्ख आदमी नही जो धर्मशाला को पापशाला कह दे। लोग उसको धर्मशाला ही कहेगे। लेकिन धर्मशाला बना करके भी कहेगे कि धर्मशाला बनाना पाप है। वे पाप का पुतला क्यु बनाते है। मै कहता हूँ कि धर्मशाला के बाहर बोर्ड लगाना चाहिए 'पापशाला' जबकि बोर्ड लगाते हैं धर्मशाला का।

नवीन को ग्रहण भी करते है लोग और पुराने का ढोल भी पीटते है। यदि नई चीज अच्छी है तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए और यदि पुरानी चीज बुरी है तो उसको छोड देना चाहिए। नई चीज बुरी है तो उसको छोड देना चाहिए पुरानी चीज अच्छी है तो उसको ग्रहण कर लेना चाहिए। फूल का ग्रहण होता है, काँटो को ग्रहण कर क्या करेगे। अपने लिये और दूसरो के लिए दोनो के लिए दुखकर है काँटे तो। वास्तव में सत्य जिस परम्परा मे है उसको देखना है। परम्परा क्या है यह नहीं देखना है। जिस परम्परा मे जिस वस्तु में सत्य का दर्शन होता है कौन सी परम्परा आत्मा के लिए समाज के लिए कल्याणकारी है, वही परम्परा हमें अपनानी है। प्राचीन और नवीन दोनो का विवेकमूलक समन्वय करते हुए हम देश और काल के अनुरूप आचार-व्यवहार में यदि परिवर्तन तथा परिवर्धन भी करना पड़े तो हम उसका निःसंकोच परिवर्धन करें। नवीनता में अगर सार है तो वह उपादेय है। तथ्यरहित प्राचीनता भी हेय है। सार सार

तप

देहदडन नही/आत्मशोधन का उपाय

मुझे याद है एक व्यक्ति ने एक पडित को निमन्त्रित किया भोजन करने के लिए। उस व्यक्ति के पिता का श्राद्ध था। उसने पडित को भरपेट भोजन कराया। पडित का पेट इतना भर गया कि अब एक पूडी ज्यादा खाने की गुजाइश उसमे न रही।

व्यक्ति ने सोचा कि मैं इस पडित को जितना ज्यादा खिलाऊँगा उतना ही ज्यादा मेरे पिता के पास पहुँचेगा। उसने पडित को कहा कि आप जितनी पूडियाँ अब और खायेगे हर पूडी पर आपको एक रूपया दक्षिणा मिलेगी।

पडित एक रुपये के लोभ मे आ गया और जितनी पूडियाँ डट कर खा सका खा ली। भर पेट भोजन करने के बाद भी उसने पन्द्रह पूडियाँ और खा ली। अन्त मे उस व्यक्ति ने कहा कि अब तुम यदि और पूडी खाओगे तो हर पूडी पर मै तुम्हे दो रुपया दूँगा। दो रुपया की लालच मे उसने और दो चार पूडियाँ ठूँस ली। पेट मे जगह नही है फिर भी दो रुपये के लोभ मे और दो चार पूडियाँ खा गया। पेट उसका गले तक भर गया। व्यक्ति ने कहा कि अब यदि और पूडियाँ खाओगे तो हर पूडी पर मै तुम्हे पाँच रुपया दूँगा। पेट मे स्थान नही है फिर भी वह दो पूडियाँ तो और खा ही गया। अब तो पडित का साँस भरने लगा। एक तरफ तो है पाँच रुपया और दूसरी तरफ है एक पूडी। यदि एक पूडी और खा लूँगा तो पाँच रुपया मिल जायेगा। एक पूडी और जैसे तैसे पेट मे उतार ली। व्यक्ति ने कहा कि अब यदि तुम पूडी खाओगे तो हर पूडी पर मै तुम्हे दस रुपया दूँगा। पडित पूडी खाने की सोचता है लेकिन पेट मे पूडी जाती ही नही है। अब तो यदि एक पूडी और खाई गई तो सारा खाया हुआ बाहर निकल जायगा।

उसके [illegible] पूरी और [illegible] ही।

एक पंडित के बेटे ने [illegible] कि [illegible] पिता [illegible] तरह से [illegible] चला जा रहा है तो [illegible]। उसने पिता से कहा कि यह क्या मूर्खता है? [illegible]। पर [illegible] पंडित से [illegible] नहीं जाता था। इतना खा लिया कि [illegible] पर [illegible] उसे उसके घर ले जाया गया। घर में [illegible] लोगों ने कहा कि पंडित को अजीर्ण हो गया है [illegible] हो गई है। हजम करने के लिए [illegible] हाजमा चूर्ण दो। तो बेटा दौड़कर चूर्ण लेकर आया और पिता से कहा लीजिए पिताजी चूर्ण। पंडित भड़क उठा और उसने कहा कि अरे नादान! यदि पेट में चूर्ण डालने की जगह होती तो क्या मैं दस [illegible] की पूड़ी छोड़कर आता।

एक संस्कृति तो इस प्रकार की रही है कि जितने खाते जाओ जितना खा सकते हो। और दूसरी संस्कृति इस प्रकार की रही है कि तुम जितना ज्यादा त्यागोगे उतने ही ज्यादा गौरवपूर्ण बनोगे।

भारतीय संस्कृति हमेशा से ही त्याग प्रधान और तप प्रधान रही है। नैतिक जीवन की पूर्णता के लिए त्याग और तप मूलक जीवन की नितान्त जरूरत रही। हमेशा से ही नैतिक जीवन और तप दोनों ही सापेक्ष रहे है। बिना तप के नैतिक जीवन पूर्ण नहीं हो सकता है। नैतिक जीवन की सैद्धान्तिक व्याख्याएँ हम बिना तप के कर सकते है लेकिन उसकी पूर्णता बिना तप के आज तक कभी भी नहीं हुई। तप मूलक साधना की प्रेरणा चाहे पूर्व से आयी हो अथवा पश्चिम से लेकिन तप शून्य साधना नैतिक जीवन की साधना कभी नहीं कही जा सकती।

भारतीय संस्कृति का तो प्राण ही तप है। दुःख को ताप कहते हैं। तप और ताप मे बस इतना ही अन्तर है कि दुःख बुद्धि से दुःख को ग्रहण करना ताप है और सुख बुद्धि से दुःख को ग्रहण करना तप है। सारी की सारी भारतीय संस्कृति और आचार दर्शन की बात तपस्या की गोद मे पली है, विकसित हुई है और यौवन को प्राप्त किया है। बिना तपस्या के यदि हम भारतीय संस्कृति का मूल्यांकन करेंगे तो भारतीय संस्कृति खोखली हो जायेगी। तप से अनुप्राणित संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है। जितने भी भारतीय धर्म और दर्शन हुए है सभी धर्मों व दर्शनों का प्रारंभिक अध्याय तो तप ही है। जिस देश मे घोर भौतिकवादी अजित केसकम्बलि और नियतिवादी गोशालक भी अपनी साधना पद्धति में तप को स्थान और महत्त्व देते है, तो भारत के अन्य सभी धर्मों में तप के महत्त्व पर शंका

करी बहुत बड़ी गलती होगी। परग भौतिकवादी भी तप के महत्त्व को अवश्यमेव स्वीकार करते है। अजित-केसकम्बलि ने यद्यपि अपनी मान्यताओ और धर्म म केवल भौतिकवादी प्रेरणाऍं ही रखी लेकिन फिर भी तप के महत्त्व को वे इन्कार नहीं कर पाये। गोशालक ने भी बड़े बड़े तप किये थे। यह बात अलग है कि तप के लक्ष्य तप की क्रिया प्रक्रिया मे सभी धर्मों मे फर्क रहा है। तप के स्वरूप और तप के भेदो मे भी अन्तर रहा। लेकिन तप के महत्त्व को सभी ने स्वीकार किया है और इसी आधार पर यह कहा जाता है कि आत्म सस्कृति की मूल आत्मा तो तप ही है।

बौद्ध भिक्षुओ की तपस्या के प्रभाव से ही सम्राट अशोक का मौर्य कालीन सस्कृति का विकास हो पाया। महावीर स्वामी की तपस्या के प्रभाव से ही उनके अहिंसा धर्म का प्रचार हो पाया था। बगाल के चैतन्य महाप्रभु की तपस्या मूलक साधना के कारण ही उनके धर्म का विस्तार हो पाया। शकराचार्य के तप का ही प्रभाव है कि हिन्दू धर्म का नवसस्करण हुआ।

दयानन्द के तप का ही बल है कि आर्यसमाज की स्थापना हो पाई। रामकृष्ण परमहस भी तपोयोग के बल पर ही आज विश्व म जाने माने महापुरुष माने जाने लगे हैं। श्रीमद् राजचन्द्र आज कितने जन-श्रद्धा के पात्र बने हैं, सब जानते है। वे एक गृहस्थ थे एक श्रावक थे पर उनकी पूजा आज जितनी है उतनी शायद ही किसी और जैनाचार्य की हो। सचमुच वे राजर्षि जनक की कोटि के व्यक्ति है। इसका मूल कारण यही है कि श्रीमद् राजचन्द्र एक महान त्यागी तपस्वी पुरुष थे। गाधी का तपोमय जीवन तो प्रसिद्ध है ही।

तो सब कुछ तप का ही प्रभाव है। बिना तप के कुछ हो ही नही सकता और जिसमे जैनधर्म तो हमेशा तप प्रधान ही रहा। जैनो के तीर्थंकर इस बात के सबसे बड़े साक्ष्य है और सबसे ज्वलन्त प्रमाण हैं। महावीर स्वामी ने भी अपने साढे बारह वर्ष के साधनाकाल मे कुल तीन सौ उनचास दिन पारणे मे आहार ग्रहण किया था। साढे ग्यारह वर्ष तक आहार न करके तपस्या मूलक जीवन मे ही रमकर अपने जीवन को कचन कर डाला था। साढे ग्यारह वर्ष तक वे अपने जीवन मे निराहार रहे साधना काल मे।

आज भी ऐसे बहुत से जैनी भाई बहन हैं जो महीने महीने तक दो दो महीने तक बिना आहार-पानी के रह जाते है। यद्यपि यह बात बहुत आश्चर्य जनक लगती है, जैनो को छोड़कर अन्य लोगो को। वैज्ञानिको के लिये भी यह आश्चर्य बना हुआ है कि आदमी आखिर जीता

[illegible]

[illegible] और आने [illegible] [illegible] अत [illegible]

[illegible] है। उसी की एक प्रसिद्ध महिला है जो पैंतालीस वर्ष से न कुछ खाती है न कुछ पीती है। [illegible] उसका शरीर [illegible] है। उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि इस महिला ने वर्षों से भोजन नहीं किया।

दक्षिण भारत म दो ऐसे हरिजन है जिनम एक अठाईस वर्ष स साधना म बैठा है और एक भाई पचीस वर्षो से साधना म बैठा है। वे न कुछ खाते है न कुछ पीते है। केवल अपनी तपस्या के बल पर वे आज तक जिये है। केवल जिंदा ही नहीं है अपितु जीवन को आलोकित भी कर रहे है। दोनो भाई हमेशा बैठे रहते है। केवल शिवरात्रि के दिन दोनो भाइयो म से एक भाई खड़ा होता है और अपनी माँ के प्रति आदर स माँ के हाथ से एक गिलास दूध पी लेता है। केवल एक गिलास दूध। वह भी एक वर्ष म केवल एक बार। यद्यपि उस महान आदमी को दूध की जरूरत नहीं लेकिन माता की आज्ञा से आग्रह से वह दूध का सेवन करता है। यह दूध का सेवन वस्तुत माता के वात्सल्य का सेवन है। ये तपस्वी वास्तव म देह मे भी विदेह है देहातीत है। हिन्दू धर्म म इसी को कहते है जीवन मुक्ति/विदेह मुक्ति। श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है —

देह छता जेनी दसा वर्ते देहातीत।

ते ज्ञानी ना चरण मा वन्दन हो अगणित।।

देहातीत तपस्वियो को नमस्कार है अनगिनत नमस्कार।

एक अच्छे साधक हुए है सहजानन्द हम्पी वाले। वे भी इसी तरह के तपस्वी थे। प्राचीन काल के तो अनेक उदाहरण है शास्त्र भरे पड़े है। किन्तु मै उन व्यक्तियो को प्रकाशित करना चाहता हूँ जो प्रत्यक्ष है सामने जी रहे है। प्रत्यक्ष को कभी झुठलाया नहीं जा सकता।

बनारस म मै देवरिया बाबा से मिला। उनकी आयु करीबन तीन सौ

साढ़े तीन सौ वर्ष की बताई जाती है। मै जिन प्रोफेसर से दर्शन और सस्कृत पढ़ता था उनका नाम है श्री नारायण मिश्र। वे नास्तिक भी हैं और आस्तिक भी। उसी तत्त्व के प्रति वे आस्तिक है जो वे प्रत्यक्ष देखते है। बाकी के लिए नास्तिक। उन्होने मुझे बताया कि देवरिया बाबा के सम्बन्ध मे मेरे दादा मेरे पिता को कहते थे कि ये बाबा गजब के है। मेरे दादा जब युवक थे तब भी उन्होने देवरिया बाबा की यही स्थिति देखी। मेरे पिता ने भी और मैंने भी।

मुझे याद है कि हम जब मालवा प्रदेश मे विहार कर रहे थे तो बूदी के समीपवर्ती ग्राम म एक छोटी सी लडकी मिली। आठ-नौ वर्ष की होगी। हमने देखा कि जब वह लडकी साधना म बैठती है तो पन्द्रह पन्द्रह बीस बीस दिन तक ध्यान मे बैठी रहती है और वैसी ही बैठी रहती है खाना पीना-सोना कुछ भी नही।

तपस्या के द्वारा उसके अन्तरग मे एक विशेष प्रकार की शक्ति पैदा हो जाती है। तप भी जीवन देता है। तप के द्वारा हमारे भीतर एक विशेष प्रकार की ऊर्जा सग्रहीत हो जाती है और मनुष्य उस ऊर्जा के माध्यम स आगे फिर जीता है। उस ऊर्जा के सचय से ही मनुष्य एक एक महीने दो दो महीने तीन-तीन महीने तक बिना किसी कमजोरी के बढ़ता चला जाता है।

पर एक बात ध्यान रखिये कि केवल भोजन त्याग ही तप नही है। यदि केवल आहार त्याग तप है तो देहदडन होगा। देहदडन-परक तपस्या का महत्त्व प्रतिपादन नही किया गया। देहदडन ही केवल तपस्या नही है। स्वपीडन देहदडन या आत्मनिर्यातन तप का केवल यही स्वरूप नही है। दो चार दिन तक आहार नही करना यही केवल तप का स्वरूप नही है। मूलत तो तप इच्छाओ का निरोध करने के लिये किया जाता है। तप का मतलब है त्याग। यदि हम केवल त्याग से ही मतलब लगे तप का तो शायद तप का अर्थ बहुत सकुचित हो जायगा। तप का अर्थ केवल निषेधात्मक न लेकर हम विधेयात्मक अर्थ को ग्रहण करें। तप केवल विसर्जनात्मक शक्ति ही नही है अपितु सृजनात्मक शक्ति भी है। तप के द्वारा सृजन भी होता है केवल विसर्जन ही नही होता। जो विसर्जन होता है वह तो बाह्यतप है जिसके द्वारा सर्जन होगा वह आभ्यन्तर तप है।

हम उपवास करते हैं। उपवास का मतलब हुआ आत्मा मे वास करना। शरीर को कृश करना यही उपवास का अर्थ नही है। उपवास किसी

प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए किया जाने वाला अनशन है। अनशन तब होता है उपवास में पर प्रतिज्ञा पूर्वक किया अनशन मात्र भूखे मरना है। इसलिए उसको मैं तुच्छ है। पर आत्मवास करना अपनी स्वयं की आत्मा में स्थित हो जाना शान्त हो जाना बस उपवास का यही तप का यही मतलब है।

मनुष्य के मन में इच्छायें उठती हैं। इच्छाओं का निरोध करना ही तप है। इच्छा निरोधस्तप प्रसिद्ध सूत्र है।

आज दुनिया में जितने भी झंझट हैं सारे के सारे इच्छाओं के ही विस्तार है। यहाँ तक कि जो युद्ध भी होता है यह भी इच्छाओं के विस्तार का परिणाम है। यदि आज विश्व के राजनीतिज्ञ लोग तप की भावना में ओतप्रोत हो जाये तो शायद एक भी युद्ध नहीं होगा। राजनीतिज्ञों की इच्छाओं और महत्त्वाकाँक्षाओं का ही फल है यह मनुष्यों का खून-खच्चर। अब इन राजनीतिज्ञों को जाकर आखिर कौन समझाये। अपनी एक इच्छा की पूर्ति के लिए लाखों आदमियों का खून खच्चर कर डालते हैं। इन समझदार नासमझों को यह नहीं पता कि जब माँ अपने बेटे को युद्ध की विभीषिका में झोंक देती है तो उसे पुन अपने बेटे का चुम्बन लेने को नहीं मिल पाता। बहिन जब अपने भाई को रण की भूमि में विदाई दे देती है तो वापस उसे रक्षा बधन और भाई दूज जैसे त्यौहार मनाने को नहीं मिल पाते। पत्नी जब अपने पति को युद्ध के मैदान में भेज देती है तो वापस उसे अपनी माग में सिन्दूर भरने को नहीं मिल पाता। उसके साथ सिन्दूर की होली खेली जाती है। यह सब केवल राजनीतिज्ञों की इच्छाओं की पूर्ति की तमन्ना के आधार पर ही होता है। क्या राजनीतिज्ञ लोग इस बात को इस धधकती होली को समझते है? समझते है लेकिन समझते हुए भी नासमझ होकर वापस युद्ध की राह पर चले जाते है। क्योंकि इच्छा प्रबल है उनकी वासना की भूख बड़ी तेज है । यदि उनकी भावनाये तपमूलक हो जाये तप की भावना से सराबोर हो जाये तो किसी भी प्रकार की हिंसा की होली नही जलायी जायेगी।

मगर तप की भावना हमारे भीतर है भी तो कहाँ? हमारे भीतर स्वाध्याय नही है। हमारे भीतर प्रायश्चित नही है। हमारे भीतर विनय नही है, प्रतिक्रमण नही है। आभ्यन्तर तप तो है नही केवल बाह्यतप करते हैं। असली तो आभ्यन्तर तप ही करना है। इस बाह्य तप की अतिवादिता के कारण ही डॉ मफ जैसे पाश्चात्य विचारकों ने इसे स्वपीडापरक और

आत्मपीड़क तत्त्व मानकर इसका विरोध किया। वस्तुत वे लोग तप का महत्त्व ही नहीं समझ पाये। उन्होने तप का मतलब केवल देहदमन ही समझ लिया। यहाँ तक की बुद्ध ने भी आखिर में जाकर तप का विरोध किया। भले ही स्वय बुद्ध ने तप का विरोध किया हो लेकिन बुद्ध के पश्चात् उनके महानिर्वाण के बाद उन्ही के अनेक भिक्षुओ ने तप को स्वीकार किया था। बौद्धो मे हुए हैं धूतग भिक्षु। वे लोग जगलो मे जाकर तप साधना करते थे। जबकि बुद्ध ने तप का विरोध किया। वस्तुत स्वय बुद्ध भी तप की मूल आत्मा तक नही पहुँचे और उन्होने भी केवल तपस्या करने के लिये देहदमन प्रणाली को अपनाया था। जब बुद्ध अति तपस्या मे रत थे तो उनके कानो मे जो शब्द सुनाई पड़े —

> इतने अधिक कसो मत निर्मम वीणा के हैं कोमल तार।
> टूट पड़ेगे सब के सब वे कभी न निकलेगी झकार।।
> इतने अधिक करो मत ढीले वीणा के रसवन्ती तार।
> कोई राग नही बन पाये निष्फल हो स्वर का ससार।।

इन शब्दो ने बुद्ध के सारे तपस्यामूलक साधना के महल को खण्डहर कर दिया। उन्होने पाया कि वीणा के तारो को अधिक नही कसना है न अधिक ढीले छोड़ना है। वस्तुत बुद्ध ने जिस तप और तपमूलक पथ को अपनाया, वह पथ अज्ञानमूलक तप का पथ था। ज्ञानमूलक तप का पथ नही था। और इसीलिए महावीर स्वामी ने यह बात खुलकर के कही कि तुम भले ही चाहे एक एक मास तक उपवास कर लो लेकिन वह उपवास यदि ज्ञानमूलक नही है तो उपवास करना भी बेकार होगा। महावीर स्वामी और गीता के कृष्ण दोनो ही इस बात से पूर्णरूपेण सहमत हैं। [illegible] और स्वयं बुद्ध की इस वाणी से मै स्वय सहमत हूँ लेकिन जैन धर्म मे जो तपस्या की पद्धति है वह केवल देहदमन परक नही है। उसमे उपवास भी होता है लेकिन ज्ञानमूलक होता है। भगवान पार्श्वनाथ और तापस कमठ के बीच यही तो संवाद हुआ था और यही सम्वाद विवाद का विषय बना। क्या कमठ तपस्वी नही था? कमठ तपस्वी था लेकिन उसका तप अज्ञानमूलक था घोर तपस्वी होते हुए भी उसकी तपस्या ज्ञानमूलक नही थी। केवल देहदमनात्मक तपस्या ही थी। इसीलिए जैन धर्म ने यह बात तो स्वीकार ही नही की कि केवल देहदमन ही तपस्या है। केवल शरीर को कष्ट देना शरीर को सुखाना ही तपस्या है। यह बात जैन धर्म को स्वीकार्य ही नहीं।

जैन धर्म मे तो [illegible] के [illegible] के लिए [illegible] स्वीकृत कि

इच्छाओ के निरोध के लिये ध्यान तथा आध्यात्म रूप मे चा[illegible]
जाती है वही तपस्या है यही सम्यक्तप है। बारस अनुप्रेक्षा का एक
इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। सूत्र बडा कीमिया है।

विसय कसाय विणिग्गहभाव काऊण झाणसज्झाए।

जो भावइ अप्पाण तस्स तव होदि णियमेण॥

इस सूत्र का अर्थ हुआ कि उसी व्यक्ति के तप धर्म होता है
इन्द्रिय विषयो और कषायो का निग्रह कर ध्यान तथा स्वाध्याय के
आत्मा को भावित करता है।

सर्वथा स्पष्ट है। ध्यान और स्वाध्याय को तपधर्म के अभिभूत म
है। देह को कृश करने का उल्लेख भी नही किया। अरे! वह तो सामान्य है।
मुख्य तो आत्म साधक तत्त्व है। भला, जब मक्खन को, पकाना है
स्वाभाविक है कि बर्तन पहले तपेगा फिर मक्खन पिघलेगा। शरीर तो बर्तन
है। हमारा उद्देश्य बर्तन का तपाना नही, घी और मक्खन को तपाना है।

एक आदमी ने एक फकीर को कहा कि मुझे आत्म ज्ञान की शिक्षा
दीजिये। फकीर ने कहा कि यह शिक्षा ऐसे ही नही दी जाती। तप करना
पडता है तपाना पडता है तब कही जाकर आत्मज्ञान आत्म अनुभव की
शिक्षा दी जायेगी। बात आदमी के मन को छू गयी। वह गया जगल मे
खूब तप किया। शरीर हो गया कृश। अस्थि ककाल रह गया। हाडो पर
त्वचा का खोल ही था हाडो का मास सूख गया। जब चलता तो हड्डियाँ
खड खड करती। अन्त मे पहुँचा वह आत्मज्ञान की शिक्षा लेने उस फकीर के
पास। फकीर को हँसी आ गई उसके शरीर को देखकर। आदमी ने फकीर से
कहा फकीर साहब! अब मुझे आत्म ज्ञान की शिक्षा दीजिये। फकीर ने वह
अपना पुराना वाक्य दोहरा दिया! जैसे टूटी हुई रिकार्ड बार बार एक ही
आवाज निकालती है वैसे ही उस फकीर ने भी वही स्वर कह दिया। कहा
अभी तुम्हे और तपना होगा। यह सुनते ही वह आदमी बौखला उठा। कहा
कि मैने बारह वर्षो तक लगातार तपस्या की। शरीर सूख गया है और आप
कहते है कि अभी और तपना होगा। यह कहते हुये उसने झट से अपनी
एक अगुली तोड दी। यह बताने के लिये कि मैने कितना तप किया है।
फकीर ने कहा कि भाई! तूने अभी तक शरीर को सुखाया है तपाया है।
जबकि तुम्हारे भीतर अभी तक क्रोध है काम है माया है आसक्ति है।
वास्तव म तपना तो इनको है शरीर को थोडे ही तपाना है। यदि तुम सौ
वर्षो तक शरीर को सुखाओगे तब भी तुम योग्य पात्र न हो पाओगे।

आत्मशा एव आत्म शुद्धि के लिए बाह्य तप और शारीरिक तप महत्त्वपूर्ण नही है। महत्त्वपूर्ण है भीतरी तप आभ्यन्तर तप। प्रायश्चित की आवश्यकता है विनय की जरूरत है वैयावृत्य/सेवा की अपेक्षा है स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग की अनिवार्यता है। यदि व्यक्ति आभ्यन्तर तप करने के लिए बाह्य तप को माध्यम बनाता है तो उसे बाह्य तप बाधक और अवरोधक नही होगा अपितु सहायक होगा। ठीक वसे ही जैसे मक्खन को तपाने के लिए बर्तन।

आज कोई जैन बालक यदि एक उपवास करता है तो उसे उपवास मे भूख की पीडा तो होगी। लेकिन उस पीडा की व्याकुलता नही होगी। भूख लगना यह शरीर का स्वभाव है लेकिन व्याकुलता का अनुभव होना यह अलग बात है। यदि व्याकुलता की अनुभूति होती है उपवास म तो उपवास करना बेकार है।

तपस्या तो आत्मा का स्वभाव है। आत्मा का आनन्द है। नैतिक जीवन की पृष्ठभूमि ही तपस्या है। और यदि हम देहदडनपरक तप को भी लेते है तपस्या के अर्न्तगत तो यह बात स्वाभाविक है कि हमे कुछ न कुछ तो आध्यात्मिक साधना के लिए भी कष्ट उठाना ही पडेगा। यदि देहदडन को तपस्या मे हम सलग्न भी करते है तो वह देहदडन भी हमारे लिए सहिष्णुता का कारण बनेगा।

लोच करते है जैन साधु। क्या? वे केवल अठन्नी अथवा एक रुपये को बचाने की कृपण भावना मे लोच करते है ऐसी बात नही है। अपितु लोच वे इसलिए करते है ताकि कष्ट सहिष्णुता की परीक्षा हो सके। आज यदि यह परीक्षा न हो तो शायद दुनिया म जैन साधुओ की जमात ही दिखाई देगी। क्योकि–

मुड मुडाये तीन गुण मिटे माथे की खाज।
खाने को लड्डुआ मिले लोग कहे महाराज।।

तो लोग महाराज ही बनेगे। मगर जब लोच की परीक्षा, लुचन की बात आती है तो आदमी को सोचना विचारना पड़ता है। वास्तव म यह क्रिया इसलिए है कि जो व्यक्ति अपने बालो को तोड़ सकता है नुचवा सकता है वह साधना के मार्ग मे आने वाली बाधाओ मे डिगेगा नही। बाल नोचने जितना परीषह आयेगा तो वह सहजत सहन कर सकता है। मुक्ति का सुख पाने के लिए आखिर बाहर के दु खो का तो सामना करना ही पड़ेगा।

जैसे मनुष्य सुख की खोज के लिए प्रयत्न करता है। लेकिन प्रयत्न चाहे जितना कर ले उसे दुःख का भी सामना करना ही पड़ेगा। दुःख भी भोगना ही पड़ेगा। क्योंकि बिना प्रतिकूलता और विडम्बना के सुख आयगा ही नहीं। वैसे ही आध्यात्मिक साधना में यदि तपस्या करते हुए शरीर को कष्ट भी देना पड़ता है तो वह भी जरूरी है।

समत्वयोग कहना तो बहुत सहज है, लेकिन जीवन के साथ उसकी कसौटी कसना बहुत कठिन है। हमारे भीतर वैचारिक समत्व कितना है, हम तपस्या के आधार पर ही इसकी परीक्षा कर सकते हैं। बिना इसके नहीं हो सकती। अनशन तो यह भी जरूरी है ही। और यदि हम तपस्या का अर्थ कुछ ढीला कर दें तो जैसे शरीर की स्वस्थता के लिये व्यायाम की जरूरत होती है वैसे ही शारीरिक बीमारियों के लिए तप की, उपवास की भी जरूरत होती है। सर्वोदय संघ और गांधी तथा उनसे प्रभावित दूसरे स्वतंत्रता सेनानी नेताओं के तपोमय जीवन को देख लीजिए वस्तुतः यह भी जरूरी किया है। इसके महत्त्व को इन्कार नहीं किया जा सकता। चाहे कोई विचारक इसका विरोध कर दे पर भारतीय संस्कृति तो हमेशा से ही तप-प्रधान रही है। ठीक है आज के ब्राह्मण अथवा पंडित तपस्या के मार्ग को स्वीकार नहीं करते लेकिन उनके स्वयं के ग्रंथ तप रहित साधना को स्वीकार नहीं करते। तैत्तिरीय उपनिषद् में तो यहाँ तक कहा गया है कि तप ही ब्रह्म है। वैदिक परम्परा में यही कहा जाता है कि तपस्या से ही वेदज्ञान हुआ। तपस्या में ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। तपस्या से ही मनुष्य की आत्मा की विशुद्धि होती है। बिना तप का जीवन कोई जीवन है? न केवल जैन साधना की [illegible] वैदिक साधना और बौद्ध साधना सभी में तप के महत्त्व को असंदिग्ध स्वीकार किया। भले ही बुद्ध ने बाद में चलकर तप का विरोध किया हो लेकिन वे सारी जिन्दगी तप का समर्थन करते रहे। और [illegible] के बाद जो उनके धर्म संघ के विभाजन हुए [illegible] का जो विभाजन हुआ कारण उन सुविधावादी भिक्षुओं के [illegible] था। उन्होंने [illegible] को शत प्रतिशत स्वीकार किया कि [illegible] धर्म संघ में तप को विकृत [illegible] हमारा धार्मिक [illegible]। [illegible] नहीं भोग की [illegible]। [illegible] के कारण ही [illegible]। [illegible] अधिगत [illegible] नहीं [illegible]।

चाहे जैसे भी हो तप के महत्त्व को इंकार नहीं किया जा सकता यह तो आत्मा की विशुद्धि है। उत्तराध्ययन मे कहा है कि तवेण परिसुज्झई। तप के द्वारा परिशुद्धि होती है। ज्ञान से जाना जाता है। दर्शन से श्रद्धा होती है। चारित्र से कर्माश्रवो का निरोध होता है और तप से शुद्धि होती है।

नाणेण जाणई भावे दसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ तवेण परिसुज्झइ।।

तवेण परिसुज्झई—तप से विशुद्धि होती है पहले से लगे मैल की। आत्मा के चारो तरफ कर्ममैल लगा हुआ है। उस कर्म मैल को अलग करना है। यदि उसके लिए शरीर को कष्ट देना भी पडता है तो उसके लिए जरूरी समझिए। जैसा कि मैने कहा कि हम लोग मक्खन पकाते है घी बनाने के लिए हम पकाते किसको है मक्खन को न कि वर्तन को। लेकिन क्या करे बिना वर्तन को तपाये मक्खन तपेगा ही नही। हमारा मूल लक्ष्य है मक्खन को तपाना न कि बर्तन को तपाना। बर्तन तो एक माध्यम है। वह तो पात्र है। यदि साधना करने के लिए उसे कष्ट भोगना पड़ता है तो वह जरूरी है। यदि मक्खन को पकाने के लिए घी को तपाने के लिए बर्तन को गरम किया जाता है तो यह जरूरी है घी को तपाने के लिये। ठीक है कि स्व पीड़न आत्मपीड़न या आत्मदमन की दृष्टि से यदि बोद्ध धर्म यह बात कहता है कि तप खराब चीज है तप त्याज्य है तो स्वीकार हो सकती है। लेकिन जैन धर्म ने तप का अर्थ यही तक सीमित नही रखा। बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के लिये उन्होने अपने तप का विस्तार किया था। और इसीलिए गीता मे तप का अर्थ जहाँ पर स्वपीडन लगाया है वही पर यह बात भी कही कि तप का मूल उद्देश्य स्वकल्याण/ आत्मकल्याण के साथ-साथ पर-कल्याण भी है विश्वकल्याण लोक कल्याण भी है। केवल प्रेय ही नही श्रेय भी है। दूसरो के लिए त्याग की भावना यह भी साधना के लिये जरूरी है। साधना करने के लिए तपस्या नितान्त जरूरी है।

हमारे जीवन मे यदि क्रोध आता है। तो उस क्रोध को हम वैसा ही समझे जैसा वह पहले हमारे साथ व्यवहार करता हो। अक्रोध तप की नीव है। तप की मूल वृत्ति तो यही है और यही पर हमे पहुँचना है। यदि हमारे सामने कोई सुन्दर रूप मे आकर के खडा हो जाता है तो हमारे मन मे वही भावना बनी रहे जो एक कुरूप चेहरे के आने पर होती है। उस दु ख को सुख की तरह मान कर स्वीकार करना यही तो तप है। यह तो अतिथि

आसनो को योग नही मानता। वह तो एक तरह का स्पष्टत शारीरिक व्यायाम ही है। यह बात भी निश्चित है कि शारीरिक व्यायाम किसी भी प्रकार का हो शक्तिदायक ही होती है। योग शक्ति नही देता, योग देता है शान्ति शुद्धत्व की उपलब्धि।

इसी तरह लोग धर्म करते है। क्या आप जानते है कि लोग धर्म किसलिए करते हैं? लोग धर्म करते हैं प्रभुता की प्राप्ति के लिए। जबकि धर्म से प्रभुता नही मिलती। धर्म तो शून्यता से आत्म स्वरूप मे प्रवेश कराता है।

यानी हम पाना कुछ और चाहते है और होता कुछ और है। होने और पाने मे बहुत बड़ा अन्तर है। होना स्वभाव है पाना प्रयास है। होना प्रकृति है पाना क्रान्ति है। होना विकास है, पाना विज्ञान है। डार्विन ने प्रकृति के साथ होने का सम्बन्ध जोड़ा, पाने का नहीं। जो होता है, उसके लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। जो पाते हैं प्रयासशीलता उसकी पृष्ठभूमि रही है। होना निष्कांक्षा है। पाना आकांक्षा है। निष्कांक्षा पहुँचाती है कुदरती विकास करती है। जबकि आकांक्षा रोकती है एक तो प्राप्त को भोगने के लिए तथा एक जो प्राप्त नही हुआ, उसको प्राप्त करने के लिए।

इस तरह आकांक्षा हुआ बहिर्गमन का मार्ग और निष्कांक्षा हुआ अन्तर्गमन का मार्ग। आकांक्षा यानी भीतर से बाहर जाना। निष्कांक्षा यानी बाहर से भीतर आना। आकांक्षा यानी आपा खोना। निष्कांक्षा यानी आपा पाना। आकांक्षा अपने से दूर की यात्रा है। निष्कांक्षा स्वय के समीप से सन्निकटतम होने की यात्रा है। आकांक्षा सूर्योदय है। निष्कांक्षा सूर्यास्त है। सूर्योदय ताप का और परिभ्रमण का सूचक है और सूर्यास्त ताप शान्ति और विश्राम का परिचायक है। आकांक्षा आत्मा का वैभाविक गुण है और निष्कांक्षा आत्मा का स्वाभाविक गुण है।

आकांक्षा का सम्बन्ध वास्तव मे मन से है। मन का स्वभाव अत्यन्त चञ्चल है सागर मे उठने वाली तरंगों की तरह। जो मन प्रदूषित है उसी से ही आकांक्षा का बीजांकुरण होता है। चाहे जिस क्षेत्र मे मन को [illegible] वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता। वह तो आकांक्षा के द्वार [illegible] स्वभाव का त्याग करता है? [illegible] [illegible] आकांक्षा से दूषित है।

[illegible] मे एक कहानी है। और वह बड़ी [illegible] कहानी है कि एक [illegible] का [illegible] किया। [illegible] दूर [illegible]

से पण्डित लोग आए थे। राजा ने उन सबसे कहा कि मै ऐसी कहानी सुनना चाहता हूँ जो कभी समाप्त न हो। सारे पण्डित भौचक्के रह गये। सब एक-दूसरे की बगले झाँकने लगे। कई पण्डितो ने प्रयास भी किया। किन्तु सभी पण्डितो की कहानी अन्तत खतम हो जाती। भला जब कहानी कहने वाले का अन्त आ सकता है तो कहानी का अन्त क्यो नही आएगा।

एक दिन राजा के पास एक साधारण ग्रामीण आदमी पहुँचा। उसने राजा से निवेदन किया – राजन्! मै आपको ऐसी कहानी सुनाऊँगा जिसका कोई अन्त नही है। इस श्रम के लिए आप मुझे क्या देगे? राजा बोला एक लाख रूपया। राजा ने इतना अधिक पुरस्कार इसलिए कहा क्योकि राजा को यह पक्का विश्वास था कि हर कहानी का अन्त तो होता ही है। अत देना कुछ भी नही पड़ेगा। एक कोड़ी भी नही। आगन्तुक व्यक्ति ने कहा कि मुझे आपकी बात जच गयी पर मेरी एक शर्त है कि जब तक मै कहानी सुनाऊ तब तक आपको मेरे पास ही बैठना पड़ेगा। राजा ने शर्त स्वीकार कर ली।

आगन्तुक ने कहानी को सुनाना प्रारम्भ किया कि एक बगीचे मे सैकड़ो वृक्ष थे। प्रत्येक वृक्ष मे सैकडो शाखाएँ थी प्रत्येक शाखा पर सैकडो पत्ते थे। एक दिन लाखो टिड्डयो का दल आकाश से बगीचे मे उतरा और सारे बगीचे म छा गया। टिड्डियो को बगीचे म अच्छा भोजन मिल गया। पहली टिड्डी ने जैसे ही भोजन किया वह उड़ गई। दूसरी ने भी भोजन किया वह भी उड चली। तीसरी का पेट भरा वह भी उड़ गई। इस तरह वह ग्रामीण क्रमश एक एक टिड्डी को भोजन करा रहा है और उडा रहा है। उसने अभी तक केवल दो सौ टिड्डियाँ ही उडाई थी कि राजा तग आ गया। राजा ने समझ लिया कि यह वह कहानी है जो कभी समाप्त नही होगी। जैसे ही यह सारी टिड्डियाँ उडेगी कि यह वापस उन्ही टिड्डयो को भोजन करने के लिये वापस आमन्त्रित कर लेगा। सचमुच ये टिड्डिया की फुर्र फुर्र कभी समाप्त नही होगी। मेरा जीवन भले ही समाप्त हा जाय।

मनोकाक्षाओ की टिड्डियाँ भी इसी तरह से फुर्र फुर्र करती रहती है। जब तक आकाक्षाएँ रहेगी मन स्थिर नही हो पाएगा। टिड्डियाँ उडती आती रहेगी। हाँ! यदि सारी आकाँक्षाओ की टिड्डियो को जीवन बगीचे स एक साथ उडाकर भगा दिया जाये तो बगीचा भी पल्लवित हो जाएगा और जीवन भी सुरभित तथा निष्काँक्ष हो जाएगा ।

जबकि लोग आकाँक्षा सहित होकर ही मोक्षमार्ग पर आरोहण करना

चाहते है। उनमें प्रत्येक कर्म प्रत्यक्ष आकांक्षा से जुड़ा है और फलाकांक्षा से आविष्ट है। फलाकांक्षा भी कोई मुक्त नहीं आत्मानुगी है। आप बनारस के घाटों पर जाइये हरिद्वार या प्रयाग जाइये अथवा अन्य कोई तीर्थ स्थान पर जाइये। वहाँ आप पण्डित पुरोहितो को यह कहते हुए सुनेगे कि तुम एक पैसा दो तुम्हे दस लाख मिलेगा। भिखारी लोग भी गाते है —

तुम एक पैसा दोगे वो दस लाख देगा।
गरीबो की सुनो वो तुम्हारी सुनेगा ॥

अब आप सोचिये कि यह कौन सा गणित है। सीधा एक का दस लाख। कोई गणितीय हिसाब नहीं बैठता। बिना सोचे समझे और आँख बन्द कर कही बात है ये। मगर ये भी क्या करे? वे मनुष्य की आकांक्षाओं से परिचित है। यह उनकी कृपा समझिये कि उन्होंने एक सीमा रखी है। मनुष्य का मन तो कहता है — एक का अनन्त। एक का दस लाख, कम है। इसमें मनुष्य प्रसन्न नहीं है। वह अपरिमित चाहता है। उसकी आकांक्षा कहती है जो है वह सीमित है बहुत थोड़ा है। जब तक असीम को स्पर्श नहीं किया जाये, अनन्त को उपलब्ध न किया जाय तब तक तुम्हारे पुरुषार्थ को धिक्कार है तुम्हारे भुजा बल का अपमान है। इसीलिये आकांक्षा को आकाश की संज्ञा दी गयी है। जैसे आकाश का अन्त नहीं है, वैसे ही आकांक्षा का भी अन्त नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान महावीर ने महत्त्वपूर्ण गाथा कही है —

सुवण्णरूप्पस्स उ पव्वया भवे सिया हु केलाससमा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥

देखा! कितनी महिमामण्डित गाथा है। अनुभूति के शब्दों के रत्नों से सजी है यह। कहा है कि अगर सोने और चाँदी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत हो जाये तो भी लोभी आदमी को उससे तृप्ति कहाँ? कारण आकांक्षा/इच्छा आकाश के जैसी है, अनन्त है। 'इच्छा हु आगाससमा अणंतिया' इच्छा तो आकाश के समान अनन्त है।

तो आदमी चाहे जिस क्षेत्र से जुड़ता है आकांक्षा और फलाकांक्षा को साथ में लेकर चलता है। ब्राह्मणों में पुजारियों में, क्रियाकारकों में, विधि विधान करानेवालों में इन लोगों में तो फलाकांक्षा बड़ी विचित्र सी होती है। ये यज्ञ भी करते है ईश्वर की भक्ति भी करते है तप भी करते है क्रियाएँ भी करते है, मगर आकांक्षा और फलाकांक्षा बहुत अधिक होती है। ब्राह्मण यज्ञ करते है पुजारी पूजा करता है किन्तु उसके मूल में यह

तथ्य रहता है कि उसे चढ़ावा अधिक से अधिक मिले। महावीर और बुद्ध ने फलाकांक्षा की बढ़ती भीड़ को देखकर ही इसके प्रयोग के लिए मनाही की थी। कृष्ण का तो सर्वप्रथम यह कहना है कि पहले फलाकांक्षा छोड़ो। पाने की लालसा त्यागो।

जैनो का एक आध्यात्मिक ग्रंथ है समयसार। उसमे कहा गया है कि जो सब प्रकार के कर्मफलो मे और सर्वधर्मो मे किसी भी प्रकार की आकाक्षा नही रखता उसी को निष्काक्ष सम्यग्दृष्टि जानो।

जो दु ण करेदि कख कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ।।

यानी मूल बात यह है कि आकाक्षा न हो फलाकाक्षा न हो। आनन्दघन कहते है कि आशा औरन की क्या कीजे'। दूसरो की आशा छोड़ो। कुछ तो अपने पर भी विश्वास करो।

वस्तुत हमे अपने भाग्य पर विश्वास नही है। जितना मिलना चाहिये उतना निश्चित मिलेगा। जितना भाग्य मे है उससे कोई वचित नही कर सकता। यह तो जन्मसिद्ध अधिकार है। यही गोशालक का नियतिवाद सिद्धान्त है । चाहे रेगिस्तान हो चाहे श्मशान हो या कब्रिस्तान हो भाग्य मे लिखा हर जगह मिल ही जायेगा। उससे अधिक की कितनी भी आकाक्षा करो, नही मिलेगा। सोने के सुमेरुगिरि पर भी नही मिल सकता। अत बेकार आकाक्षा की दौड मे बैल की तरह जुतने से क्या लाभ? जो कुछ हमारे पास है उसमे सन्तोष मानना ही उचित है। सन्तोषामृत से आतृप्त को जो सुख होता है वह आकाक्षितो को कहाँ जो इधर उधर दौड़ते हैं। सन्तोष तो प्राकृतिक है कुदरती। आकाक्षा कृत्रिम है बनावटी। आकाक्षा तो केवल कल्पनाओ का बवण्डर है जो मनुष्य के सतोष रूपी झोपडे को उड़ा ले जाता है। सन्तोष सेतु है तो आकाक्षा प्रवाह है। सन्तोष का सेतु टूटते ही आकाक्षा का प्रवाह अमित और असीम हो जाता है।

आकाक्षा का शास्त्र ही यही है कि जो है उसमे सन्तोष नही। जो प्राप्त है, वह पर्याप्त नही। आकाक्षा जो है उसका तो निषेध है और जो नहीं है उसको पाने की तमन्ना है। यह आधी को छोड एक को पाने की दौड़ है । आकाक्षा कुछ और होने की, कुछ और पाने की बेचैनी है । जो है उससे शान्ति नही । जो पाया है उससे तृप्ति नही । जहाँ हम हैं वह स्वीकार नही । कुछ और कोई और कही और की यह दौड है । हजार मीटर की दौड़ मे व्यक्ति थक जाता है गात शिथिल पड जाता है। परन्तु

आकांक्षा की दौड़? चलो रे बाग रुकती नहीं है। यह धाविका बड़ी सक्षम है। प्रत्येक पुरानी आकांक्षा को हराकर नई आगे बढ़ती है। सभी आकांक्षाएँ प्रतिस्पर्धा मे सलग्न है। प्रतियोगिताएँ होती है। एक दूसरे को हराने की ही होड होती है उसमे। आकांक्षा की प्रतियोगिता भी ऐसी है। सेमी फाइनल से फाइनल आगे से आगे बढ़ती है। सन्त सुन्दरदास का इस सम्बन्ध मे एक सुन्दर पद्य है —

> जो दस बीस पचास भये शत होई हजार तु लाख मँगेगी।
> कोटि अरब्ब खरब्ब असख्य, धरापति होने की चाह जगेगी।।
> स्वर्ग पाताल को राज करो, तिसना अधिकी अति आग लगेगी।
> सुन्दर एक सन्तोष बिना शठ तेरी तो भूख कबहूँ न भगेगी।।

सुन्दर दास कहते है बिना सन्तोष के तेरी भूख कभी नही मिटेगी। दस बीस पचास सौ हजार लाख, करोड़, असख्य, त्रिलोक यानी आकांक्षा आगे से आगे बढ़ती जाएगी। यह जगल की आग की तरह बढ़ेगी।

आकांक्षा वास्तव मे बड़ी अजीब है। इसका भिक्षापात्र चाहे जितना भर दिया जाये, भरता ही नही है। यह सदा रीता ही रहता है। खाली का खाली। भरता ही नहीं कभी भी। भिखारी को कितना भी दे दो, मगर वह फिर भी माँगता रहेगा। जैसे कि उसने अपना यह धधा बना लिया है। 'कुछ और' की माग हर समय बनी रहती है। टूट रिकार्ड की तरह एक ही शब्द बार बार दोहराया जाता है— कुछ और! कुछ और!! कुछ और !!! ऐसा लगता है कि इसके सामने सभी पराजित है। भिखारी तो पराजित है ही, सिकन्दर भी पराजित है। भिखारी भी कुछ और चाहता है और सिकन्दर भी कुछ और। डायोजनीज के लिये नाँद ही काफी बड़ी थी, किन्तु सिकन्दर के लिये यह विश्व भी बहुत छोटा था। सत्यत आकांक्षा दुष्पूर है। तृप्ति अशक्य है। आकांक्षा का पार पाना कठिन है। इसका अत दिखाई नही देता। यह तो आकाश की भाँति अनन्त है। सारे विश्व को पा लेने के बाद तो कुछ और पाने को नही है। परन्तु पाने की आकांक्षा कभी समाप्त नही होती। सारा विश्व मिल जाए तो भी मनोकांक्षा होगी इस विश्व को तो पा लिया पर अभी नक्षत्र जगत् का आनन्द नही लिया। चलो अब नक्षत्र-जगत् पर अधिकार करे। इस तरह आकांक्षा के नाटक का कभी पटाक्षेप नही होता। वह तो अधर मे ही लटकी रह जाती है।

आकांक्षा की पूर्ति मे उसकी इति नही है। एक आकांक्षा की पूर्ति और आकांक्षाओ को जन्म देने की परिणति है। एक आकांक्षा पूर्ण होते ही

दूसरी आकांक्षा उत्पन्न होकर तीर के समान छेदने लगती है। यह ठीक वैसे ही है, जैसे भोग की आकांक्षा उसकी पूर्ति से शान्त नहीं होती। भोग को भोग से कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। भोग भोगने से तो भोग की आकाँक्षा चाह और अधिक भड़कती है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार यज्ञकुण्ड मे घी डालने से अग्नि।

देखिये दो चीज है एक तो है आवश्यक्ता और दूसरी है आकांक्षा। शरीर की आकांक्षा नहीं होती आवश्यक्ता होती है। जबकि मन की कोई आवश्यकता नहीं होती आकांक्षा होती है। शरीर की आवश्यकता एक कमरे की है एक वस्त्र की है पेट मे समाये उतने भोजन की है मगर मन के लिये महल भी छोटा है। वह पेट नहीं पेटी भरने की प्रेरणा देता है। मन वह कार्य करने की प्रेरणा देता है जो सभव नहीं। इसलिए आवश्यकता पूरी हो सकती है, पर आकांक्षा नहीं। जिसके पास आकांक्षा अधिक है वह उपलब्ध का उपभोग नहीं कर सकता। यदि आकांक्षा का धनी धन से सम्पन्न है तो वह धनवान् होते हुए भी निर्धन जैसा है। बैंक केशियर धन के बीच ही रहता है किन्तु वह उस धन का भोगी नहीं हो पाता। जो व्यक्ति धनप्राप्ति के लिये अपने निखिल जीवन को स्वाहा कर देता है यदि वह उस धन को नहीं भोगता तो उसकी धनवत्ता की अपेक्षा निर्धनता ज्यादा अच्छी थी। इसलिए आकांक्षाओ से सन्यास लेना नितान्त जरूरी है। जो आकांक्षापूर्वक धन सम्मान आदि के पीछे पड़ा है वह आकांक्षा का रोगी है। वह सागरीय जल से अपनी पिपासा शान्त करना चाहता है। जितना अधिक पीता है, पीने की आकांक्षा उतनी ही बढ़ती है। अन्तत वह पीते-पीते ही मर जाता है। उसकी कांक्षा पूर्ण नहीं होती। रूप का पान करने के बाद भी और मदिरा के प्याले पीने के पश्चात् भी आँखे प्यासी की प्यासी रह जाती है। मेरी एक कविता है कि —

सतृष्ण हो जो करता रहता धन व मान के लिए प्रयास।
सागर के जल से बुझा रहा तृषा-रुग्ण वह अपनी प्यास॥
पीता है जितना उतनी ही बढ़ती है पीने की चाह।
पीते-पीते ही मर जाते किन्तु न मिटी चाह की आह॥

सचमुच आकांक्षा का जगत तो बड़ा विचित्र है। नदी को बहुत लोग पार करते हैं किन्तु उसकी गहराई को कोई विरला ही जान पाता है।

आकांक्षा एक भयंकर रोग है। संक्रामक रोग है। एक आकांक्षा का दूसरी आकांक्षा से स्पर्श रोग को आगे से आगे बढ़ाता है। आकांक्षा बढ़ी

है। विध्वंस के कगार पर खड़ा है विश्व। एक बात पक्की है कि यह सन्ताप और भय हिंसा द्वारा कभी नहीं मिटेगा। जिन भयंकर समस्याओं की होड़ से विश्व आज त्रस्त बना है उन सभी इन समस्याओं से छुटकारा नहीं मिल सकती। इन समस्याओं को सुलझाने का एकमात्र उपाय है—प्रेम अहिंसा करुणा प्यार विश्व बन्धुत्व जैसे उदात्त भावों का प्रचार और प्रसार प्रसार। ये ही तो है महावीर के अमृत सन्देश। आज की परिस्थिति में इनकी लाभदायकता अचूक है। सच कहें तो इसी लाभ के लिए आज का युग लालायित है।

हम इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ रहे है। पर प्यार और आत्मीयभावरहित विश्व में जीवन अनिश्चित बनता जा रहा है। लोगों को विकल्प नहीं मिल रहा है। इस समय हम विश्व का ध्यान अपने धर्म और अपनी संस्कृति की तरफ खींचे। महावीर के अनुयायियों को चाहिये कि वे आज महावीर के शान्ति के मार्ग को आगे से आगे वर्धमान करें। ऐसा करने के लिए महावीर स्वयं प्रेरणा देते है। वे कहते है मेरे प्यारे शिष्यो! तुम प्रबुद्ध और उपशान्त होकर मेरे शान्ति के मार्ग को घर घर में गाँव गाँव में, नगर नगर में देश देश में बढ़ाओ। हे शिष्यो! इस काम को करने में तुम आलस मत करना। चीते सी स्फूर्ति के साथ इस काम को करना। यह बहुत बड़ा धर्मलाभ' है। महावीर के शब्दों में ——

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे गाम गए नगरे व सजए।
सतिमग्ग च वूहए, समय गोयम! मा पमायए!!

महावीर का यह "शान्ति का मार्ग जैनत्व का अपर नाम है। यह महावीर का मानव धर्म है। यदि हमने इसे समस्त मनुष्यों के लिए दिलदारी से नहीं फैलाया तो हम मानवता को नुकसान पहुँचायेंगे, अपने धर्म के प्रति वफादार नहीं कहला पायेंगे, शासन प्रभावना नहीं कर पायेंगे, जैनत्व की मानवीय उपासना नहीं साध पायेंगे।

जैनत्व तो खरा सोना है। मानवता और सेवा जैसे कई कोहिनूर जड़े है इसके स्वर्णिम मुकुट पर। जैनत्व को आप जितना सस्ता समझते है उतना सस्ता है नहीं यह। जैनत्व एक बहुत बड़ी चीज है और बहुत बड़ी चीज के लिए बहुत बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ती है। मानव जाति के कल्याण के लिए विश्व को इतना बड़ा वरदान शायद कभी नहीं मिला होगा। यह वरदान कोई देवी वरदान नहीं है अपितु अपने ही पैरों पर खड़े मनुष्य के द्वारा उस मानवता को ऊँचा उठाने के लिए सहारा है जिसे निगलने के

थाम ही लिया है तो उसे अभिसिंचित करना, उसके उजाले को हर कोने में दिशा विदिशा में पहुंचाना हर दीप को ज्योतिर्मय करना हमारी जिम्मेदारी बन जाती है। जैन धर्म अपने अनुयायियों से यही अपेक्षा रखता है। क्या हम एक जैन कुल में पैदा होकर उसकी उपेक्षा करेंगे? यदि हमने उसकी अपेक्षाओं की उपेक्षा कर दी तो जैनत्व हमारे लिए शान्ति प्रदायक और रक्षक कैसे बन पाएगा?

मुझे तो जैनत्व के प्रसार की साधना आत्मदर्शन और आत्मशांति की रीढ़ लगती है। वर्तमान परिस्थिति में जन साधारण को हम मात्र अपने गहरे से गहरे और ऊँचे से ऊँचे दार्शनिक आध्यात्मिक विचारों का व्याख्या कर जैनत्व का झंडा घर घर में नहीं फहरा सकते। आम जनता की बौद्धिक क्षमता भी इतनी ऊँची कहाँ होती है कि वह आध्यात्मिक तथा दार्शनिक विचारों की दुरूहता को समझ सके दर्शन के नीरस बोझ को ढो सके। साधारण व्यक्ति तो आकर्षित होता है किसी धर्म के आचरित आचार को देखकर व्यवहार को देखकर उसकी सम्प्रेषणीयता को देखकर। आज के युग में जैनत्व को हमें उन सभी राजमार्गों और पगडंडियों से ले जाना चाहिये जिससे आम जनता के बीच सद्विचार और सदाचार की गंगा यमुना पहुँच सके। जिस जैनत्व में जिस मानवीय धर्म में समता ममता परोपकार, शिक्षाप्रसार पर दुःख कातरता जैसे विश्व कल्याणकारी विचार हों उसे खूब बढ़ाना फैलाना चाहिये। तिलांजलि दे दें हम पद मर्यादा, कुल, जाति सम्प्रदाय भाषा प्रांत की संकीर्णता को उसकी जर्जर दायरे की दीवारों को।

जैन धर्म कोई आज का जन्मा हुआ नन्हा बालक नहीं है। यह वह धर्म है जिसका इतिहास इतना लम्बा है कि इतिहास के मीटर वहाँ तक पहुँच ही नहीं पाते। इतिहासकारों के हाथ जिसकी प्रारम्भिकता को समय के दायरे में समेटने में स्वयं को असमर्थ समझते हैं, जिसे विद्वान लोग बहुत कुछ सोच विचार के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैन धर्म की शुरुआत सृष्टि के आदिकाल से है आदिनाथ के हाथों से है। सृष्टि का उद्भव काल ही वास्तव में जैन धर्म का आदिकाल है। जैन संस्कृति का मूल स्रोत खोजना भारी कठिन है। वैदिक हिन्दू धर्म और जैन धर्म दोनों एक ही गोद में खिल पले हैं। बौद्ध इस्लाम ईसाई आदि धर्म तो इनके सामने कल के नन्हे शिशु हैं।

हालांकि जैन धर्म का उतना बड़ा इतना लम्बा है इतना पुराना है

पर जब हम इसके अनुयायियों की संख्या पर सोचते है तो कुछ और होता है। प्राचीनता की दृष्टि से तो ईसाई धर्म जैन धर्म के आगे आज का नवजात शिशु लगता है किन्तु संख्या की दृष्टि से जैन धर्म ईसाई धर्म के आगे आज का जन्मा बच्चा लगता है। आखिर ऐसा क्या हुआ? हमारी धारा इतनी धीमी क्यों रही? इतने पुराने धर्म में इतनी कृशता क्यों आयी? यह हम सबको संतुलित दिमाग से सोचना चाहिये।

किसी भी धर्म के दार्शनिक सिद्धान्त और नैतिक सामाजिक विचार उसके पौष्टिक तत्त्व होते है। सभी विद्वान यह मानते है कि जैन धर्म के दार्शनिक और नैतिक विचार सर्वोत्कृष्ट है। दुनिया में जैन एक ऐसी धारा है जिसमें धर्म भी है और दर्शन भी। धर्म के दृष्टिकोण से वह सदाचार सिखाता है वहीं दर्शन के दृष्टिकोण से सद्विचार भी। जैन दर्शन तो बड़ा जबरदस्त है। वह परम साध्य और परम बौद्ध है। सम्पूर्ण सत्य और रहस्य को समझने और अपने में विश्व की बौद्धिक स्पर्धा यदि किसी ने अथक प्रयास से की तो वह जैन दर्शन ने। जैन दर्शन गणित और विज्ञान की विजय का विस्मयकारी स्मारक है। प्रज्ञा-बुद्धि की उत्तम पराकाष्ठा है।

संस्कृति और नीति के क्षेत्र में भी जैनत्व विश्व चिंतन का प्रतिनिधित्व करता है। जैन नीति सिखाती है कि औरो को मत सताओ मत बालो, चोरी मत करो जरूरत से ज्यादा सामान मत रखो दूसरो की स्त्रियों को या पुरुषों को बुरी नजर से मत देखो। ये वे मील के पत्थर है जो नैतिकता के मार्ग पर चलने वाले को गुमराह नही होने देते। ससार का कोई भी चिन्तक या धर्म ऐसा नहीं है जो जैन-नीति की इन बातो को गलत बता सके। इन बातो के बिना संस्कृति बनती ही नही है। चूकि जैनत्व ने इतनी विराटता को अपने में समेटा है फिर भी वह आज रुधा रुधा सा है। आज के जैनो के पास सम्पत्ति पदवी सम्मान पहुँच, शिक्षा की कोई कमी नहीं है। फिर भी हम जैनत्व के प्रचार के लिए अपनी आँखे नही खोलते।

यद्यपि बौद्ध धर्म जैन धर्म के बाद का है, पर भारत से इतर देशो में भी इसका प्रसार हुआ। श्रीलका थाइलैंड चीन जापान तिब्बत आदि देशो मे कितना फैला है बौद्ध धर्म। ईसाइयत और इस्लामियत के बादल सारे ससार पर छाये हुए हैं। किन्तु जैनधर्म बाहर नही जा सका है ऐसा क्या हुआ? ससार के समूचे इतिहास मे हिंसा आक्रमण अन्याय अनीति, अराजकता, अपहरण, भीख, धोखा और चोरी जैसे अनैतिक असामाजिक

तत्त्वो को जितना कम जैनो ने अपनाया, उतना कम शायद कोई भी न अपना पाया। आज जहाँ हर धर्म म मासाहार, मदिरा पान येन केन प्रकारेण चलता है वहाँ जैन धर्म ही विश्व के इतिहास म अपवाद बना है। मानवता एव मानव सस्कृति के लिए यह गौरव की बात है। इसलिए मानवता की ससार मे पुन प्राण प्रतिष्ठा करने के लिए जैनत्व का विस्तार अनिवार्य है। प्रबुद्ध लोग जब जैनत्व की उपादेयता समझने लग गये हैं।

मेरी समझ से तो भारतवर्ष के धर्म सदा अन्तर्मुखी रहे है। लेकिन आज के युग म जो धर्म मात्र अन्तर्मुखी बना रहेगा उसकी सख्या म घटोतरी ही होगी बढ़ोतरी नही। धर्म की अन्तर्मुखता को अपनाने के लिए लागो के पास फुरसत ही कहाँ है। इस भागदौड़ और प्रदूषण भरी जिन्दगी म व्यक्ति अन्तर्मुख होने की बाता का सुनना बहुत ज्यादा पसन्द नही करता। आज का ससार आत्मा या मोक्ष का मार्ग नही चाहता, वह चाहता है शान्ति का मार्ग जो अन्तरमुखी भी हा और बहिर्मुखी भी हो। महावीर ने इसी शान्ति के मार्ग की मशाल को घर घर म पहुँचाने का कार्य हमारे हाथा म सोपा है। यदि हम मशाल को घर घर पहुँचाने के लिए कृत सकल्प हो गये है तो सबस पहले हमे युग धर्म को परखना होगा युग के अनुरूप धर्म के तौर तरीको को भी ढालना/बदलना पड़ेगा।

यो तो दुनिया म धर्म के नाम पर हजारो हजारा पथ है। सभी धर्मों म अच्छाइयाँ है। एक धर्म की अपेक्षा दूसरे धर्म को ऊँचा या नीचा कहना बडी टेढ़ी खीर है। आज तक दुनिया म कोई भी धर्म किसी अन्य धर्म को मात न कर पाया। सभी धर्मों म कुछ न कुछ ऐसे तत्त्व निहित हैं जिनसे वह अपनी उत्तमता और उत्कृष्टता की डीग हाँक सके। कुछ समीक्षक अमुक धर्म को सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट बताते है जबकि म जेन धर्म के मस्तक पर सर्वोत्तमता या सर्वोत्कृष्टता का मुखौटा पहनाना नही चाहता। यह तो वह मानवीय धर्म है जिस पर एस विशेषणा के मुकुट फबते नही है। मेरी समझ स जैनत्व का विशेषण सर्वानुकूलता है। वर्तमान काल म सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट धर्म की जरूरत नहीं है। जरूरत है आज सर्वानुकूल धर्म की। यह युग चाहता है एक एसा धर्म एक ऐसा मार्ग जो सब के लिए सहज और अनुकूल बन सके। एक हरिजन और भिखारी भी उतनी ही आसानी से धर्म की उसी राह पर चल सके जितनी आसानी स एक सवर्ण और अमीर चलता है। जैनत्व इसी राह की प्रशस्त भूमिका है। वह निमन्त्रित करता है उसी राह पर चलने के लिए सारी मानव जाति का।

जैन धर्म एक आध्यात्मिक और सामाजिक धर्म है। जैनत्व के प्रथम प्रवर्तक ऋषभदेव ने ससार मे सबसे पहले व्यक्ति व्यक्ति मे बँटे लोगो को एकसूत्र मे बाँधा और उसे समाज/सघ का नाम दिया। समाजीकरण/साधारणीकरण के प्रथम सूत्रधार ऋषभ ही है। वे दुनिया के पहले अध्यापक हैं, जिन्होने अध्यात्म के साथ जीने की कला सिखाई। उन्होने जीवन की सुरक्षा के लिए शस्त्र विद्या सिखाई जीवन के व्यवहार एव विकास के लिए लिखने-पढ़ने की कला सिखाई और जीवन-यापन के लिए खती वाडी सिखाई। मेरी समझ से सामाजिक व्यवस्था बनाने एव उसे कायम रखने के लिए ऋषभदेव आदिनाथ ने जो मेहनत की वह ससार के समाज शास्त्र म समाज निर्माण एव समाज विकास के लिए पहली घटना मानी जानी चाहिये। उनका धर्म सामाजिक धर्म था। भला जो धर्म समाज को धारण नही कर सकता है उसका पालन और पोषण नही कर सकता है, क्या समाज उस धर्म को अपनाने का साहस कर पाएगा? आदिनाथ ने जैनत्व के राजमार्ग को इस ढग से बनाया कि जिस पर ससार दाय और बाये दोनो तरफ आवागमन कर सके।

उन्हाने मानवजाति को भौतिक वेभव भी दिया और आध्यात्मिक/आन्तरिक वैभव भी। अन्तर्मुख होने की प्रेरणा देने के लिए ता प्रत्येक धर्म पनपता है मगर समाज को ऐसे धर्म की जरूरत है जो न केवल अन्तर्मुखी हाने का पथ प्रदर्शित करे अपितु व्यावहारिक आवश्यकताओ की पूर्ति कराने मे भी मददगार हो। भला धर्म की राह पर विकलाग कैसे चलेगा? भूखा पूजा पाठ करेगा या राजी राटी क लिए मेहनत करेगा? जिसके पास रोटी कपड़ा आर मकान का भी घाटा है वह भगवान की पूजा नही करेगा अपितु भगवान को कोसेगा। बुभुक्षित किं न करोति पापम्‌ —— भूखा कौन सा पाप नही कर सकता? अभाव म स्वभाव नही रहता।

आज तो ससार म भौतिकता सर्वत्र प्रभावी है। लाकिक सुख सुविधाएँ प्रत्येक व्यक्ति चाहता है ससारी भी धार्मिक भी। इसके लिए कोई व्यक्ति विशेष या समाज/सस्था विशेष जिम्मेदार नही है। यह ता काल विशेष का प्रभाव है। ये कलयुग के सामयिक कदम हैं आर महावीर की भाषा म अवसर्पिणी काल पुरुष क पचम हस्ताक्षर है।

आज हर आदमी सबसे पहल अपन जीवन निर्वाह की चाजा को बटोरना चाहता है बाद म किसी और काम को करन की साचता है। फिर

वह काम चाहे ससार का हो या भगवान् का। इसलिए जो लोग दूसरो को धर्म से जोड़ना चाहते है उसके लिए अधिक से अधिक प्रेरणा देते हैं, उन्हे लोगो की उन आवश्यकताओ को भी देखना-पूरना चाहिये जिनके कारण वे धर्म मे अपना समय नही दे पाते है। वर्तमान सभ्यता आत्म मुक्ति उतनी नही चाहती जितनी आत्मशान्ति और अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति चाहती है। शान्ति की राह पर चलने के बाद मुक्ति को गन्तव्य बनाया जा सकता है। अत प्रत्येक जरूरतमद आदमी की जरूरते पूरी करनी चाहिये चाहे वह किसी भी जाति के दायरे मे क्यो न बधा हो। जैन जो जीव-मात्र के लिए 'मित्ती मे सव्व भूएसु' कहकर मैत्री का पावन झरना अपने मन मे बहाए रखता है उसे मानवता मे विजातीयता का बोध ही क्या हो!

जैन लोग आज जितना खर्च अपने नए मदिरो, स्थानको उपाश्रयो मे या उनके बनाने मे करते हैं उसके लिए श्रद्धा से बोलियाँ बोलते हैं। एक एक साधु या आचार्य का चातुर्मास कराने मे बिना किसी हिचक के लाखो रुपये खर्च करते है। जब इतनी ही प्रेम और श्रद्धा भरी भावना मानवता के प्रति होगी तभी जैनत्व की बासुरी के सुर आम जनता मे बजेगे।

जैन वही है जो स्वय पर स्वय की विजय करने का अभ्यास करता है इन्द्रियो के लपलपाते लक्ष्यो को पराजित करने मे लगा रहता है। ऐसा कर वह क्षुद्र स्वार्थों को चुनौती देता है। स्वार्थ की चट्टान ध्वस्त हो जाने पर उसका अन्तर स्रोत फूटता हुआ धरती के दूर दराजो तक हरा भरा कर देता है। वह मात्र स्वय को ही नहीं झाकता अपितु स्वय मे सारे लोक को झाकता है। वह एक दूसरे के दु ख सुख को अपना दु ख सुख समझता है। फिर वह जो अपने लिए चाहता है वही दूसरो के लिए भी चाहता है। जो अपने लिए नहीं चाहता वह औरो के लिए भी नहीं चाहता। जैनत्व की यह माटी पहचान है। महावीर की भाषा मे एतियग जिणसासण, यही जिनशासन है।

ज इच्छसि अप्पणतो, ज च ण इच्छसि अप्पणतो।
त इच्छ परस्स वि य एतियगं जिणसासण।।

जैनत्व की इस पहचान को वैष्णव ने हू बहू धार लिया। वैष्णव ने अपनी पहचान के लिए इस कृतित्व को अपना व्यक्तित्व माना। नरसेंहु भगत का यह पद है— वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे पर दु खे उपकार करे तोय मन अभिमान न आणे रे। यह मानवीय पहचान

है। गाधीजी की रग रग मे इस गीत की कड़ियाँ कूदी-फाँदी है। वैष्णव वह है जो दूसरो की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझता है आर पीड़ित लोगो के लिए यदि कुछ करता है तो उसका अभिमान मन मे न करे। गहराई म जाकर देखता हूँ तो लगता है कि जो पहचान वैष्णव की है वही जैन की भी है। हकीकत तो यह है कि दोनो म कोई फर्क नही है। नरसयूँ के इस पद मे 'वैष्णव' के स्थान पर 'जैन' रखकर जैनत्व के साथ उसकी तालमेल वैठाने पर जैन का परिचय पत्र भी हमारे ओठो से फड़कने लगेगा। जब यह सूत्र ओठो से, फिर दिल से फिर जीवन म गूजेगा तो आपके लिए इससे बढ़कर धर्माचरण और शास्त्र पठन दूसरा कोई न होगा।

दीन, दलित पीड़ित लोगो की पुकार को सुनिये। व अपने उद्धार के लिए मानवता के उत्तराधिकारी बने लोगो को पुकार रहे है। वे प्यासे है हमारे स्नेह, करुणा और प्यार घुले मीठे शरबत को पीने के लिए। अभी गुजरात और राजस्थान जैसे राज्यो मे इस सदी का सबसे बड़ा अकाल पड़ा है। यह एक स्वर्णिम अवसर मिला है हम सब लोगो को पुण्य की कमाई का मानवता और आत्म समानता बनाम जैनत्व के प्रसार का।

धन दौलत पाकर भी सेवा
अगर किसी की कर न सका।
दया भाव ला दु खित दिल के
जख्मो को जो भर न सका।।
वह नर अपने जीवन मे
सुख शान्ति कहाँ से पाएगा।
ठुकराता है, जो औरो को
स्वय ठोकरे खाएगा।।

खोल दे हम अपनी दिल की तिजोरियो को वहा द प्रेम की नदियो को अपना ल दो रोटी के लिए मुँहताज बने लोगो को बुझा दे उनके दु खदर्द की आग को। यदि हमने ऐसा कर दिया तो वह दिन दूर नही है जब लोग बिना निमन्त्रण दिये घर के सदस्य की तरह हमारे जैनत्व के झडे के नीचे आकर हमारे साथ होगे। लगेगा कि इस झुलसाते ससार से उबारने के लिए यहाँ कोई हाथ थामने वाला भी है।

जैन धर्म की परम्परा म ग्यारहवी सदी म आचार्य जिनदत्तसूरि नाम के एक ऐसे राष्ट्र सत हुए जिन्होने आम जनता के दु ख दर्दो को गहराई से समझा और उसे दूर करने के लिए मरते दम तक कोशिश की । जनता ने

आचार्य की आत्मा में राम की आत्मा का [illegible] किया और न
जन उद्धारक' एवं 'जन मसीहा' के रूप में स्वीकार किया। जिन्होंने
मानवता को जो सम्मान दिया उसे सच्चाई की राह से जोड़ने का जो
प्रयास किया क्या विश्व का इतिहास उसे भुला पाएगा? हजारों लाख
लोग उस आचार्य की पगडंडी पर चले और उन्होंने जैनत्व के मानव
धर्म को बड़े गर्व के साथ अपनाया। न केवल उन्होंने अपनाया, वरन् उनकी
पीढ़ी दर पीढ़ी भी इस धर्म की अनुयायी बनी रही है। आज भी ऐसे लाखों
जैन है जिन्हें जैनत्व आचार्य जिनदत्तसूरि के कारण ही पैतृक सम्पत्ति के
रूप में मिला हुआ है और वे उस सम्पत्ति का उपयोग भी करते हैं।

आज विश्व को जैनत्व की खास जरूरत है। यदि जैन समाज उसे अपनी सेवाएँ दे, तो विश्व इसका बहुत बड़ा उपकार मानेगा। शान्ति एवं भाईचारे की अमृत भावना का प्रसारण विश्व का हर देश करना चाहता है और इस शान्ति तथा भाईचारे का मिला-जुला रूप ही तो जैनत्व है। समय का तकाजा है कि हम अशान्ति को मिटाने के लिए, भाईचारे को बढ़ाने के लिए सेवा धर्म को धर्माचरण का साधन नहीं वरन् साध्य बना ले। जब हम साधन को साध्य बनाएँगे तभी फल निष्पन्न होगा। चाहे कोई जैन श्रावक हो या साधु सेवा/वैयावृत्य को अपनी साधना का प्रमुख अंग बना ले जितना महत्त्व वह आत्मकल्याण के लिए सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र को देता है उतना ही महत्त्व दे सम्यग् सेवा को भी । कम से-कम वे लोग तो सेवा को अवश्य प्राथमिकता दे जो शासन प्रभावना के लिए दिलोजान से कृत सकल्प है जैन धर्म को विश्व व्यापी बनाने के सपने देखते है। मेरी समझ से आज वह समय आ गया है जब दुनिया को जैन धर्म की सेवाओं की जरूरत है।

सेवा के मामले मे मै मदर टेरेसा का नाम बड़े आदर के साथ लेता हूँ। उसने सेवा धर्म को बखूबी निभाया है। उसके हृदय सागर मे सेवा का रस अतिशय उमड़ा है। सेवा के क्षेत्र में टेरेसा के योगदान को ससार कभी नही भुला पाएगा। उसकी मानव सेवा के कारण ही उसे ससार का सबसे बड़ा नोबल पुरस्कार मिला। वह दीन दु खी अनाथ लोगों की माँ है। मेरी टेरेसा से भेट हुई थी। करीब ढाई तीन घटे हम लोग साथ साथ रहे। टेरेसा ने मुझे अपने विभिन्न सेवा केन्द्र दिखलाए। मै उसकी सेवा भावना से इतना प्रभावित हुआ कि मैंने अपने खून की एक एक बूँद मानवता की सेवा के लिए न्यौछावर करने की कसम जैसी ले ली। यदि आपको सेवा की भावना सीखनी हो धर्म के प्रचार प्रसार का फार्मुला जानना हो तो जाइये टेरेसा के

सेवा केन्द्रो मे, वहाँ असली शिक्षण मिलेगा आँखो के सामने क्रियान्वित होता हुआ।

यदि आप जैनत्व को अपनी जिन्दगी मे उतारना चाहते है तो जाइये अस्पतालो मे। वहाँ दर्द से लोग कराह रहे है। उन्हे देखकर बिना किसी साधु या आगम की प्रेरणा के आपके भीतर उनके दुख दर्द को दूर करने की करुणा उमड़ेगी। आप उनके दुख मे डूबी निगाहो मे आशा की चमक दियो की कोशिश करो। करुणा की भावना का अतिरेक होने पर बहुधा ऐसा लगता कि जो आनन्द मन्दिर मे पूजा पाठ करने मे आता है वही आनन्द दीन-दुखियो की सेवा मे आ रहा है। यह मानवीय सेवा वास्तव मे भगवत् पूजा ही है। गहराई मे जाकर मानता हूँ तो ऐसा लगता है कि दोनो मे कोई फर्क ही नही है। दोनो मे ही प्रतिबिम्बित है हमारा अपना निजी बिम्ब।

प्राय हम सभी भगवत् पूजा करते है और पूजा तथा भक्तिमूलक क्रियाओ को धर्म का सबसे प्रधान कार्य समझते है जबकि भगवान की पूजा और जनता की सेवा मे जन सेवा ही मुख्य है। महावीर के शिष्य गौतम ने स्वय भगवान् महावीर से भी इस बात का खुलासा किया था। गौतम ने पूछा—प्रभो! एक व्यक्ति तो ऐसा है जो हमेशा आपकी चरण सेवा करता है प्रत्येक क्षण आपकी भक्ति और सेवा मे जुटा हुआ है और वह ऐसा करने मे ही अपना कल्याण समझता है। जबकि दूसरा व्यक्ति ऐसा है जो आपका भक्त तो है मगर वेदना और दर्द मे कराहते अनाथ दीन दुखियो की सेवा मे ही उसका अधिकाश समय गुजर जाता है वह आपकी चरण सेवा एव पूजा प्रार्थना के लिए समय ही नही निकाल पाता है। प्रभो! इन दोनो मे कौन श्रेष्ठ है? आप किसे धन्य कहेगे? आपका आशीर्वाद दोनो मे किसे ज्यादा मिलेगा? भगवान् महावीर ने गौतम को जो जवाब दिया वह अपने आप मे अप्रतिम है। भगवान् ने कहा गोयमा! जे गिलाण पडियरई से धन्ने! धन्य वही है जो ग्लान की सेवा करता है। मेरी पूजा की अपेक्षा दीन, दुखी और अनाथजनो की सेवा करनी कही अधिक श्रेयस्कर है शिवकर है सुन्दर है। वस्तुत जो दीन दुखी निर्बल प्रताड़ित लोगो की सेवा करता है उसे मेरे अनन्त आशीर्वाद मिलते है। जन सेवा वास्तव मे जिन सेवा है। काश! हम इस भगवत्वाणी को आज माने।

जब मैने टेरेसा के सेवा-केन्द्रो का सर्वेक्षण किया तो मेरे मन मे ऐसे विचार अकुरित हुए कि कितना अच्छा हो जैन महिलाएँ/श्राविकाएँ भी टेरेसा और उनकी शिष्याओ की तरह मानवता की सेवा मे कुछ हाथ बँटाए। यदि ऐसा हो गया तो मानवता की तो प्राण प्रतिष्ठा होगी ही, जैनत्व का भी

[illegible] होगा। [illegible] धर्म की ओर न आया था इस [illegible] निर्धनों को सहारा, [illegible] को शिक्षा, रोगियों को ईलाज और भूखों को भोजन मिलेगा तो भला लोग उस धर्म के प्रति श्रद्धा न समर्पित [illegible] देखिये आज टेरेसा ने इसी मानव सेवा के माध्यम से ईसाइयत का कितना फैलाया। जिस देश में कभी ईसाइयत के बीज तक न थे, आज वहाँ ईसाइयत के बड़े बड़े वृक्ष उग आए है। मैंने दक्षिण भारत की [illegible] के दौरान यह अनुभव किया कि यहाँ ईसाइयत आकाश को छू रही है। गाँव गाँव में उनके चर्च, उनके स्कूल और विविध प्रकार के सेवा केन्द्र खुले हुए है। वे ईसाई धर्म को स्वीकार करने वालों को पूरी तरह की व्यावहारिक सुविधाएँ भी देते है।

हम भी इसी तरह अपनाएँ सेवा की उदात्त भावना को। सेवा करने के लिए पहली शर्त यही है कि वह व्यक्ति को नही, उसके व्यक्तित्व को महत्त्व दे जाति को नहीं, प्राणी को महत्त्व दे। टेरेसा जैसे लोगो द्वारा बनाये गये सस्थाओ/सेवा केन्द्रो को मै मानवता का मन्दिर समझता हू। जहाँ इन्सानियत की पूजा होती है, वहाँ भगवत्ता की रोशनी चन्दन सी बौछार करती है। दीन दुखी, विकलाग की सेवा नर बनाम नारायण की सेवा है। जो गरीबो की सुनेगा उसकी भगवान सुनेगा।

गरीबो की सुनो वो तुम्हारी सुनेगा।
तुम एक पैसा दोगे, वो दस लाख देगा।।

सेवा का प्रकाश तो ऐसा है कि यहाँ जितना बाँटोगे, उतना ही पाओगे। आत्मतोष तो उतना पाओगे, जितना बाँटा है उससे भी अधिक। मेरा तो विश्वास है जो गरीबो के लिए कुछ सविभाग करता है उसे जितना सविभाग किया है उससे भी ज्यादा मिल जाता है। टेरेसा अकेली पर ज्यो ज्यो बाँटा त्यो त्यो उसकी सम्पदा बढ़ी।

ज्योति से ज्योति जलाते चलो
प्रेम की गगा बहाते चलो।

कहा जाता है सेवा मे मेवा है। यह मेवा चाहे धर्म का हो या राजनीति का या और किसी का। सेवा तो मेवा ही है। आप सब जानते हैं एम जी रामचन्द्रन को। उन्होने एक फार्मूला अपनाया। जो फार्मूला टेरेसा ने अपने धर्म के प्रसार के लिए अपनाया वही रामचन्द्रन् ने अपनी राजनैतिक पार्टी के प्रसार के लिए अपनाया। रामचन्द्रन् दस वर्ष तक मुख्यमन्त्री रहे। स्वतन्त्र भारत के इतिहास मे ज्योति बसु के बाद रामचन्द्रन्

का कार्यकाल सबसे लम्बा रहा। दफ्तर की बजाय वे अस्पताल मे ही ज्यादा रहे पर तमिलनाडु म कोई भी ऐसी ताकत न थी जो उन्ह पद से इस्तीफा दिलवा सके। जब नेहरू के पैर की हड्डी टूट गयी और वे लड़खडाते सदन म पहुँचे तो एक नेता ने कहा था कि जो खुद अपने पैरो पर नही चल पा रहा है, वह देश को कैसे चलाएगा? अस्पताल म रहकर या पगु बनी हालत म देश चलाया जा सकता है? पर रामचन्द्रन् ऐसे नेता हुए जिन्होने यह सिद्ध कर दिखाया कि व्यक्ति न केवल असताल म रहकर वरन् एक एक वर्ष विदेश मे रहकर भी देश म सेवा, प्रेम ओर भाईचारे की भावना स शासन कर सकता है।

एक राजनेता जिसे लोग प्राय कर भ्रष्टाचारी समझते हैं वह भी सवा के बलबूते पर जन जन का मसीहा भी बन सकता है। गाधी के बाद राजनीति के क्षेत्र मे यदि कोई जन जन का प्यारा बन पाया तो वह मेरी समझ से रामचन्द्रन् के अलावा और कोई नही है। मैने सम्पूर्ण तमिलनाडु की पदयात्रा की, गाँव-गाँव घूमा वहाँ की सस्कृति जानी। मैने देखा कि लोग रामचन्द्रन् को दिलोजान से चाहते थे। मैने घरा मे इनके चित्रा की पूजा करते हुए भी देखा। रामचन्द्रन् ने बच्चा को दिन का भोजन मुफ्त मुहैया कराया और उनके इस लोकप्रिय मुफ्त भोजन को तमिलनाडु की जनता राम प्रसादम्' भी कहने लग गयी।

मैने स्कूला म दखा कि नन्ह नन्ह बच्चे कितनी प्रेम भावना के साथ भोजन कर रहे हैं। जो बच्चे दूध मुँहे हैं वे भी विद्यालयो मे आये हुए है मुफ्त भोजन करने के लिए नही अपितु सरस्वती का प्रसाद पाने के लिए अपने नता के प्रति आस्था जताने के लिए।

रामचन्द्रन् चल गये, पर जाने से पहले अमरता के पदचिन्ह छोड़ गये। मैं तो कहूँगा कि सभी राजनतिक पार्टिया को अपनी सत्ता और अपने पैर जमाने के लिए रामचन्द्रन् की तरह सेवा को प्राथमिकता देनी चाहिये। मेरे विचार से रामचन्द्रन् की ...और लाक प्रियता इसी सवा म ही छिपी हुई थी। मैने ...तना कहा, वह राजनीति के लिए नहीं अपितु सेवा ...ा स प्रभावित होकर। यदि हम लोग भी अपने धर्म की ... अन्तिम छार तक पहुँचाना चाहते हैं, तो हम ऐसे ही ... हाथ म होगा जिनका प्रभाव अचूक है, जो

सेवा तो शाश्वत कल्पवृक्ष

बहुमुखी [illegible] होगा। [illegible] की ओर [illegible]
विकलांगों को सहारा [illegible] और भूखे को
भोजन मिलेगा तो भला [illegible]
देखिये मदर टेरेसा ने इसी मानव सेवा के माध्यम से ईसाइयत को कितना
फैलाया। जिस देश में अभी ईसाइयत के [illegible] आज वहाँ
ईसाइयत के बड़े बड़े [illegible] उग आए है। मैंने दक्षिण भारत की [illegible] यात्रा
के दौरान यह अनुभव किया कि वहाँ ईसाइयत आकाश को छू रही है।
गाँव गाँव में उनके चर्च, उनकी स्कूल और विविध प्रकार के सेवा केन्द्र खुले
हुए है। वे ईसाई धर्म को स्वीकार करने वालों को पूरी तरह की व्यावहारिक
सुविधाएँ भी देते है।

हम भी इसी तरह अपनाएँ सेवा की उदात्त भावना को। सेवा करने के लिए पहली शर्त यही है कि वह व्यक्ति को नहीं, उसके व्यक्तित्व को महत्त्व दे जाति को नहीं प्राणी को महत्त्व दे। टेरेसा जैसे लोगों द्वारा बनाये गये संस्थानों/सेवा केन्द्रों को मैं मानवता का मन्दिर समझता हूँ। जहाँ इन्सानियत की पूजा होती है वहाँ भगवत्ता की रोशनी चन्दा सी बौछार करती है। दीन, दुःखी विकलांग की सेवा [illegible] नारायण की सेवा है। जो गरीबों की सुनेगा उसकी भगवान सुनेगा।

गरीबों की सुनो वो तुम्हारी सुनेगा।
तुम एक पैसा दोगे वो दस लाख देगा।।

सेवा का प्रकाश तो ऐसा है कि यहाँ जितना बाँटोगे उतना ही पाओगे। आत्मतोष तो उतना पाओगे जितना बाँटा है उससे भी अधिक। मेरा तो विश्वास है जो गरीबों के लिए कुछ संविभाग करता है, उसे [illegible] संविभाग किया है उससे भी ज्यादा मिल जाता है। टेरेसा अकेली, ज्यों-ज्यों बाँटा, त्यों त्यों उसकी सम्पदा बढ़ी।

ज्योति से ज्योति जलाते चलो
प्रेम की गंगा बहाते चलो।

कहा जाता है सेवा में मेवा है। यह मेवा चाहे धर्म का हो या [illegible] का या और किसी का। सेवा तो मेवा ही है। आप सब जानते है [illegible] जी रामचन्द्रन को। उन्होंने एक फार्मूला अपनाया। जो फार्मूला टेरेसा अपने धर्म के प्रसार के लिए अपनाया वही रामचन्द्रन् ने अपनी पार्टी के प्रसार के लिए अपनाया। रामचन्द्रन् दस वर्ष तक [illegible] रहे। स्वतन्त्र भारत के इतिहास में ज्योति बसु के बाद रामचन्द्रन्

विवाह पर भी सर्वत्याग कर दिया। महावीर ने अपने जीवानन्द वैद्य के भव में ग्लान मुनि की जो सेवा की वह आत्म शोधन में बड़ी सहायक रही। महावीर के शिष्य गौतम ने सेवा रस से अभिभूत होकर ही अष्टापद-तीर्थ पर पांच सौ तापस साधुओं को लब्धि प्रयोग से आहार करवाया अपनी मर्यादाओं की उपेक्षा करके भी सेवा को प्रमुखता दी। भर्तृहरि ने ठीक ही कहा कि 'सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः' सेवाधर्म परम गहन है और योगियों की बुद्धि से भी परे है।

महावीर और बुद्ध ने जनता के हित के लिए ही गाँव गाँव में उपदेश दिया—परहियाए उवदिट्ठं। महावीर जी अभिनिष्क्रमण करते समय एक देवदूष्य वस्त्र साथ ले गए थे किन्तु जब उनके पास एक ब्राह्मण भीख मांगने आया तो उन्होंने अपना वह वस्त्र उसे दे दिया और स्वयं ने नग्नता स्वीकार कर ली। महाराज रन्तिदेव के मन में दीन दुखियों के प्रति ऐसी भावना थी कि उन्होंने कई दिनों के बाद मिले भोजन को भी एक याचक चण्डाल भिखारी को दे दिया था। नन्दीषेण मुनि तो सेवा के जबरदस्त उपासक रहे जिन्होंने सेवा के बल से ही केवल ज्ञान/परम ज्ञान पाया। और यही कारण है कि भगवान महावीर ने ऐसे लोगों के लिए कहा कि सेवा से भगवत्ता मिलती है तीर्थंकरत्व भी प्राप्त होता है। रामकृष्ण इस मामले में एक अनूठे उदाहरण हैं जो मरते दम तक मानव सेवा करते रहे। गांधी द्वारा जो हरिजनोद्धार अभियान चलाया गया वह अनूठी सेवा ही थी मानवता की। एलिजाबेथ रानीमाजी टेरेसा विचक्षणश्री मृगावतीश्री जैसी स्त्रियों ने गजब का प्रभाव दिया मानो सेवा के बलबूते पर। सेवा करके दुश्मन के दिल को भी जीता जा सकता है मित्र का दिल जीतें इसमें कोई नई बात नहीं है। जिसमें सेवा का गुण हो जनता पर उसी आदमी का असर पड़ता है।

भगवान महावीर ने सेवा को तप माना है। उपवास करने की अपेक्षा भी सेवा करना ज्यादा फलदायक है। हकीकत तो यह है कि बिना सेवाभावना के उपवास भी कर्म निर्जरा में फल नहीं दे पाता है। 'वेयावच्चेण तित्थयर नामगोत्त कम्मनिबंधई।' सेवा से व्यक्ति तीर्थंकरत्व/ईश्वरत्व की गरिमा पा सकता है। सेवा ही तो वह माध्यम है जिससे अनेक सद्गुण बिना बुलाये आ जाते हैं। गुण ग्राहकता, विनयशीलता, श्रद्धा भक्ति वात्सल्य आत्मीयता आत्म समाधान सद्पात्र की प्राप्ति सम्यकत्व तप पूजा, कीर्ति ऐसे अनेक गुण रत्न है जो सेवा की सन्दूक में रहते हैं। महावीर

के शब्दों में—

[illegible]

[illegible]

इसलिए [illegible] में कहा [illegible] है अगर [illegible] किसी [illegible] की सेवा करो। जिसकी तुम सेवा करते जा रहे हैं [illegible] पात्रता [illegible] हो। जब सेवा करने मात्र में [illegible] होती है तो उसमें पात्र अपात्र का विचार करने से भी क्या लाभ? यदि [illegible] कभी भी किसी की सेवा करने का मौका मिल जाये तो [illegible] जरूरत पड़ने पर जो व्यक्ति काम आता है वह धन्य है।

एक पुरानी घटना है। किसी वेश्यालय के पास से एक साधु गुजर रहा था। वेश्यालय की प्रधान गणिका साधु के रूप पर मुग्ध हो गई। उसने साधु को बुलाया। साधु ने कुछ सोचा और कहा कि मैं उस समय तुम्हारे पास आऊँगा जब तुम अकेली रहोगी। गणिका ने साधु के वचन पर विश्वास कर लिया और उसे जाने दिया।

साधु चला गया पर वापस लौटकर नहीं आया। गणिका ने बहुत प्रतीक्षा की। दुर्भाग्यवश गणिका बीमार पड़ गई। उसे कोढ़ का रोग हो गया। रोग इतना भयंकर हो गया कि कोई उसके पास न फटकता। रोग कहीं सारे शहर में न फैल जाये इस दृष्टि से गणिका को नगर से बाहर निकलवा दिया गया। बिचारी गणिका शहर के बाहर अकेली पड़ी पड़ी तड़प रही है। मगर उसकी पुकार कोई नहीं सुनता। उसकी आँखों ने भगवान से दया की भीख माँगी। आँखें डबडबा गईं। पलकें मुँद गईं। जब वापस खुलीं तो उसने अपने पास उसी साधु को पाया जिसने उस एकान्त में आने का वचन दिया था। चूंकि वेश्या साधु से प्रेम करती थी अतः उसने कहा साधु! तुम अब आए हो? साधु ने कहा हाँ! मैं अब आया हूँ। मेरी जरूरत तुम्हें अभी ही है। लो मैं तुम्हारे घाव साफ करता हूँ। मुझे सेवा का मौका दो। गणिका की आँख आँसुओं से भर गयी। बोली तुम सच्चे साधु हो, तुम्हारे में साधुता का सागर लहरा रहा है। मुझे क्षमा कर दो।

साधु ने उस गणिका की सेवा की। साधु के वात्सल्य भरे आत्मीय हाथों से वह कुछ दिनों में स्वस्थ हो गई। उसने भी जन जन की सेवा के लिए वही राह अपनायी साधु जिसका राही था। वह भी साध्वी भिक्षुणी बन गई।

ऐसे परिवर्तन हुआ था एक वेश्या का साध्वी के रूप में। भगवान

महावीर कहते हैं कि एसे लोगो की सेवा करो जिनकी स्थिति रुग्ण वेश्या जैसी है। जो मार्ग मे चलने से थक गये है उनकी सेवा करो। चोरो की हिसक पशुओ की राजा द्वारा पीड़ित लोगो की प्लेग आदि रोगो से पीड़ित लोगो की, अकाल से पीड़ित लोगो की भी सेवा करो। उनकी सार सम्भाल करो रक्षा करो।

अद्घाणतेण सावद रायणदी रोघणासिवे ओभे।
वेज्जावच्च अत्त सगह सारक्खणो वेद।।

भगवान की आज्ञानुसार ऐसा करके आप आत्म धर्म का पालन करेगे। चोर को भी ईमानदार और पीडित को भी सुखी जीवन प्रदान करेगे। ऐसा करके आप धर्म भावना का उन लोगो म भी प्रसार कर देगे जिन पर ससार थूकता है नफरत करता हे। यदि आप इस तरह धर्म भावना को प्रसारित करने मे सफल हो गये तो आप धार्मिक और शासन प्रभावना एव शासन-अनुशासन के लिए प्रयत्नशील कहे जायेगे।

किसी उपाश्रय मे बैठकर माला जपकर स्तोत्र बोलकर हम अपने को धार्मिक समझकर सन्तुष्ट हो जाएँ किन्तु इतना ही करके हम सच्चे धार्मिक और धर्म प्रभावक नही कहे जा सकते। सच्चा धार्मिक और धर्म प्रभावक तो वह है जो अपनी जाति अपने धर्म अपने देश अपने सघ के बन्धनो को त्यागकर अपने को मानवता की सेवा मे न्यौछावर कर दे। फिर चाहे वह मानव चाहे किसी भी देश भाषा या प्रान्त का क्यो न हो। ऐसे व्यक्तियो की सेवा करके हम उसे अपने व्यक्तित्व की ओर ही आकृष्ट नही करते अपितु उसके समक्ष अपने धर्म की महानता उदारता एव विश्व बन्धुत्व के भावो को भी पेश करते है। परिणाम स्वरूप वह व्यक्ति हमारे धर्म का अनन्य भक्त हो जाता है।

धर्म का प्रचार धर्म के सकुचित विचारो से नहीं होता विशाल हृदय से होता हे जिसमे जैन धर्म तो अनेकान्तवादी और स्याद्वादी है। इसको तो उदार होना चाहिये। हमे उदारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए जातीयता को महत्व नही देना है। महावीर तो जातिवाद के उन्मूलक हैं। समग्र मानव जाति एक है। उसमे जाति वर्ण वर्ग पथ धन आदि के भेद कैसे?

यद्यपि समाज म दो ही वर्ग है अमीर और गरीब। पर पुराने मनीषियो ने चार वर्ग बनाये—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र। चूकि वे मनीषी सत थे ओर सत धन से दूर रहना चाहते हैं। अत उन्होने अमीर जाति और गरीब जाति न बनाकर ब्राह्मण जाति क्षत्रिय जाति आदि बनायी।

मानव समाज को इन चार भागों में बाँटो का काम अधिकांशत धर्म के द्वारा ही हुआ। इस वर्ग विभाग में अहमन्यता है, सेवा करना की नहीं, अपितु दूसरो से सेवा करवाने की भावना अधिक बलवती है।

इस वर्ण व्यवस्था के बास का ऊपरी सिरा ब्राह्मण है और निचला सिरा शुद्र है। शुद्र का काम है सबकी सेवा करना। सब का मतलब ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य है। वैश्य का काम है ब्राह्मण, क्षत्रिय की सेवा करना और शूद्र से सेवा लेना। क्षत्रिय का काम है ब्राह्मण की सेवा करना और वैश्य, शूद्र से सेवा करवाना। ब्राह्मण का काम बताया गया सब से सेवा लेना। चूंकि सबसे सेवा करवानी है। अत दूसरो की सेवा करने का तो प्रश्न ही नही उठता। महावीर हुए ऐसे जिन्होने सबकी सेवा करने की बात कही फिर चाहे कोई बास के ऊपर चढ़ा हो या नीचे कुचलता हो। यदि महावीर के भावो को मै खुली भाषा मे कहूँ तो यह वर्ग भेद एक दृष्टि से अच्छा ही हुआ जो शूद्र लोगो को दूसरो की सेवा करने का बलात् मौका मिला।

चूंकि महावीर की भाषा मे तो सेवा के बल से तीर्थंकर गोत्र पाया जा सकता है अत सेवा करने वाले शूद्र वर्ण व्यवस्था के बास के सिरे पर बैठाने लायक बने या नीचे इसका निर्णय आप ही करे। यद्यपि वर्ण-व्यवस्था का सम्बन्ध समाज से था न कि धर्म से पर धर्म से जोड़े बिना इस वर्ण व्यवस्था को कौन स्वीकार करता? चूंकि भारतीय धर्म भीरु और पाप भीरु है इसलिए उसने धर्म का रास्ता बताने वालो की इस बात को स्वर्ग का रास्ता समझ लिया और उल्लघन करने वालो के लिए नरक का कूआँ। भला जो अछूत घर मे पैदा हुआ है अछूत रूप मे जीवाया जा रहा है और अछूत के रूप मे मर जाता है तो ससार मे ऐसी कौन सी शक्ति है जो उसे छूत और पवित्र बना सके। ऐसी शक्ति धर्म है। चूंकि महावीर के जमाने मे धर्म भी उन्हे अछूत कहता था अत महावीर के लिए जरूरी था कि वे धर्म के चन्दन वृक्ष पर लगे सर्पो को हटाने मे अपनी वीरता दिखाये। महावीर सफल हुए। उन्होने सर्पो और कांटो को हटाया ससार के नन्दनवन से। महावीर ने ऐसा करके सेवा की भावना को, धर्म-प्रसार की कामना को पैरो से उठाकर माथे पर मुकुट की तरह चढ़ाया। अत जैन धर्म एक ऐसा पथ है जो मानवता को सम्मान देना सिखाता है।

यद्यपि धर्म के खाते मे तप का जप का पूजा का महत्व है, पर मानवता को जीवन्त बनाने वाली सेवा करुणा दया मित्रता आत्म समानता की अलग ही गरिमा महिमा है।

मैंने सुना है कि एक तपस्वी महाराज और जन सेवक किसी दुर्घटना मे मर गए। दोनो ही स्वर्ग गए। देवताओ ने दोनो का स्वागत किया। स्वर्गीय मुकुट पहनाए, किन्तु थोड़ा फर्क था। तपस्वी को सोने का मुकुट पहनाया गया और जनसेवक को हीरो का। तपस्वी ने इसका विरोध किया। कहा मर्त्यलोक मे तो अन्याय होता ही है क्या स्वर्ग लोक मे भी होता है? यह भेद भाव क्यो?' इन्द्र ने कहा—महाराज! सेवा भी तप है। तपस्वी बोला पर इस जन सेवक के अतिरिक्त हीरे जड़े हैं। इन्द्र ने कहा ये हीरे और कुछ नही है, जन सेवा मे करुणा से उपजे आसू है। सेवा के लिए जनमा करुणा का हर आसू हीरा बनता है।

हमे भी बहाने हैं ऐसे करुणाद्रवित आसू ताकि बन सके वे हीरे। इससे आपका भी कल्याण होगा और दुनिया का भी। यदि आप सच्चे जैन है, तो जरूर बहाएँगे ऐसे आसू। इन आसुओ के बिना जैनत्व की भूमि सूखी है।

आजकल धर्म की पहचान अपने नाम के साथ वेशभूषा माला चन्दन आदि के द्वारा होती है। जबकि धर्म की पहचान हृदय की विशालता समाजिक सेवा जातिवाद की उन्मूलनता मानवता की आराधना से होनी चाहिये। धर्म आपको बुलाता है लेकिन धर्म की आवाज को सुननेवाले कौन/कहाँ है? धर्म आपके सामने है लेकिन आप धर्म को देखकर ऑख मूद लेते हैं, नाक भौंह सिकोड़ लेते हैं। धर्म तो चाहता है आप सबका उद्धार हो, पर आप उससे दूर भगेगे तो 'धर्मो रक्षति रक्षित' का सूत्र कैसे फलेगा। पिता से पुत्र दूर भगेगा तो पुत्र की जिम्मेदारियाँ कैसे निभा सकेगा? जब किसी व्यक्ति के साथ अपने पद ज्ञान धन शक्ति की उच्चता का अह बना रहता है तब तक वह धर्म की सच्चाई से दूर रहता है।

सच्चा धार्मिक वही हो सकता है जिसम समता और विनम्रता के भाव कूटकूट कर भरे हो। 'लघुता से प्रभुता मिले प्रभुता से प्रभु दूर। अगर प्रभु को अपने पास लाना है तो अपने को सबसे छोटा और सबका सेवक समझना होगा। यदि हम चाहते है कि हमारे धर्म मे दूसरे लोग भी सम्मिलित हो तो हमे अपने जातिवाद के घट को झुकाना होगा। बिना झुके घड़े मे पानी भर नही सकता चाह घड़ा नदी के बीच भी क्यो न रहे। चाह हम लाखो बार कहते रहे कि प्रधान सर्वधर्माणाम् जैन जयति शासनम् लेकिन धर्म की जय और धर्म की प्रधानता या कहने-कहलाने मात्र से नही

होती। हम उसके लिए भूमिका बनानी होगी और नये अध्याय लिखने हमें हम सगठित रूप से जरूरतमद लोगो की सेवा मे जुट जाये। अन्यथा जैन नय तो बन जायेगे, पर जब तक नये बनने वाले जैना को आप अपने समाज मे यथाचित स्थान नही देगे, तो उनका जैन बनना उनके लिए कोई लाभदायक नही है।

जैनत्व वास्तव मे एक व्यसनमुक्त, अहिसक और स्वस्थ समाज की रचना का जीवन्त तरीका है। हम जैनत्व का प्रसार कर राष्ट्र का बड़ा भारी मगल करेगे। जैनत्व का प्रसार नैतिकता एव सामाजिकता का प्रसार है। भगवान महावीर ने और हमारे पूर्वजो ने बहुमूल्य जैनत्व की विरासत हमें दी है हम उसे खोखला न होने दे, निष्प्राण न होने दे। हमे तो उसमें और प्राण प्रतिष्ठा करनी है। न केवल गृहस्थ जैनो का अपितु साधु सस्था का भी इस मामले म अपना कर्तव्य है। उसे भी हेमचन्द्राचार्य और जिनदत्तसूरि की तरह जैनत्व के प्रचार प्रसार के लिए इस अभियान मे सरीक होना चाहिये। जो हैं वे और जोश जगाये। जो नही है, वे इसके लिए कदम बढ़ाये। हमें निभाने हैं ऐसे कर्तव्य, जिनमे मानवजाति के कल्याण की कामना समाई हो।

उपेक्षित और अलाभ प्राप्त समुदायो को भी सामाजिक नवोन्मेष के लिये समानता एव सहयोग दें, जिससे वे भाईचारे और साझेदारी का एहसास कर सके। आज से शुरु कर हम दीन-दुखियो की सेवा करना करुणा के अमृत स्रोत से धो डाले उनके व्यथित घावो को। फैलाएँ भगवान महावीर के शान्ति के मार्ग को। सुख शान्ति के मधुरिम वीणास्वर से आह्लादित कर दें—सारे विश्व को। खुशिया के दीप जलाएँ घर घर में दूर भगाएँ दुःख के अधियारे को। •

ध्यान-साधना बनाम स्वार्थ-साधना

सभी स्वार्थी है। जो जितना बडा बुद्धिमान है वह उतना ही बडा स्वार्थी है। स्वार्थी होना कोई बुरी बात नही है। बुराई है स्वार्थ को ठीक तरह से न समझने मे। एक कुत्ता भी स्वार्थवश ही घटा मुँह ताकता है दुम हिलाता है। उसका स्वार्थ है एक रोटी का टुकडा। आप एक कुत्ते को चार पॉच दि तक एक ही समय म रोटी गिराइये। छठे दिन आप देखग कि कुत्ता ज्या ही आपको देखेगा अपनी दुम हिलायेगा। ्सीलिए क्योकि कुत्ते ने अपनी स्वार्थ पूर्ति का सम्बन्ध आपसे जोड लिया।

आपने देखा होगा तोता पडित। जो फुटपाथो पर पिजड़े से निकलता है और एक दाने के स्वार्थ के लिए मनुष्य का भाग्य पत्र निकालता है। ससार के सारे व्यापार इसी तरह चलते है। मनुष्य के सारे धधे सारे कार्यकलाप स्वार्थ के लिए चलते है। दुकानदार दुकान खोलता है मदारी तमाशा दिखाता है योगी योग करता है विद्यार्थी पाठशाला जाता है सब स्वार्थ के लिए। मालिक नौकर को खिलाता पिलाता है पम दता है नौकर मालिक की सेवा करता है स्वार्थ के लिए। बाप बेटे को पति पत्नी को भाई भाई को गुरु शिष्य को दुकानदार ग्राहक को किसान बैल को प्यार करते हैं स्वार्थ के लिए। दान देते हैं स्वार्थवशात्। स्वार्थ सधा कि सम्बन्ध कटा। स्वार्थ मे बाधा पड़ी कि शत्रुता बढ़ी। सच पूछिये तो दुनिया स्वार्थ का अखाडा है, बडा भारी अखाड़ा।

लेकिन सबका स्वार्थ एक जैसा नही है। सबके स्वार्थ अलग-अलग है स्वार्थ पूर्ति के तरीके भी अलग-अलग है। सभी अपने-अपने उल्लू सीधा करते है। फर्क यही है कि किसी का उल्लू काठ का है और किसी का उल्लू वास्तविक है धासले वाला है। यह सारा भेद स्वार्थ मे स्व के अर्थ की समझदारी और नासमझी से है। स्वार्थ का अर्थ है आत्म-प्रयोजन यानी मतलब साधना। इसीलिए स्वार्थी आदमी को मतलबी कहते है।

स्वार्थ त्याग के लिए [illegible] आत्मा के लिए। कोई तो शरीर के आराम तक का ध्यान रखता है और कोई इस शरीर को ही आत्मा मानता है, सब समझता है। किसी का [illegible] भरे पूरे परिवार में रहता है तो सिर्फ [illegible] में उलझा रहता है। कोई बदन रूप को अपना सुन्दर रूप मानता है तो किसी की समझदारी में अपना पेट पालना ही [illegible] है। कोई [illegible] दूर जाता है हिमालय में रब को ढूँढने तो कोई मन्दिरों मस्जिदों में रब की तलाश करता है। कोई दुखी-दरिद्र [illegible] में ही उस रब की आहट पाता है तो कोई रब से जुड़े हैं और जो रब से जुड़े हैं वे स्वार्थी हैं। इसीलिए मैंने कहा संसार स्वार्थी है परम स्वार्थी है स्वार्थ का धाम है। भेद स्वार्थ के तौर तरीकों में है।

एक बात और है कि स्वार्थ चाहे जैसा हो पर उसकी मूल जड़ सुख पाना है। सारे स्वार्थ सुख की प्राप्ति हेतु ही साधे जाते हैं।

स्वार्थ बिना कोई करे अच्छे बुरे न काम।
फिर चाहे परमार्थ हो पुण्यार्जन का धाम।।

चाहे पाप हो या पुण्य स्वार्थवश ही तो होते हैं। पाप करने से अपना स्वार्थ सधता है और पुण्य करने से स्वर्ग का स्वार्थ। चाहे आदमी पाप करे या पुण्य सुख का स्वार्थ सभी से जुड़ा रहता है। प्राणी प्रत्येक कार्य सुख के लिए ही करता है दुःख के लिए कोई काम नहीं करता है। फिर भी दुःख से छुटकारा नहीं मिलता है। यह कैसी भाग्य की विडम्बना है कि दुःख किसी न किसी मार्ग से आ ही जाता है। बुद्ध के चार आर्यसत्य इसी दुःख वाद के खम्बों पर टिके हैं। सचमुच दुःख है। यह अनचाहा मेहमान है और सबको इसकी खातिरदारी करनी पड़ती है। यह वह मेहमान है जो हमारे पूर्व जन्म से सम्बन्ध जोड़ता है पूर्व जन्मों के कर्मों और संस्कारों का लगाव लेकर आ जाता है। हम भले ही जानकारी न हो मगर हमारा दुःख हमें भूलता नहीं। यह पुराना दोस्त है। कितना भी उससे पिंड छुड़ाव, वह छोड़ने को राजी नहीं होता।

आप जरा सोचिये, ऐसा क्यों होता है? दुःख बिना बुलाए क्यों आ जाता है? और सुख बुलाने पर भी क्यों नहीं आता? इसे आप समझें। बात यह है कि जब मनुष्य अपने स्वार्थ को समझने में गलती करता है, सुख को ठीक से नहीं पहचानता तो वह अपनी गलती की सजा पाता है। दुःख आता है सुख का घूँघट निकाल कर आकर्षण का मनमोहक रूप धारण

[illegible]

हमने कौन सा रास्ता अपनाया था है और सा रास्ता अपनाना है। साधन के अनेक उपयोग हैं पर हम उनसे अंधियारा भगाते हैं या [illegible] न आग लगाते हैं— यह हमारे ऊपर ही आधारित है। स्वार्थ दोनों में सधता है।

ज्ञान तो प्रायः बहुतों को रहता है कि वास्तविक स्वार्थ क्या है और जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है पर ज्ञान रखते हुए भी लोग दिग्भ्रमित हो जाते हैं और क्षणिक सुख के लिए गलत रास्ता अपना बैठते हैं। न केवल रास्ता अपनाते हैं बल्कि उसमें ऐसे उलझ जाते हैं [illegible] मकड़ी अपने जाल

म। दूसरा को फँसाने के लिए विछाये गये जाल म जब व्यक्ति स्वय ही फँस जाता है, तो दृश्य देखने जैसा होता है।

जब आदमी का पैर गन्दा रहता है तव उसे कीचड़ म ही चलने मे आनन्द आता है। जब तक पैर स्वच्छ रहते हैं तभी तक वह गन्दगी से वचकर चलता है। खून से सने कपडे पर यदि दो चार छींटे और भी लगे तो वह उसकी परवाह नही करता। जो अपराधी पुलिस की पकड म आ गया है, उसे यदि हम दो चार चपत लगा द ता उसके कोई फर्क नही पड़ेगा। जो व्यक्ति बहुत लोगा की हत्या कर चुका है वह यदि दा चार की और हत्या कर दे तो उसके लिए कोई खास बात नही। पर जो निरपराधी है उसे यदि चपत दिखाया भी जायेगा तो वह उसका विरोध करेगा। *अहिसक के लिए एक चीटी को मारना भी विचारणीय बन जाता है।* स्वच्छ कपड़े पर कौन कीचड़ गिरने देगा? होली के दिन रग के छींटे कोई डाले तो मजूर है पर दिवाली के दिन क्या कोई रग के छींटे डलवाना पसद करेगा?

एक व्यक्ति ने अपने वेटे से कहा वेटे! मेरे चाले पर स्याही गिर गई है जरा साफ कराना तो। वेटा गया घर मे और उठा लाया स्याही की बोतल। और पिता से कहा लो पापा! चोला धो लो साफ कर लो। पिता ने सिर पर हाथ मारा। क्याकि स्याही स सना वस्त्र स्याही से साफ नही होता। वल्कि स्याही से और सन जाता है।

तो स्याही से सने वस्त्र के लिए पानी की जरूरत है। जो अपने कपड़े को स्वच्छ करने म लगा है वह सदैव सतर्क रहता है कि कही मेरे कपडे पर कोई दाग तो नही है! सयोगवश कही दाग दिखाई भी पड़ जाये ता उसे धो डालने को प्रयास करता है। स्वार्थ इसी मे है कि स्व वचा रह स्वच्छ कपडे की तरह दाग हट जाये स्याही के खून के। जब स्व पर से *हटता है जब स्व स्व मे समा जाता है वही स्वारोहण होता है।*

मैं जिस स्व की वात कर रहा हूँ स्वनिकेतन की चर्चा कर रहा हूँ, वही है आत्म-मन्दिर, हमारा असली घर। यह भगवान् का मन्दिर है और इसान का घर है। इसी घर मे है गृह स्वामी। आत्म मन्दिर मे ही विराजित है परमात्मा की प्रतिमा। हम इसी की पूजा करनी है और उस पूजा की सामग्री है ध्यान। ध्यान ही ऐसा साधन है जिसके द्वारा आत्मा मे छिपी परमात्मा की आभा मुखरित होती है। ध्यान ही [illegible]ा है जिससे अन्त करण का ताला खुलता है। साधना [illegible]ा ही है जैसा

आकाश मे सूर्य। ध्यान ही साधुता की जड़ है।

सीस जहा सरीरस्स जहा मूल दुमस्स य।
सव्वस्स साधुधम्मस्स, तहा झाण विधीयते।।

जैसे शरीर म मस्तक है वृक्ष मे जड़ है, वैसे ही साधना म ध्यान है। इसीलिए मनुष्य के हाथ पैर कट जाने के बाद भी वह जिन्दा रहता है, मगर मस्तक कट जाने के बाद जीवन लीला ही समाप्त हो जाती है। वृक्ष है, मगर वह तभी तक जब तक उसकी जड़ मजबूत है। डालियाँ काटो, पत्ते काटो तना काटा, पर जड़ रहने दो। पेड़ फिर खिल उठेगा, पुन जीवित हो जाएगा। उसकी जगह डालियाँ रहने दो पत्ते रहने दो, तना रहने दो, पर जड़े काट दो, पेड़ अपने आप सूख जायेगा। पत्ते तने, डालियाँ ये सब तो अपने आप सूख जायेगे।

एक गमला लीजिये। गमले के तले म कुछ छेद कर दीजिये। उसम मिट्टी डालिये बीज डालिये, सींचिये, पौधा लग जायेगा कुछ दिन मे। ज्यो ज्यो पौधा उपर बढ़ता है, त्यो त्यो उसकी जड़े भी नीचे से बढ़ती हैं। आप एक प्रयोग कीजिये। उस पौधे की जड़े जो गमले के छेदो से बाहर निकलेगी, बाहर निकली जड़ो को काट दे। आप पायगे कि पौधे का बढ़ना रुक गया। यदि आप हर सप्ताह उसकी बाहर निकली जड़ो को काटते रहेगे, तो आप पायगे कि वर्षो बीत जाने पर भी पौधा उतना ही रहा, बढ़ा नही। इसीलिए जो पेड जितना बड़ा होगा, उसकी जड़े भी उतनी ही बड़ी होगी। कलकत्ते के बोटेनिकल गार्डन म मद्रास के बोटेनिकल गार्डन मे जो ससार प्रसिद्ध पेड़ है, उनकी वृहत्ता की आधारशिला उनकी जड़े ही है, गहरी से गहरी पैठी हुई।

जैसे जड़े है मुख्य पेड़ की वैसे ही ध्यान जड़ है साधुता के तरुवर की। साधु है, सत है, जब तक ध्यान है, तभी तक साधुता है, सतता है। ध्यान से च्युत होने वाला साधु पूर्ण साधु नही है, वह मुक्ति का पाथ नही है। वास्तविक ज्ञान की उपयोगी क्रिया ही ध्यान है। क्रिया मे नही आया ज्ञान भार है। साधु ज्ञान और क्रिया दोनो का बिम्ब प्रतिबिम्ब है, सम्मेलन है सगम है।

साधु यानी स्वार्थी, महास्वार्थी। महास्वार्थी अर्थात् स्व के लिए आत्मा के लिए करने वाला और बड़े जोर शोर से करने वाला। इसीलिए साधुता की जड़ ध्यान म पैठी हुई हैं। जब ध्यान का रस, ध्यान का लगाव, ध्यान

युग को प्रभावित करने के लिए जरूरी है कि व्यक्ति म कुछ यौगिक
का अनुराग कम होगा तो यही समझिये कि व्यक्ति के भीतर साधुता का
रस, स्वत्व का लगाव अध्यात्म का अनुराग कम हो गया। जो ध्यान न लगा
है, वही सच्चा साधु है और वही अपने स्वार्थ के लिए कुछ-न-कुछ करता
है।

युग को प्रभावित करने के लिए जरूरी है कि व्यक्ति म कुछ यौगिक
बल हो, यौगिक शक्ति हो, ध्यान के बीज हो। जिसके पास यौगिक शक्ति
है उसका नगाड़ा जोरदार बजता है। लोग उससे अवश्य प्रभावित होते हैं।
और जो लोग ऐसे होते हैं उनको दुनिया की परवाह नही रहती पर
दुनिया उनकी परवाह करती हैं। आनन्दघन योगी हुए ध्यानी हुए। उन्होने
जग की परवाह नही की पर जग ने उन्हे माना। वे तो कहते थे आशा
औरन की क्या कीजे पर सब लोग उनके पीछे पड़े उनकी आशा की।
मूत्रोत्सर्ग से, पेशाब से पत्थर को स्वर्ण मे बदल देना बुखार को कपड़े म
उतार देना जैसे उनके अनेक यौगिक चमत्कार प्रसिद्ध हैं। कबीर की तरह
अलमस्ती मे गाये रचे उनके पद उनके गीत आज हम सबके लिए वरदान
सिद्ध हुए हैं।

शान्तिविजयजी को क्या कम चामत्कारिक योग विभूतियाँ प्राप्त थीं?
उनके पास सिंह, चीते बाघ आदि हिंसक पशु भी हिंसा का भाव छोड़कर
उपस्थित रहते थे। उनके कोई चेला नहीं था पर आज जितने लोग उनको
मानते हैं। रहे पहाड़ो म, आबु म पर ध्यान की जड़ उनकी इतनी गहरी
होती गयी कि पहाड़ो को छेदकर सारे देश म फैल गयी उसकी शाखाएँ।

तो जिसने भी ध्यान को योग की साधना का साधुता को महत्त्व
दिया, उसने ससार मे महत्ता पायी गरिमा पायी। वह अकेला होकर भी
ससार का शिरोमणि बना, कोहिनूर हीरावत् चाहा गया।

तो ध्यान साधुओ के समस्त धर्मों का और समस्त साधुता का सार
है जड़ है बीज है। ध्यान की साधना उतना ही कठिन है जितना बीज को
सींच-सींचकर उससे फूल खिलाना। जब ध्यान के फूल खिल जाते हैं तो
आनन्द की सुगन्ध फैल जाती है जीवन का बगीचा महक उठता है। यद्यपि
मन चचल है, टिकता नहीं दौड़ता है फिर चाहे वह साधु का हो या
गृहस्थी का किसी सासारिक का। बस या घोडे का उपयोग या शरीर के
लिए है। मन तो वेगयुक्त है। वह कभी तो नीचे गिर जाता है और कभी
ऊपर उठ जाता है और ऊपर भी इतना उठ जाता है कि निर्वाण की
एवरेस्ट चोटी को छू लेता है। जिन प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का मन उड़ सप्तमी

[illegible] हो जाता है [illegible]।

[illegible] है जहाँ [illegible] [illegible] दुनिया [illegible] नहीं [illegible] [illegible] भीतर [illegible] और [illegible] भीतर [illegible] है। यह [illegible] सोधता है।

एक बात [illegible] है कि ध्यान [illegible] भीतर से है। बाहर से भीतर भीतर में और भीतर से [illegible] है यह। और भीतर भी इतना भीतर ले जाता है कि कुण्डलिनी जग [illegible] है षट्चक्र [illegible] हो जाते है, सहस्रकमल रस से भीग जाता है अन्तर मे आनन्द का सागर हिलोरे लेने लगता है एक [illegible] होता है और व्यक्ति [illegible] हो जाता है, उसे केवल ज्ञान का प्रकाश मिल जाता है।

इसलिए ध्यान जुड़ा है हमसे हमारे [illegible] से हमारी आत्मा से। जो लोग चाहते है अध्यात्म मे रमण करना उसका रस पाना वे लोग जुड़े स्वय से। जिस चीज को ढूँढना है उसे पहले अपनी जड मे ढूँढ लो। वहाँ न मिले तो बाहर जाना। पर लोग है, जो बाहर जाते हैं स्व को पर मे ढूँढते है। कस्तूरी कुडल बसै'— मृग की नाभि मे ही है कस्तूरी। पर मृग ढूँढे वन माहि'—पर हरिण उसे जगल मे ढूँढता है। आओ अपने आप मे कस्तूरी पाने के लिए आत्मा से जुड़ने के लिए। भले ही कस्तूरी दिखाई न दे, भले ही भीतर की साधना तमसावृत लगे पर कस्तूरी को ढूँढना अपने पास ही पड़ेगा आत्मप्रदीप भीतर ही है। घर मे खोई सूई को घर मे ही ढूँढना होगा भले ही घर मे अँधियारा हो। बाहर का प्रकाश काम न देगा, भीतर के लिए।

राबिया बसी के बारे मे प्रसिद्ध है कि एक बार वह अपनी कुटिया के बाहर कुछ ढूँढ रही थी। उसी समय उसकी कुटिया के पास से दो चार सत

गुजरे फकीर लोग। फकीरा ने राबिया स पूछा माँ! क्या ढूँढ रही हो? राबिया ने का सूई खो गई ढूँढ रही हूँ। सत फकीरो ने सोचा माँ वूढ़ी हैं हम भी सूई ढूँढ निकालने म मदद करनी चाहिये।

तो फकीर लोग भी ढूँढने लगे सूई को। बहुत ढूँढा पर मिली नही। आखिर तग आकर एक फकीर न कहा माँ! सूई मिल नहीं रही है। गिरी कहाँ थी? राबिया बोली, गिरी तो कुटिया मे थी। सभी फकीर अचभे मे पड गये। उन्हे बुढ़िया की मूर्खता पर और अपनी मूर्खता पर भी हँसी आई। सोचन लगे, बुढ़िया ने हमको यूव वनाया। बुढ़िया के पीछे हम भी उल्लू वन गये। एक फकीर न कहा मा! क्या तू पागल हो गई है? सूई कुटिया म खोई है और ढूँढ रही है कुटिया के बाहर। अरे जव कुटिया म ही सूई खोई है तो जा कुटिया मे ही ढूँढ।

राबिया ने कहा तुम लोग बात तो ठीक कह रहे हो पर क्या करूँ कुटिया मे अँधियारा है। वाहर म प्रकाश है। इसलिए बाहर ढूँढने लगी। फकीरो को बुढ़िया की बात पर और हँसी आई। बोले अरे! कुटिया म अन्धेरा है तो जा पड़ोसी से प्रकाश माँग ला दीया लेआ। घर म खोई सूई घर म ही मिलेगी।

अव की बार राबिया हँसने लगी। फकीरा को आश्चर्य हुआ। राबिया को हँसती देख। हँसने का कारण पूछा। राबिया बोली अरे मै तो समझती थी कि तुम लोग अभी वालक हो, ज्ञान के क्षेत्र मे नादान हो। पर तुम लोगो को तो वडा ज्ञान है। अरे जव तुम लोगो को यह ज्ञात है कि घर म रही सूई को घर मे ही ढूँढना पडेगा भले ही वहाँ अँधियारा लगे तो तुम बाहर क्यो ढूँढ रहे हो? आज इतने वर्ष हो गये ढूँढते पर तुम्हे मिला नही। मिलेगा भी कैसे? वह तो तुम्हारे अन्दर है। बाहर का ध्यान हटाओ भीतर म आओ। इसी अन्तरघट मे समाया है वह जिसे तुम ढूँढ रहे हो।

तो आओ भीतर मे, भीतर की याद हमे आ रही है अब। शुरुआत मे लगेगा कि ध्यान म मन नही लगता। क्योकि मन अभी बाहर भटकने का आदी है। भीतर रहने का वह अभ्यस्त नही हुआ है। पर अभ्यास से भीतर भी रहने लग जायेगा। या तो आदमी साँप से डरता है पर अभ्यास हो जाय तो वह साँप को पकड़ भी सकता है। अभ्यास स सव कुछ सम्भव है। 'रसरी आवत जात है सिल पर पड़त निशान'—कूए पर बनी पत्थर की मेड़ भी घिस जाती है रस्सी से, रोजाना पानी खीचते-खीचते। 'करत करत अभ्यास क जड़मति हात सुजान' वैसे ही अभ्यास करते-करते गँवारू भी

[illegible] है। [illegible]
रहा है। [illegible] है [illegible] यह [illegible] है [illegible]
[illegible] है तो [illegible] स्थिर [illegible] रहेगी।

जो ध्यान [illegible] है [illegible] स्थिर रहती है। राग द्वेष की हवा से मुक्त रहकर आत्म [illegible] में ध्यान का दीपक जलता रहे तो स्वार्थ पूर्ति में [illegible] नहीं होगा। वहाँ हमेशा उजियाला रहेगा अंधियारा दूर भाग जायगा। निर्वाण की स्थिति सध जायगी, वाण अर्थात् वासना नहीं रहेगी। निर्वाण का निर्माण होने लगेगा।

जो व्यक्ति ऐसा दीप जलाने में लगा है वही सच्चे स्वार्थ को उपलब्ध कर सकता है। स्वार्थी तो सारी दुनिया है पर मैंने तो स्वार्थ की बात कही उसकी पूर्ति में तो कुछेक लोग ही रहते हैं। स्वार्थ को हम छोड़ नहीं सकते। स्वार्थ की साधना तो करनी ही है पर उसे नई दिशा में योजित करके। ध्यान साधना ही स्वार्थ साधना है और स्वार्थ साधना ही ध्यान साधना है। जिनका ध्यान सध गया जिन्होंने स्व के फूल खिला लिये उन्हें इसके लिए श्रम करने की जरूरत नहीं है। जिनका स्वार्थ नहीं सधा वे ही ध्यान को अपनाएँ।

नहीं जरूरत योग की जिसका नीड़ निवास।
नीड़ छोड़, भटके उड़े, करे योग अभ्यास॥

जो पंछी नीड़ में है उसे नीड़ में आने की बात ही कहनी बेवकूफता है। जो पंछी नीड़ को छोड़कर आकाश में भटक रहा है वही वापस आने का अभ्यास करे, वही नीड़ की दिशा में उड़े। ध्यान साधना और योग साधना उसी के लिए है, जो बाहर है, भटक रहा है दिग्भ्रमित है

ताकि वह सम्यक् मार्ग पर आरूढ़ हो सके स्वयं को पा सके नीड़ मे आ सके। स्वयं को स्वयं म आने के लिए दृष्टि को लगाना ही ध्यान है और जो लगाता है, वही ध्यानी है वही स्वार्थी है परम स्वार्थी है। जो ऐसा स्वार्थी है, सच्चे अर्थों म वही निःस्वार्थी है स्वयं की दृष्टि म वह स्वार्थी होगा पर दुनिया की दृष्टि म वह निःस्वार्थी है। क्योंकि उसके सारे कर्म दुनिया के लिए कल्याणकारी होंगे। जो स्वार्थपरक कर्म दुनिया के लिए अहितकर है वह खोटा स्वार्थ है, और खोटे सिक्के की तरह लोग उसे दूर धकेलते हैं। जो स्वार्थपरक कर्म दुनिया के लिए हितकर और श्रेयस्कर है वह सच्चा स्वार्थ है और असली सिक्के की तरह लोग उसे पास रखते हैं सहेजकर सम्हालकर रखते है। उसके लिए उनके मन म आदर होता है। ध्यान म लगे स्वार्थी के कर्म असली सिक्के की तरह सब परिस्थितियो म सभी स्थानो मे सभी युगो म सर्वमान्य होते हैं। हमे साधना है ऐसा ही स्वार्थ जो स्वकल्याण भी करता है और परकल्याण भी लोककल्याण भी। •

यदि हम केवल विज्ञान को महत्त्व देंगे तो बड़ी भूल करेंगे। क्योंकि बहिरंग ही सब कुछ नहीं है। जैसे अंतरंग से सभी को जुड़ा रहना पड़ता है वैसे ही अध्यात्म से भी जुड़ा रहना पड़ेगा। जैसा अंतरंग होगा, वैसा ही बहिरंग होगा। बहिरंग के अनुसार अंतरंग नहीं हो सकता। जैसा बीज, वैसा फल। जैसा अंडा वैसी मुर्गी। अंतरंग शुद्ध है तो बहिरंग भी शुद्ध होगा। जो भीतर से अशुद्ध है वह बाहर से भी अशुद्ध होगा। पर बाहर से अशुद्ध हो, यह कोई जरूरी नहीं है। बगुला बाहर से शुद्ध, किन्तु भीतर से अशुद्ध रहता है। इसीलिए यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'मुख में राम, बगल में छुरी'। बाहर कुछ भीतर कुछ, कथनी कुछ करनी कुछ—दोनों में अन्तर, जमीन आसमान जितना अन्तर।

आज का युग विज्ञान प्रभावित युग है। आदमी बहिर्मुखी होता जा रहा है। जो लोग आत्ममुखता की चर्चाएँ करते हैं, गहराई से देखें तो लगेगा कि उनके जीवन में भी बहिर्मुखता है। बहिर्मुखता प्रधान हो जाने के कारण आत्ममुखता गौण होती जा रही है। यदि कोई आत्ममुखी होने के लिए प्रयास भी करता है तो बाहरी वातावरण उसे वैसा करने में अवरोध खड़ा कर देता है। बहिर्मुखता या बहिरंग से मेरा मतलब केवल बाहरी सुख, वैभव आदि से नहीं है, अपितु हमारा शरीर भी, हमारा वचन भी, हमारा मन भी बहिरंग ही है। और सत्य तो यह है कि ये ही सबसे अधिक बहिरंगीय पहलू हैं, जिनसे आदमी जुड़ा रहता है और आकाश में फूल खिलाता रहता है। ये मन, वचन, शरीर ही हमें अपने से, आत्मा से बाहर ले जाते हैं, मरीचिका के दर्शन से जल पाने के लिए हमारे भीतरी हरिण को सारे संसार के वन में दौड़ाते हैं। मन, वचन, काया के योग से अयोग होना ही ध्यान का लक्ष्य है।

मन, वचन और शरीर—ये ही तो अन्तरात्मा की मूर्ति को ढके हैं, आवृत किये हुए हैं। ध्यान इसे अनावरित करता है। आवरणों को हटाता है। ध्यान की प्रक्रिया वास्तव में आत्मा के स्वभाव को ढूँढना है। यह शरीर है, शरीर के भीतर वचन है, उसके भीतर मन है और इन तीनों के पार है आत्मा। तीनों के पार तो है, मगर सम्बन्ध तीनों से जुड़ा है। क्योंकि आत्मा शरीर व्यापी है। पर लोग हैं ऐसे, जो शरीर को ही आत्मा समझ बैठते हैं और कायाध्यास हो जाता है, कायोत्सर्ग की भावना मन से निकल जाती है। इसीलिए मन, वचन, शरीर वास्तव में बाधाएँ हैं और हम ध्यान द्वारा इन पर्दों को काटना है। हम समझते हैं, पर्तों दर पर्तों को जिनसे

आत्मस्रोत रुँधा पड़ा है।

शरीर स्थूलतम है। वचन शरीर से सूक्ष्म शरीर है और मन वचन से सूक्ष्म शरीर है। तीनो ही पदार्थ हैं तीना ही अणु समूह है। ये तीना पारमाण्विक, पौद्गलिक भौतिक सरचनाएँ हैं। मजे की बात यही है कि इन तीनो मे मन सबसे सूक्ष्म है पर वही इन तीना मे प्रधान है। शरीर और वचन दोना का राजा मन ही है। मन के ही काबू मे हैं ये दोना। मन जहाँ कहता है शरीर वही जाता है। जिसके मन ने कहा चलो धर्मस्थल मे वे यहाँ पहुँच गये। जिसके मन ने कहा वहाँ जाने से कोई लाभ नही है चलो दुकान मे। तो आदमी दुकान चला जाता है। शरीर की सारी चेष्टाएँ मन के आदेश से होती है। वचन बेचारा है। वह लाचार है। मन ने चाहा कि मै जैसा हूँ वैसा ही वचन हो तो वचन को वैसा ही होना पडता है। मन ने चाहा कि मै जैसा हूँ वैसा वचन अगर मुँह से निकला तो इसमे मेरी बेइज्जती होगी मेरी हानि होगी तो विचारे वचन को मन की चाह के अनुकूल होना पड़ता है।

इसलिए जो मन मे है वही वचन मे होगा। जो हमारे वचन मे है वही शरीर मे घटित होगा। मन तो बीज रूप है। वचन अकुरण है और शरीर फसल है। फसल से प्राप्त होने वाले अनाज ही उसका अभिव्यक्त रूप है।

यद्यपि बहिर्दृष्टि से शरीर प्रथम है किन्तु अन्तरदृष्टि से मन प्रथम है। पर योजित तो हम होते ही हैं चाहे बाहर से हो या भीतर से। हम योजित होते ही हैं यानी हमारी आत्मा योजित होती है हमारा अस्तित्व योजित होता है। जैसे भूख लगने पर हम कहते है मुझे भूख लगी है। अब आप सोचिये कि भूख किसे लगती है? भूख का सम्बन्ध इस पेट से है शरीर से है, किन्तु हम कहते हैं मुझे भूख लगी है। तो हमने शरीर से जुड़ने वाली चीज को आत्मा से जोड़ लिया। इसलिए क्योकि शरीर के साथ तादात्म्य है। इसी तरह क्रोध उठा। क्रोध विचारो मे आया किन्तु हम कहेगे मुझे क्रोध आया। यह विचारो के साथ आत्मा का तादात्म्य है। वासना जगी। वासना मन मे जगती है पर कहते है मैं कामोत्तेजित हूँ। हमने मन के साथ मै को जोड़ा आत्मा को जोड़ा पर के साथ स्वय को जोड़ा।

यद्यपि मन वचन शरीर ये तीन नाम हैं किन्तु तीना अलग-अलग नही हैं। तीना का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही है। तीना एक-दूसरे के पूरक है

[illegible] आत्मा को सिद्ध होने देर न लगेगी।

जो न लोग सत्य के खोजक हैं अन्वेषक हैं आत्मा में प्रवेश करना चाहते हैं मन की साधना करना चाहते हैं उन्हें शरीर, मन और मन की ग्रन्थियों से गुजरना होगा। ये ग्रन्थियाँ कोई साधारण नहीं हैं। अंधियार से भरी हुई और जटिल सी सजी हुई हैं। इसीलिए साधक की शोध यात्रा साधना यात्रा ऐसे ऐसे रास्तों से गुजरती है जो बीहड़ हैं। पर आत्मा की किरण इसी शरीर में से फूटेगी। पर जो लोग अपने शरीर को ही सर्वस्व समझे बैठे हैं उन्हें किरण की झलक नहीं मिल सकती।

बहुधा होता यही है कि या तो व्यक्ति ध्यान करता नहीं है, और कर भी लेता है तो शरीर का ही ध्यान करता है–शारीरिक ध्यान। इसे ही कहते हैं हठयोग। वास्तविक साधना हठयोग से सिद्ध नहीं होती। हठयोग के द्वारा शरीर को काबू में किया जाता है। योगासन भी इसी की देन है। बाहुबली खड़े रहे ध्यान में पर उनका ध्यान हठयोग से जुड़ा था। अहम् एवं कुण्ठा की दुर्वह ग्रन्थि उनके अन्तरतम में अटकी थी। वे अहंकार के मदमाते हाथी पर बैठे थे तो ध्यान फल कैसे दे पायेगा? घोर तप करने के बावजूद सत्य को उपलब्ध न कर पाये। जैसे ही अहम् टूटा कि सत्य से साक्षात्कार हो गया। वास्तव में ध्यान तो सत्य की खोज है, हठयोग नहीं।

प्रसन्नचन्द्र भी तो हठयोग की मुद्रा में खड़े थे साधु का वेश, योगासन की मुद्रा पर मन में जो भावों के गिरते चढ़ते आयाम थे, उसी के कारण नरक स्वर्ग की गति के झूले में झूलते रहे। शरीर तो सधा पर शरीर सधने से यह कोई जरूरी थोड़ ही है कि विचारों की आँधी शान्त हो गयी। शरीर से हटे, तो विचारों में जाकर उलझ गये। जैसे ही उपशम गिरि पर चढ़े कि सिद्ध बुद्ध बन गये।

हठयोग जरूरी तो है पर वह साधना का अन्तिम रूप नहीं है। चूँकि साधना का पहला सोपान शरीर है व्यक्ति इससे बहुत अधिक जुड़ा है अतः शरीर की साधना भी बहुत जरूरी है। पर उसे साधने के लिए लोग ऐसे ऐसे तरीके अपना बैठते हैं जिससे शरीर तो शायद सध जाए पर मन

न सधे। शरीर को मैथुन से दूर कर लिया पर मन मे विषय-वासना की आँधी उठ सकती है। इसीलिए मैने कहा कि मन ही प्रधान है। यदि मन मे वासना ही नही है तो शरीर द्वारा वासना की अभिव्यक्ति कैसे होगी? शरीर तो स्वयमेव सध गया।

घी बनाने के लिए मक्खन पकाते हैं बर्तन मे आग म। हमारा उद्देश्य मक्खन को पकाना है न कि बर्तन को तपाना। पर क्या करे जब तक बर्तन नही तपेगा तब तक मक्खन पकेगा भी कैसे? वैसे ही हमारा उद्देश्य आत्मा को पाना है विचारो को शान्त करना है। शरीर को शान्त करना हमारा उद्देश्य नही है। पर क्या करे विचारो को शान्त करने के लिए शरीर को भी विचारो के अनुकूल बनाना पड़ता है। जो लोग केवल शरीर को सुखाते हैं शरीर का दमन करते है वे तपस्वी ध्यानी और योगी कैसे हो गए। जिन्होने केवल शरीर के साथ अपनी साधना को जोडा उनके कारण ही गफ को कहना पडा कि यह देह दडन है। बुद्ध को भी तप का विरोध करना पड़ा। महावीर के अनुसार तो यह अज्ञान तप है। इसीलिए कमठ जैसे तपस्वी का पार्श्व न विरोध किया, क्याकि उसने तप को साधना को कवेल शरीर से जोड़ा। पचाग्नि जलाकर उसके बीच म बैठना यह जान बूझकर कष्ट झेलना है। कष्ट सिर पर आ गिरे तो उसे झेलना परीषह है। आपत्ति आ जाये तो उसका स्वागत करना तप है। जान बूझकर सकटो को पैदा करना तो समझदारी नही है। 'इच्छानिरोधस्तप' इच्छाओ पर ब्रेक लगाना तप है अपने मन को काबू म करना सयम है शरीर को काबू मे करना सयम है शरीर को सुखाना दबाना न तो तप है न सयम है यह तो मात्र हठयोग है।

बनारस इलाहाबाद की तरफ साधुलोगो को मैने देखा कि इन्द्रियो को वश म करने के विचित्र तरीके अपना रखे है। एक साधु ने कहा—मैने जननेन्द्रिय मे लोहे के कडे की बाली पहना रखी है। जसे स्त्रियाँ कान म कुडल पहनती है, वैसे ही उसने भी पहना दिया था जननेन्द्रिय को कुडल। अब आप सोचिये कि ब्रह्मचर्य को पालने का यह कैसा तरीका है? यह तो जबरदस्ती है। यह सयम नही दमन है। इसीलिए मै तो साधना को सम्बन्ध भीतर से जोडता हूँ बाहर से नही।

बहुत से साधु लोग ऐसे भी होते है जो कभी सोते ही नही नीद ही नही लेते सदा जगे रहते हैं। बहुत से साधक साधु लोग कभी बैठते ही नहीं लेटते भी नही सदा खड ही रहते ह। खाना भी खडे खडे खाएँगे, शौच

भी खड़े खडे करेगे। यानी सब कुछ खडे खड़े। मेरी समझ स यह हठयोग है, वलात् आरोपण है। यह शरीर को ही आत्मा मान लेना है। वहुत से साधु लोग नग्न रहते हैं। यद्यपि आज के युग म नग्नता असभ्यता मानी जाती है पर उन साधुओ का मानना हे कि विना नग्नता के मुक्ति योग सध ही नही सकता। शायद यह कुछ हठयोग का ही प्रभाव हे। अवधूत परम्परा भी ऐसी ही है। यद्यपि शरीर को साधने म उनका कोई मुकाबला नही है। उनके लिए जल शराव और पेशाव म कोई भेद नही है। नमक-चीनी म मिटटी सोने म रोटी टटटी म कोई फर्क नही है। पर इसम हठयोग का प्रभाव ही अधिक दिखाई देता है। वेस इनका तन्त्रा से ज्यादा सम्बन्ध रहता है।

तो हठ योग हे ऐसा जिसम शरीर को मुख्यता दी जाती है। शरीर को साधा जाता है, शरीर को अपने कावू मे किया जाता है विविध आसना द्वारा विविध मुद्राओ द्वारा। ध्यान को साधने के लिए यह जरूरी है कि शरीर भी सुगठित हो वलवान् हो, सशक्त हा स्वस्थ हो। कारण स्वस्थ शरीर म ही स्वस्थ मन रहता है। मन की निर्मलता के लिए शरीर की निर्मलता खून की निर्मलता आदि भी सहायक है। जिसके शरीर म वल है उसके मन म भी वल होगा। वलवान् तन म वलवान् मन निवास करता है। इसलिए गहन ध्यान साधना के लिए यह हमारा शरीर यदि सयमित, सुगठित हो तो साधना म आलस्य या प्रमाद के जहरीले घूँट नही पीने पड़ते।

शरीर के भीतर एक और सूक्ष्म शरीर है जिसका नाम है वचन। विचार कोन्सियस माइड। विचारो को साधने के लिए मन्त्र योग काम देता है। विचार वह स्थिति है जव साधक दीखने म ता लगता है साध्य स्थित किन्तु भीतर म विचारो की ऑधी उड़ती रहती है। हाथ म तो माला रहती है किन्तु मनवा कही और रहता है। कबीर का दोहा हे—

माला फेरत जुग भया गया न मन का फेर।
कर का मन का डारि द मन का मन का फेर।।

हाथ म ता माला क मणिये है पर मन म मणिया कहाँ है? सामायिक ता ल ली पर विचारा म मन म समता कहाँ आयी? प्रतिक्रमण क सूत्र ता मुँह स वाल दिय पर क्या पापा स हटे, अन्तरात्मा से जुड़े? मन्दिर ता गय पर क्या मन म भगवान वस?

दा मित्र थ। घर पड़ोस स्टर स। उन० अपने फ्लैट क लिए

चालीसवीं मंजिल जाना है। लिफ्ट खराब है। पैदल ही सीढ़ियों पर चढ़ना शुरू किया। रात दस बजे चढ़ना शुरू किया और आधी रात को डेढ़ बजे पैंतीसवीं मंजिल पर पहुँचे। साँस भर गया। एक ने दूसरे मित्र से पूछा भैया! अपने इतने ऊँचे तो चढ़ आये है। पर क्या कमरे की चाबी लाये हो? दूसरा मित्र सकपका गया। बोला अरे! चाबी तो नीचे स्कूटर के डिब्बे मे ही रह गयी।

चढ़े तो सही पर चढ़ना न चढ़ना दोनो बराबर हो गया। कोल्हू के बैल की यात्रा हो गई। चाबी साथ मे नही और चढ़ना शुरू कर दिया। चढ़ना तो है ही पर चाबी लेकर। बिना चाबी के चढ़ना बकार है और चढ़े बिना कमरे म पहुँच नही सकते।

इसीलिए मैंने कहा साधना के लिए शरीर को साधना मुख्य है पर उससे भी मुख्य विचारो को साधना है अन्तरमन को साधना है। क्योकि साधना का सम्बन्ध बाहर से उतना नही है जितना भीतर से है। प्रवृत्ति म भी निवृत्ति हो सकती है और निवृत्ति मे भी प्रवृत्ति हो सकती है।

बाहर से कोई व्यक्ति हिंसा न करते हुए भी हिंसक हो सकता है और हिंसा करते हुए भी अहिंसक हो सकता है। हिंसा और अहिंसा कर्त्ता के अन्तर भावो पर मन पर विचारो पर अवलम्बित है क्रिया पर नही। यदि बाहर से होने वाली हिंसा को ही हिंसा माना जाय तब तो कोई अहिंसक हो नही सकता। क्योकि ससार म सभी जगह पर जीव है और उनका घात होता रहता है। इसलिए जो व्यक्ति अपने मन से अपने विचारो से अहिंसक है वही अहिंसक है।

तो मूल चीज हमारा अन्तरमन है अन्तरविचार है। इसीलिए कहा जाता है मन चगा तो कठौती मे गगा। अत मेरे विचारो से साधना म शरीर से भी मुख्य हमारे वचन ह मन है। आजकल जो नये-नये नामो से ध्यान की शैलियाँ प्रचलित हुई है उन सबका एक ही लक्ष्य है कि विचार शान्त हो मन केन्द्रित हो। समीक्षण ध्यान प्रेक्षा ध्यान विपश्यना ध्यान सहजयोग ध्यान—ये सभी विचारो की अग्नि को ठडा करना सिखाते है।

चूँकि आज ससार भौतिकता से जुड़ा है अत विचार भी उसीसे जुडे रहते है। ध्यान करने तो बैठ गये पर मन टिकता नही। वह कभी तो बाजार मे जाता है कभी घर का चक्कर लगाता है तो कभी विचारो मे किसी अप्सरा का मेनका का रूप उभरता है। इसे कहते हैं विचारो मे बहना। जिसके मन मे जैसे भाव होते है जैसे विचार होते है वह व्यक्ति

काशी-नरेश का आपरेशन हुआ। चिकित्सकों ने बेहोश करना चाहा मगर उन्होंने बेहोश होने से इंकार कर दिया। वे गीता पढ़ने लगे। गीता में इतने तल्लीन हो गये कि उन्हें पता भी न चला कि कब आपरेशन पूरा हुआ।

जब आदमी विचारों में अन्तरविचारों में ही रमने लग जाता है तो वह महर्षि रमण बन जाता है। उसे पता नहीं चलता कि मैं शरीर हूँ। उसका अनुभव उसे भीतर की यात्रा कराता है। वह पाता है कि मैं शरीर नहीं हूँ शरीर से परे हूँ।

लोग सिनेमा हॉल जाते हैं। आखिर सामने पर्दा है सत्य नहीं है। पर फिल्म देखते-देखते व्यक्ति उद्विग्न हो जाता है कामुक हो जाता है आँसू ढाल बैठता है। जबकि पता है कि जो देख रहा हूँ वह सत्य नहीं मात्र पर्दा है, अभिनय है। पर वह अभिनय भी व्यक्ति के विचारों को प्रभावित कर देता है और अपने साथ उसे भी बहा ले जाता है।

आजकल क्रिकेट बहुत चला है। हारता है कोई और जीतता है कोई। पर हमारे विचारों में उसका प्रभाव दिखाई पड़ता है। जीता कपिलदेव आपने खुशी में पटाखे छोड़े। कुछ दिन पहले जब भारत हार गया तो लोगों ने गुस्से में अपने टी वी सेट तोड़ डाले। इसी को कहते हैं बहिर्जगत् का अपने अन्तर विचारों पर प्रभाव।

विज्ञापन छपते हैं। एक ही विज्ञापन साल में पचासों बार पचासों अखबारों में छपते हैं। क्या? भारत सरकार एकता रखने के लिए प्राय हमेशा विज्ञापन, विज्ञप्तियाँ छापती है। क्या? इसीलिए ताकि जनता के दिल दिमाग में उसके चिन्तन में उसके विचारों में यह बात घर कर बैठे। बच्चा पैदा हुआ। उसका पिता कौन है यह वह नहीं जानता। किन्तु वह सबसे यही सुनता है अमुक आदमी तेरा पापा पिता है। तो वह भी उस व्यक्ति को पापा कहने लग जाता है। मूल बात यही है कि विचारों में जो बात जमी हुई है वही क्रिया में आती है। विचार ही व्यवहार की कुंजी है। इसीलिए मैंने कहा कि शरीर से भी परे कोई और चीज है जिसे साधना जरूरी है।

इसीलिए मन्त्रों का विकास हुआ। मन्त्रों का अपना विज्ञान है। मन्त्र केवल शब्द नहीं है। मन्त्र रचयिताओं ने प्राण फूँके हैं अपनी साधना के आध्यात्मिक शक्तियों के। यदि मन्त्र सिद्ध हो गया तो मन्त्र में निहित शक्ति से साक्षात्कार जब चाहो तभी सम्भव है। ॐ से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। मन्त्र विज्ञान का यही बीज है। इसी से सारे मन्त्र पनपे हैं। सभी

धर्मों ने भले ही बनाये हो अपने अपने मन्त्र, पर ॐ से सभी ने जुड़ना चाहा। जो व्यक्ति विचारो मे ज्यादा बहता है, उसके लिए तो ॐ बाँध है। प्रत्येक व्यक्ति को ॐ का प्लुत-उद्घोष प्रातःकाल मे अवश्य करना चाहिये। जो मन्त्रो को विस्तार से बोलना चाहे, वे फिर नवकार मन्त्र, गायत्री मन्त्र शिव मन्त्र आदि मन्त्रो को बोलते है, उच्चारण करते है। वैसे तो बहुत से मन्त्र है। मन्त्रो की संख्या सात-आठ करोड़ तक है।

मन्त्र की तरह ही तन्त्र है। तन्त्र मन्त्रो का ही विस्तार है। मन्त्र हमारे विचारो को अध्यात्म मे जोड़ता है। वैचारिक ऊर्जा मन्त्र से आबद्ध होकर विकेन्द्रित नही होती। जैसे जैसे व्यक्ति मन्त्र की गहराई मे उतरेगा उसे मोती मिलते जाएंगे। वह बौद्धिक विचारो से, मन के चिन्तन से सैद्धान्तिक बातो से ऊँचा उठता जाएगा। उसे एक गहन अनुभूति होगी। उसी अनुभूति से आत्मा की किरण फूटेगी। मन्त्र की ध्वन्यात्मकता शरीर के रग रग मे फैल जाएगी। वह अन्तरात्मा के भीतरी लोक से जान पहचान करायगी। अन्ततः साधक को आत्म प्रतीति, आत्म-अनुभूति हो जायेगी, आत्मतोष का सागर उमड़ पड़ेगा।

इसीलिए मन्त्र 'मेग्नेटिक करेन्ट' की तरह , चुम्बकीय विद्युत्धारा की तरह हमे भीतर ले जाता है। हमारे शरीर की भीतरी शक्तियो से जोड़ी करवाता है। जब मन्त्र की शक्ति के पटल खुल जाते है तो हम परमात्मा से सीधे सम्पर्क कर सकते है अपने से अपने आराध्य से।

[illegible] अध्यात्म-जगत् मे प्रवेश करने के लिए ध्यान एकाग्र करने के लिए जरूरी है कि जोड़ गणना मे बदले। जितनी बार हमने जोड़ की, उतनी ही बार बाकी करनी पड़ेगी। गणित के हिसाब से चलना होगा। हम ऊपर उठना है मन से वचन से शरीर से।

पहले शरीर फिर वचन और फिर मन की साधना—यह थोड़ा सरल है पर मैं इसे उल्टा मानता है। पहले मन फिर वचन और फिर शरीर को [illegible]

वचन और शरीर से बहिरात्मा को छोड़कर अन्तरात्मा मे आरोहण कर परमात्मा का ध्यान करे तो हमे आत्म प्रतीति भी होगी और परमात्म-अनुभूति भी होगी।

आरुहवि अन्तरप्पा बहिरप्पा छडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठ जिणवरि देहि।।

यदि मन की चट्टाने हट गयीं वचन की चट्टाने हट गयी शरीर की चट्टान हट गयीं, तीना चट्टाने हट गयी तो आत्मा का झरना कलकल करता फूट पड़ेगा। अन्त करण मे ब्रह्मनाद होगा परमात्मा की बाँसुरी के सुरीले स्वर हमे मुग्ध कर देगे। हम उस सत्य का रसास्वादन करेगे, जिसके प्रति ससार उदासीन रहता है।

हमे ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि मै न पर का हूँ न मन का हूँ न वचन का हूँ, न शरीर का हूँ और न ही ये मेरे है। मैं तो एक शुद्ध बुद्ध चैतन्य मात्र हूँ। सोहम्' वह मै ही हूँ। साहम्' से ही हसोहम्' की स्थिति आती है। मेरी कस्तूरी मेरी नाभि म ही है कस्तूरी कुडल बसै'। आखिर मे आप पायगे कि सारे अन्तरद्वन्द्व, सारे विकल्प छूट गये है। मन आत्मस्वरूप म ही रुक गया है। मन का आत्मा मे रुकना मन का एकाग्र होना ही ध्यान है। वह देह मे भी विदेह रहेगा। साध्वी विचक्षणश्री की तरह देह मे भी विदेह रहेगा शरीर की व्याधि म भी समाधि की सुरभि महकेगी। श्रीमद् राजचन्द्र के अस्थि-कक्काल बने शरीर से भी आत्मा की आभा फूटेगी। शान्ति विजयजी की तरह जगल मे रहत हुए भी जीवन मे सदाबहार रहेगा। आनन्दघन की तरह श्मशानो मे रहते हुए भी अमरता की वीणा झकृत होगी– अब हम अमर भये ना मरेगे'। और सच कहूँ तो जो ऐसे लोग है वे ही ध्यान की कुठार से भव-वृक्षा को काट सकते हैं। उन्ही के आत्म मन्दिर म सदा मुक्ति का दीप जलता रहता है। सचमुच जो व्यक्ति ससार के वास्तविक स्वरूप से, मन वचन, काया के स्वरूप से सुपरिचित है वीतराग भाव मे युक्त है और निजानन्द रसलीन होना चाहता है, वही पता लगा सकता है, कुडली मे, नाभि म छिपी कस्तूरी का। •

आत्मवाद
रहस्यमयी परतो का उद्घाटन

आत्मवाद जीवन दर्शन का पर्याय है। जिसे हम जीवन कहते हैं आत्मा उसी का साक्षात्कार है। जीवन अपना अस्तित्व आत्मा से ही पाता है। अत जीवन की जननी आत्मा ही है। जैसे बिना मुर्गी के अण्डा नही होता बिना माँ के बच्चा नहीं होता वैसे ही बिना आत्मा के जीवन नही होता। पुल्लिग का जन्म ही स्त्रीलिंग से होता है। यद्यपि पुल्लिग का अपना महत्त्व है फिर भी नारी नर से भारी। इसलिए एक बात मन में जमा लीजिये कि आत्मवाद की नीव पर ही खड़ा होता है जीवन का महल, विश्व का महल। आत्मवाद ही जीवन का विश्व का अस्तित्व का रहस्य है। आत्मा शाश्वत है, जीवन भी शाश्वत है। जो जन्मता मरता है उसका नाम शरीर है। इस विचौलिय फर्क का नाम ही भेद विज्ञान है। जो यह साबित करता है देह ही आत्मा नहीं है और आत्मा ही देह नहीं है। दोनो अलग-अलग है, दूध-पानी की तरह जुदे-जुदे हैं। जिसके पास जीवन म हंस की नजर हैं, वही इस भेद विज्ञान को भलीभाति जानता समझता है। ज्ञानी, मनीषी जैसी सज्ञाएँ ऐसे जीवन साधको के लिए ही जन्मी हैं। ऐसे लोगो के ही चिन्तन गर्भ से दर्शन पनपते है फिलॉसफी जनमती हैं।

दुनिया मे दर्शन हजारो हैं। 'मुडे मुडे मतिर्भिन्ना' जिसकी जैसी मति उसका वैसा ही दर्शन है। पर मति को भी अपना घोसला बनाने के लिए आत्मा के पेड़ पर टिकना होता है। मति से चिन्तन पैदा होता है, चिन्तन से दर्शन पैदा होता है पर आत्मा सबकी सम्बन्धी है। सबका इससे रिश्ता-नाता है। इसलिए जो आत्मा की कटनी करता है, वह अपने रिश्तेदारो के साथ दगाबाजी करता है। ऐसा व्यक्ति आत्म प्रवचक है, स्वय को स्वय के द्वारा धोखा देता है। ज्यों लगी आत्मतत्त्व चीन्या नही, त्यों

लगी साधना सर्व झूठी। यदि हमने आत्मा स दोस्ती नही साधी तो हमारी सारी साधना छार पर लीपणो तेह जाणों' राख पर लीपा पोती करने जैसी है।

मेरे तो सारे चिन्तन के कबूतर आत्मवाद के आकाश मे ही उडते हैं। दार्शनिक और आध्यात्मिक चिन्तन को बढाना देन के लिए उसकी जड़ ता आत्मा ही है। जैसे पेड़ मे जड है शरीर मे मस्तक है वैसे ही आत्मा है प्रमुख। दर्शन की आधारशिला आत्मा ही है। दार्शनिक चिन्तनधारा को बढ़ावा देने के लिए आत्मा ही मूल स्रोत है।

आत्मा वह प्रत्यय हैं जिसके शरीर मे रहने पर वह जीव कहलाता है और जिसके शरीर से निकल जाने के बाद शरीर मृत घोषित हो जाता है उसे जला–दफनाकर समाप्त कर दिया जाता है। आज जिससे हम प्रेम करते हैं, जिसके लिए हम सदा मरने मिटने के लिए तैयार रहते है वह *यदि मर गया उसके शरीर से यदि आत्मा छूट गयी, तो हम ही उसे* जला दफना डालते हैं। हमे प्रेम उसके शरीर से नही था उसक अस्तित्व से था। अस्तित्व का नाम ही आत्मा है। इस प्रकार आत्मा रथी है और शरीर रथ है। आत्मा ड्राइवर है, शरीर कार है। जैसे विना ड्राइवर की कार नही चल सकती, वैसे ही बिना आत्मा का शरीर भी निकम्मा है। आदर और प्यार जीवन का है, मुर्दे का नही। इसलिए जो लोग जिन्दे हैं, उन्हे आत्मा की प्रतीति करनी चाहिये, उसके रस मे डुबकी खानी चाहिये।

यद्यपि आत्मा अमूर्त है। यह अमूर्त है इसीलिए नित्य है। आकाश की तरह इसे समझने का प्रयास कीजिये। आकाश का रूप नही है। जहॉं जहॉं अवकाश है खाली जगह है वहा वहा आकाश है। क्षितिज तक ही यह सीमित नही है क्षितिज के भी पार है यह आकाश। चूँकि दृष्टि की अपनी सीमा है, इसलिए यह देख नही पाती क्षितिज के पार वाले आकाश को। यदि किसी की दृष्टि व्यापक बन गई, सारे ब्रह्माण्ड का अरस परस करने वाली तो उसके लिए क्षितिज नाम की कोई चीज ही नही होती। कारण, जिस सीमा को हम क्षितिज मानते हैं, उसकी दृष्टि उसके भी पार, दूर सुदूर तक जाती है। उसकी पहुँच काफी लम्बी चौड़ी होती है। आत्मा को भी आकाशधर्मी समझिये। यह शरीरव्यापी होते हुए भी उसकी पहुँच दूर-दूर तक होती है। इससे ससार का कोई । यह हमारी कमजोरी है कि हम भीतर से अन्धे । सक जिससे के आकाश मे उड़कर

यदि प्रयास किया जाये तो हम वह सम्यक् दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं जो हमारे जीवन का तीसरा नेत्र है शिव का तीसरा नेत्र है।

आत्मा सविशेष है। बोध विवेक, समता आदि इसकी विशेषताएँ हैं। जिन्होंने आत्मा का अस्वीकार करके अनात्मवाद/नैरात्म्यवाद का समर्थन किया व अपने दर्शन की नींव का मजबूती से नहीं बँधा पाये। जो अपने दर्शन को नैतिकता के शिखर पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं उनके लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि वे आत्मा के अस्तित्व को माने। जे स्वरूप समज्या विना पाम्या दुःख अनन्त। आत्मा को नहीं माना, उसका स्वरूप नहीं समझा उसी का ही तो यह परिणाम है कि मैं दुःखों का अनुभव कर रहा हूँ। आश्चर्य तो यही है कि आत्मा स्वयं ही आत्मा के अस्तित्व के बारे में शंका करने लग गयी है–

आत्मानी शंका करे, आत्मा पोते आप।
शंकानो करनार ते, अचरज एह अमाप।।

इसलिए यह बात पक्की मानिये कि आत्मा के अस्तित्व पर शंका करके आगे बढ़ना सम्भव नहीं है। नैतिकता वास्तव में शुभ और अशुभ का विवेक है और वह विवेक किसी सचेतन में ही सम्भव है। अचेतन या निर्जीव मे विवेक की कल्पना करना तो पशु बुद्धि है बेहोशी है।

मैंने पढ़ा है एक व्यक्ति अपने घर-दरवाजे पर ताला लगाकर शराब पीने गया। पत्नी घर में ही थी। पति को शराब पीने गये बहुत देर हो गयी। पत्नी की नींद उचट गयी। वह बरामदे में आकर खड़ी हो गयी और पति की इन्तजारी करने लगी। कुछ देर बाद ही उसका पति उसे दूर से आता दिखाई दिया झूले की तरह झूलता हुआ डगमगाता हुआ। शराब का नशा जोरों से चढ़ा था। सम्भाल न सका वह स्वयं को। पहुँचा वह अपने घर। घर पर ताला लगा था और चाबी उसके पास थी। बहुत देर हो गयी, मगर वह ताला न खोल पाया। पत्नी ने ऊपर से आवाज दी—क्या हुआ, चाबी खो गई? डुप्लीकेट चाबी फेकूँ? यह सुनकर पति बोला चाबी तो मेरे हाथ में है पर ताला खो गया। हो सके तो इसका डुप्लीकेट ताला फेंक दो।

भला शराब की बेहोशी मे आत्म विवेक कहाँ से जागेगा? यही कारण है कि अधिकांश दार्शनिकों को आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त को स्वीकार करना ही पड़ा। फिर चाहे एकात्मवाद के रूप में स्वीकार किया हो, चाहे अनेकात्मवाद के रूप में ईश्वरांश के रूप में या स्वतन्त्र तत्त्व के रूप में। अतः यह कहना युक्ति सगत है कि दर्शन की सारी प्रणालियाँ जीवन की

सारी अपेक्षाएँ आत्म सापेक्ष है। जो लोग आत्मा को अस्वीकार करके दर्शन को धर्मी का अस्वीकार करके धर्म को व्यक्ति को अस्वीकार करके व्यक्तित्व को, चेतन्य को अस्वीकर करके जीवन का विवचित करना चाहते हैं वे बिना कारण के कार्य सिद्ध करना चाहत है यह तो बिना दार्शनिक के दर्शन की प्रतिष्ठापना करना है।

दर्शन के क्षेत्र म भी ऐसी धारणाएँ प्रचलित है जो पुनर्जन्म कर्मवाद और पाप पुण्यवाद को मानती है पर आत्मा के अस्तित्व को पूर्णतया नामजूर करती है उनके अनुसार ता यदि काई व्यक्ति आत्मा नामक किसी शाश्वत तत्त्व को मानता है तो वह मिथ्यात्वी है। उसकी परिगणना उन्होने मिथ्यात्वियो म की है। वस्तुत यह अस्वीकृति की अतिवादिता है। खुदकशी की है उन्होने जीवन के साथ। उनके अनुसार पुनर्जन्म आदि का मूल कारण हमारी वासना है। पर वासना के अस्तित्व को मानने मात्र से पुनर्जन्म आदि कार्य नही सधते। चूँकि वासना ऊह्यमान है अत सवाहक चाहिये। वासना का स्थान तो भावात्मक शुभाशुभ कर्म जेसा है। जैसे क्रिया का सवाहक आत्मा है वेस ही वासना का सवाहक होना चाहिये। भला यह कैसे सम्भव हो सकता है कि क्रिया है कर्ता नही पथ है पथिक नही सशय है सशयी नही दु ख है दु खित नही परिनिर्वाण है परिनिवृत/परिनिर्वात नही। अत जैसे रथी के बिना रथ का चलना सम्भव नही हैं वैसे ही आत्मा के बिना पुनर्जन्मादि क्रियाएँ सम्भव नही हैं।

ऐसा लगता है वास्तव म उन दार्शनिको को दु ख की नितान्त अशाश्वतता की स्थापना करनी थी। इसलिए उन्ह आत्मा का मूलोच्छेद करना जरूरी लगा क्योकि आत्मा को शाश्वत मानन से कही दु ख भी शाश्वत न हो जाए। अत क्या न उस आत्मा को ही जड से उखाड दिया जाए जो दु ख/सुख का मूल है। इसी उद्देश्य से आत्मा को अस्वीकार किया गया। वस्तुत दु ख को मिटाना आवश्यक है, किन्तु उसे मिटाना आवश्यक नही है जो दु ख का अनुभव करता है। क्योकि सुख का अनुभव करने वाला भी वही है जो दु ख का अनुभव करता है। सुख और दु ख जीवन के दो पहलू हैं। मात्र दु खवाद को लेकर आत्मा को अस्वीकृत करना उचित नही है। आत्मसयुक्त जीव ही तो यह विचार कर सकता है कि उसे दु ख है या सुख। जिसे ऐसा विचार नही है जो ऐसा अनुभव नही करता वह सचेतन प्राणी नही है मृत है। देवदत्त जेसा सचेतन प्राणी ही तो यह सोच सकता है कि वह स्तम्भ है या पुरुष। जब कोई साधक साधना मे निमग्न

हो जाता है तो उसे यह स्पष्ट आभास हो जाता है कि मै काया नही हूँ। तभी कायाध्यास छूटेगा कायासक्ति टूटेगी और साधक शारीरिक भौतिक प्रवाह से हटकर आन्तरिक साधना के लिए प्रस्तुत होगा। चूँकि आत्मा अमूर्त है। उसे देख नही पाते क्योकि देखने वाली स्वय आत्मा है। कुछ इशारे ऐसे अवश्य है जो मूर्त म अमूर्त की झलक दे देते है। वीणा मूर्त है, पर सगीत अमूर्त है। शब्द मूर्त है पर उसका अर्थ अमूर्त है। अमूर्त को अमूर्त कहकर नकारा नही जा सकता। उसे मूर्त करने के भी तरीके है।

एक बार एक ऊँटगाड़ी और एक कार की आपस म टक्कर लग गयी। सयोग कुछ ऐसा था कि ऊँटगाडी का कुछ नही बिगडा, पर कार उल्टी हो गयी। उस खासा नुकसान हुआ। उसने ऊँट वाले पर कोर्ट म दावा कर दिया। न्यायाधीश ने ऊँट वाले से पूछा क्या तुम्हे सामने से कार आती दिखाई दी? ऊट का मालिक बोला हाँ साहब! क्या तुमने कार को साइड मे करने के लिए ड्राइवर को हाथ का इशारा किया? ऊँट का मालिक बोला नही साहब! न्यायाधीश ने पूछा क्यो?, ऊँटवाला बोला, साहब इसकी कोई जरूरत ही नही थी। भला, जिसे मेरी इतनी बड़ी ऊँटगाड़ी दिखाई न दी उसे मेरा हाथ कैसे दिखाई देता?

तो जो लोग मूर्त को भी भलीभाँति नही देख पाते, वे अमूर्त को कैसे देख पाएँगे? ना इन्दियग्गेज्झ अमुत्तभावा अमुत्तभावा वि य होई निच्चो।' आत्मा तो अमूर्त है अत इन्द्रियगोचर नही है। इसे इन्द्रिया के द्वारा नही जाना जा सकता। इन्द्रिया के द्वारा तो परपदार्थ को जाना जाता है। इन्द्रियाँ अपने इन्द्रिय स्वरूप को नही जान सकती। हमारी आँख दूसरे की आँख को तो देख सकती है पर क्या वह स्वय को भी देख सकती है? जीभ फल का मीठे का नमक का स्वाद महसूस कर सकती है, पर अपना स्वाद? चाहे आँख हो या जीभ, इन्द्रियाँ तो मात्र माध्यम हैं पर पदार्थों का आत्मा का बोध कराने के लिए। यह आत्मा ही है जो इन्द्रियो के साधन से ज्ञान प्राप्त करती है। इन्द्रियाँ तो ज्ञान प्राप्ति की सहायिकाएँ है। वे अमूर्त को ग्रहण नही कर सकती, मूर्त को ही ग्रहण कर सकती है।

आपने बिजली की चमक को उसके प्रकाश को देखा है, पर बिजली को कभी देखा है? किसी ने भी बिजली को नहीं देखा। जिस वैज्ञानिक ने बिजली की खाज की जो वैज्ञानिक बिजली की परिभाषा कर रहे है, उन्होने भी बिजली को कहाँ देखा है? बिजली अमूर्त है उसका प्रकाश मूर्त

है। आत्मा अमूर्त है, शरीर मूर्त है। आत्मा बिजली की तरह है। कहा गया है—

पुष्पे गन्ध तिले तैल काष्ठेग्नि पयसि घृतम्।
इक्षौ गुड तथा देहे, पश्यात्मान विवेकत ।।

जैसे फूल मे सुगन्ध तिलो म तेल काष्ठ म/अरणि की लकडी म आग दूध मे घी और गन्ने म गुड है, तथैव शरीर म छिपे हुए आत्मा के अस्तित्व को भी विवेक से जान लो।

आत्मा तो मात्र स्वय की स्वीकृति है। स्वय की सत्ता स्वय का अस्तित्व जानने की मजूरी है। मै बोलता हूँ अत मै हूँ। म विचार करता हूँ, अत मै हूँ। यह मैं ही आत्म अभिव्यक्ति है। चूकि आत्मा ज्ञाता है द्रष्टा है अत यह ज्ञेय या दृश्य नही बन पायेगी। इसकी तो अनुभूति होती है, अन्तर्यात्रा क क्षणो मे। आत्मा कोई वस्तु पदार्थ या मेटेरियल नही है जिसे कोई छू सके जान सक, देख सके। देखा छूआ तो उसे जाता है जिसका कोई रूप होता है जैसे यह भवन। आत्मा तो कालातीत है क्षेत्रातीत है। टाइम और स्पेस से अलिप्त है यह। वैज्ञानिको ने आत्मा को जानने का, उसे पकडने का प्रयास किया, पर सफलता हाथ न लगी।

वैज्ञानिको ने काच के कमरे मे एक मृतप्राय जीवित व्यक्ति को बन्द किया। काच के कक्ष म हवा का आवागमन भी नही था। डाक्टर वैज्ञानिको ने उस व्यक्ति को अपनी आँखो के सामने मरते देखा पर वे उस शक्ति को न पकड़ पाये, जिसकी वजह से व्यक्ति जिन्दा था। चूँकि *आत्मा अमूर्त है* अरूपी है अत वे उसे हासिल न कर पाय। पर उस शक्ति को सॉल को विल-पावर को नामजूर नही किया जिसके कारण मनुष्य जीवित था।

आत्म स्वीकृति के बाद अब प्रश्न यह उठता है कि *आत्मा एक है या* अनेक। कतिपय दार्शनिको की मान्यता है कि हम आत्मा के अस्तित्व पर तो विश्वास करते है किन्तु आत्म भिन्नता पर विश्वास नही करते। उनका कहना है कि विश्व की सारी आत्माएँ एक है। वे न तो *अलग-अलग है* और न ही उनमे कोई भिन्नता है। व्यवहारत वे अलग-अलग और भिन्न भिन्न दिखाई देती है, किन्तु तात्त्विक दृष्टि से उनम न तो भिन्नता है, न पृथकता। जैसे सरोवर मे से एक घडा जल बाहर निकालने पर उसके रूप रग म भेद दिखाई देता है पर हकीकत म सरोवर का जल और घड का जल एक सा है। यदि हम घट-जल को सरोवर म उड़ेल द तो उसका रूप अलग कहाँ रहेगा?

मगर जब हम इस बात पर गहराई में विचार करते है तो हमें आत्मा की एकता बाधित होती हुई लगती है। पुण्यमूलक पापमूलक भिन्न भिन्न विचारों को देखते हुए एकात्मवाद की स्थापना उचित नहीं लगती। यदि सारी आत्माएँ एक है तब तो सबका वैचारिक प्रवाह और कर्म प्रवाह एक सा होना चाहिये। जब कि संसार में प्रत्येक प्राणी के विचार भिन्न भिन्न होते है। प्रत्येक दर्शन की मान्यताएँ भिन्न भिन्न होती हैं मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना। कर्म भी सभी जीवों के जुदे जुदे होते हैं। जिस रूस में साम्यवाद का बोलबाला है वहाँ पर भी तो अमीर गरीब है। इन जुदे जुदे तथ्यों के कारण ही सभी को सुख दुःख की कमी बेशी रहती है। सुख और दुःख की विषमता ही आत्मा के नानात्व की सिद्धि करती है। बादल के लिए किसान और कुम्हार दोनों अलग अलग है। वह यदि दोनों को एक मान ले तो दोनों में से एक को खतरा अवश्य है। इसीलिए मैंने कहा कि सभी आत्माएँ एक नही है अलग अलग है।

यदि आत्मा को एक माना जायेगा, तो उतार चढ़ाव, विकास पतन, ज्वार भाटा आरोह अवरोह बन्धन मुक्ति एक साथ ही होगे। जबकि ऐसा नही होता। अनेक आत्माएँ मुक्त हो चुकी है और अनेक बन्धन में आबद्ध है। तब यह कैसे माना जा सकता है कि आत्मा एक है, अनेक नही? यदि सभी आत्माओं को एक मान लिया जायगा तो फिर कौन आत्म विकास के लिए प्रयास पुरुषार्थ करेगा? और यदि करेगा भी तो निजी प्रयासो से उसकी मुक्ति भी नही होगी। अब आप ही सोचिये कि कितनी कितनी भिन्नताएँ है। जन्म मृत्यु की भिन्नता, शरीरों इन्द्रियों, चैतसिक प्रवृत्तियों की भिन्नता स्वभाव की भिन्नता सात्विक राजसिक और तामसिक गुणों की भिन्नता ये सारी भिन्नताएँ एकात्मवाद के लिए चुनोती है।

वस्तुत आत्मा एक स्वतन्त्र तत्त्व है। विश्व में जुड़वा आत्माएँ नही है। जगत् के हर अणु-परमाणु की तरह आत्माएँ भी अपने आप में स्वतन्त्र है। कोई किसी के आश्रित नही है। जिन दर्शनों के अनुसार आत्मा ईश्वर का अंश है अवयव नही वे आत्म स्वतन्त्रता को नही मानते। उनका कहना है कि जिस प्रकार आग से चिनगारी व्युच्चरित होती है, झड़ती है, वैसे ही ईश्वर से जीव व्युच्चरित होते है। मेरी समझ से, आत्मा के व्युच्चरण के साथ चिंगारी का उदाहरण बराबर नहीं है। क्योंकि अग्नि की चिंगारी निरुद्देश्य और स्वाभाविक है। अत ब्रह्म से जीव के व्युच्चरण की बात घटित नही होती, क्योंकि ब्रह्म से जीव का व्युच्चरण सप्रयोजन एव सोद्देश्य

है।

वास्तव म आत्मा स्वय एक मौलिक तत्त्व है। आत्मा की उत्पत्ति अन्य किसी से नही हुई। यदि यह माना जाए कि आत्मा का जन्मस्थान ब्रह्म है तो यह प्रश्न उपस्थित होना भी स्वाभाविक है कि ब्रह्म का उत्पत्ति स्थान क्या है? जैसे ब्रह्म का कोई उत्पत्ति स्थान नही है क्योकि वह अनादि-अनन्त है वैसे ही आत्मा का भी कोई उत्पत्ति स्थान नही होना माना जा सकता है। कारण आत्मा भी अनादि है। अनुत्पन्न तत्त्व का आदि रूप नही होता।

भौतिकवादियो के अनुसार आत्मा की उत्पत्ति भौतिक तत्त्वा के सम्मिश्रण से हुई है। जबकि भौतिक तत्त्व जड है। जड से आत्मा की उत्पत्ति वाधित होती है। क्योकि जड़ से चेतन तत्त्व पैदा नही हो सकता। यह एक सहज अनुभवगम्य तथ्य है। भला जब भौतिक तत्त्व ही अचेतन है तो उनके सयोग से सचेतन आत्मा कैसे पैदा होगी। जब भौतिक तत्त्वो मे चेतना नही है तो उससे निर्मित होने वाले शरीर म भी चेतनता नही हो सकती। इसलिए शरीर का आधार आत्मा है। आत्मा के कारण ही शरीर म गति आदि क्रियाएँ सचरित होती हैं।

शारीरिक इन्द्रियाँ पृथक-पृथक है। प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय का ही ज्ञान करती है। जैसे आँखे रूप का ही ज्ञान करती है न कि रस का। पाँचो इन्द्रियो के विषयो को समन्वित रूप मे ज्ञान करने वाला और कोई तत्त्व अवश्य है उसी को आत्मा कहते है। शरीर मन इन्द्रियाँ श्वासोच्छ्वास वचन आदि भौतिक है। ये चेतन के ससर्ग से चेतनायमान होते है। हमारे इस शरीर का निर्माण और विकास जीव के द्वारा ही होता है। क्योकि आत्मा निमित्त कारण बनकर परमाणुओ के समूह को रूप देकर शरीर का निर्माण करती है। कर्मो के अनुसार आत्मा को शरीर मिलता है। क्योकि जैसा वह तत्त्वत भिन्न भिन्न जानता है ज्ञायक भावरूप जानता है वही समस्त शास्त्रो को जानता है। भेद विज्ञान की यही पृष्ठभूमि है। आत्मा और शरीर दोनो मे भेद करने वाला ही ज्ञानी है। यदि दोनो को कोई अभेद मानता है तो वह मिथ्यात्वी है अज्ञानी है। तादात्म्य होने के कारण लोग शरीर और आत्मा को एक मान लेते है। जबकि शरीर बाहर जाने का मार्ग है और प्राप्त भी बाहर से ही है माता पिता से प्राप्त है। भेद विज्ञान सध जाने के बाद बाहर का प्रभाव नही पडता। आनन्दघन देवचन्द्र राजचन्द्र सहजानन्दघन, विनोबा भावे आनन्दमयी माँ विचक्षणश्री धनदेवी माँ

भाषा म भेद विज्ञान है। न केवल शरीर और आत्मा बल्कि प्रत्येक दो व्यतिरेकी भिन्न पदार्थो म द्वैत सम्बन्ध है। जो आत्मा को शरीर से तत्त्वत भिन्न जानता है, वही भेदविज्ञान की पराकाष्ठा को छू सकता है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा म कहा है —

जो अप्पाण जाणदि असुइ सुरीरादु तच्चदो भिन्न।
जाणग - रूव सरूव सो सत्थ जाणदे सव्व।।

यानी जो आत्मा को इस अपवित्र शरीर से तत्त्वत भिन्न जानता है उसके रूप स्वरूप को जानता है उसकी जुदाई को समझता है वही सर्वशास्त्रो का ज्ञाता है। शास्त्रो को उसीने तल से जाना है जिसने शरीर को आत्मा से अलग पहचाना है। मनुष्य वास्तव मे आत्मा और शरीर का जीव और परमाणुओ का पुरुष और प्रकृति का एक अद्भुत सयोग है। जैसे पगु आदमी को जगल म लगी आग को देखते हुए भी दौडने भागने मे असमर्थ होने से जलन का डर है और अन्धे आदमी को दौडते हुए भी देखने मे असमर्थ होने से जलने का डर है। मगर दोनो के मिल जाने से अन्धे के कन्धो पर पगु के चढ जाने से आग से बचा जा सकता है। दोनो के सयोग से दौड़ने का भी सामर्थ्य आ गया और देखने का भी। बात सही है। क्योकि एक पहिये से रथ नही चलता। इस पगु और अन्धे के न्याय से पुरुष और प्रकृति का सयोग ही ससार है। इनके विशिष्ट सयोग से ही हमारा व्यक्तित्व उत्पन्न हुआ।

यद्यपि सामान्य दृष्टि से दोनो मे एकरूपता है किन्तु सच यह है कि दोनो म मूलत भिन्नता है । क्योकि आत्मा चैतन्यमय है शरीर जड है । दोनो का एकत्व और भिन्नत्व सापेक्ष है । आत्मा तथा शरीर मे एकता इसलिए मान्य है क्योकि इस मान्यता के बिना नैतिक आचरण असम्भव है। इन दोनो मे भिन्नत्व मानना इसलिए आवश्यक है क्योकि भिन्नत्व माने बिना अनासक्ति और भेद विज्ञान का आदर्श उपस्थित नही हो सकता। जीवन का रहस्य नही जाना जा सकता। शरीरावृत होने के कारण ही आत्मा को जीव की सज्ञा दी गई। हालाकि आत्मा और जीव एक ही अर्थ मे प्रयोग किये जाते है, किन्तु दोनो म भेद रेखा है। जो आत्मा शरीर म है उसे जीव कहते है। जब वह शरीर से अलग हो जाती है तब उसे आत्मा नाम दिया जाता है। शरीर अनित्य है इसलिए वह नष्ट हो जाता है, किन्तु आत्मा नित्य है इसलिए वह अमरता की यादगार सजोए रहती है।

आत्मा की सत्ताःअनछुई गहराइयाँ

मैं आत्मवादी हूँ। मुझे अपने पर विश्वास है। चूँकि मै आत्मवादी हूँ इसलिए किसी का अश नही हूँ ईश्वर का भी नही। आत्मा पूर्ण हे अश अपूर्ण है। अशा को पाने की तमन्ना कम है। यात्रा हो पूर्ण की पूर्णता के लिए, पूर्णता की ओर। ईश्वर से भयभीत होना भी मैने नही सीखा हे। कारण, भय ईश्वर के पास नही ले जाता है। ईश्वर का पाने की भूमिका तो अभय है। यह आत्मा आस्तिक भी नही है पर नास्तिक भी नही है। कारण आस्तिकता और नास्तिकता क भेद मस्तिष्क स उपजे है और आत्मा मस्तिष्क से परे है। आत्मा को पाने का कोई मार्ग भी नही है। मार्ग ता हमे कही और ले जात है। जबकि आत्मा कही और नही हमारे निकट है सबसे निकट। इसलिए हमे अपनी आत्मा का दर्शन करना है।

तो आज हम स्वय को खोलने का प्रयास करेगे। जैसे ही भीतर की पर्त-दर पर्त को हटाएगे आत्मा के प्रकाश का दर्शन हो जायेगा। जब हम अपने को खोलेगे, तो पायगे कि हम अपने आप म स्वतत्र है। हमारी आत्मा एक स्वतत्र प्रत्यय है। आत्म स्वतत्रता के अभाव म कर्म और सक्ल्प की स्वतत्रता दब जायेगी। जबकि प्रत्येक व्यक्ति के कर्म एव सक्ल्प भिन्नता के मुखौटे पहने रहत है स्वतत्र होते है। वस्तुत आत्मा का अतीत उसकी नियति पर आधारित है और भविष्य पुरुषार्थ पर। ज्ञानवादी आत्मा को कर्म करने मे स्वतत्र मानता है। वैराग्य, अभ्यास ज्ञानाराधना आदि द्वारा ज्ञान का अर्जन करता है, जो उसके बलबूते की बात है। कतिपय दार्शनिक आत्मा का सर्वथा स्वातन्त्र्य नही मानते। उनके अनुसार आत्म स्वातन्त्र्य भगवत्कृपा सापेक्ष है। इसीलिए वे लोग प्रपत्ति और पुष्टि को भगवत् समर्पण और भगवत् अनुग्रह को मोक्ष प्राप्ति म आवश्यक मानते है। कुछ दार्शनिक शब्दश आत्मवादी नही है, किन्तु आत्मा के होने पर ही सधने वाले कार्यों को वे मान्यता देते है। वैसे वे लोग ज्ञानवादी हैं और ज्ञान के

अनुरूप आष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करते हुए कर्मवादी है। ज्ञान और कर्म की साधना में कर्ता का स्वातन्त्र्य है।

आत्मा चैतन्य रूप है जिससे वह समस्त जड़ पदार्थों से अपना अलग अस्तित्व बनाए रखती है। यद्यपि चेतना आत्मा का गुण है फिर भी कुछ जीवों में चेतना की मात्रा अधिक हो सकती है और कुछ में कम। जो व्यक्ति जितना जागरूक होगा उसकी चेतना उतनी ही अधिक होगी। यही कारण है कि एक मरीज की अपेक्षा खेल खेलते एक खिलाड़ी की चेतना शक्ति अधिक विकसित होती है।

कुछ लोगों की दृष्टि में चेतना शरीर का गुण है, पर ऐसा नहीं है। जिस प्रकार दीपक वस्तुओं को प्रकाशित करता है किन्तु उसके प्रकाश के लिए वस्तुओं का रहना जरूरी नहीं है। यदि वस्तुएं नहीं रहेंगी, तो भी दीपक तो अपनी रोशनी फैलाता ही रहेगा। उसी प्रकार वस्तुओं की चेतना आत्मा की रहती है पर चेतना के लिए वस्तु सम्पर्क आवश्यक नहीं है। यदि वस्तु का अभाव हो और सम्पर्क भी न हो तो भी चेतना तो रहती है। इसलिए आत्मा चैतन्य विशिष्ट है। चेतना उसकी निजी सम्पत्ति है।

आत्मा निश्चय ही सगुण धारा की प्रतिनिधि है। वह निर्गुण नहीं सगुण है। इसका अपना व्यक्तित्व है इसकी अपनी विशेषताएँ है। इसकी यथार्थता को झुठलाया नहीं जा सकता है। यह एक जीवन्त सत्ता है। यह अनित्य नहीं है चिरस्थायी है। कर्मवशात् परतन्त्र भले ही कहें पर मूलतः आत्मा स्वतन्त्र है। आत्मा ज्ञायक है क्योंकि ज्ञान का व्यवसाय इसी के द्वारा पर होता है। अनुभूति और संकल्प की क्षमता भी इसी में है। आनन्द स्वरूप भी यही है। सत् चित और आनन्द का त्रिवेणी संगम यही न हो है।

को चोंका डाला। अरे भला यह कैसा प्रश्न! एक ओर लाश पड़ी है और दूसरी ओर फकीर पूछता है कि यह मरा हुआ है या जिन्दा। क्या इसकी मृत्यु पर भी सन्देह है? एक आदमी ने कहा फकीर साहब! आपके प्रश्न ने हमको उलझा दिया है। फकीर का चेहरा बड़ा गंभीर था। पता है साधु ने क्या कहा? उसने कहा जो आज मृत है वह पहले भी मृत था। जो पहले जीवित था वह आज भी जीवित है। मात्र दोनों का रिश्ता टूट गया।

फकीर ने बिल्कुल ठीक ही कहा था। जो लोग जीवन की सही परिभाषा नहीं जानते हैं व मौत को जीवन का समापन समझते है। किन्तु ऐसा नहीं है। जीवन तो जन्म और मृत्यु के भीतर भी है और बाहर भी। जीवन का अस्तित्व जन्म के पहले भी रहता है और मृत्यु के बाद भी रहता है। जीवन का ही जन्म है जीवन की ही मृत्यु है पर न तो जीवन का कोई जन्म है और न उसकी मृत्यु है। जन्म मरण होते रहते हैं पर जीवन शाश्वत है। राही वे ही है राहे बदलती रहती हैं।

जीवन अर्थात् आत्मा और आत्मा अर्थात् जीवन। चाहे जीवन कहे चाहे आत्मा वह दोनो एक ही है। इस द्वैत में छिपे अद्वैत को समझने की चेष्टा कीजिये। शब्दो का फर्क महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है अर्थो का फर्क। पर आत्मा और जीवन में शब्दो का ही फर्क भेद है पर अर्थ एक ही है। हमे इस शब्दार्थ की जड़ को गहराई से परखना है।

हमारा जीवन हमारी आत्मा तो धुरी है। स्वय स्थिर है पर उस पर लगा चक्र चलता है। चूँकि चक्र चलता है अतः जहाँ तक चक्र जाता है वहाँ तक धुरी का भी जाना पड़ता है। अब समझने की बात यह है कि चक्के में लगी धुरी कर्त्ता है या अकर्त्ता। धुरी यानी आत्मा। आत्मा का कर्तृत्व और अकर्तृत्व विचारणीय है व्यवहारतः तो नैतिक या अनैतिक सभी प्रकार के कर्मो का कर्त्ता मनुष्य ठहरता है किन्तु इस पर बारीकी से विचार करें तो मूलतः इन कर्मो का एक मात्र कर्त्ता मनुष्य नहीं है। क्योंकि मनुष्य न तो शरीर है, और न ही आत्मा है, अपितु वह इन दोनो का एक सम्बन्ध है एक सयोग है। बस सयोग के कारण ही मनुष्य जीता है। धुरी और चक्र के सयोग से ही गाड़ी आगे बढ़ती है।

शायद आपको मालूम नहीं होगा कि कुछ दार्शनिक लोग शरीर/अचित् रूप प्रकृति को ही कर्ता मानते हैं। किन्तु यह धारणा उचित नहीं है। क्योंकि प्रकृति आखिर जड़ है निर्जीव है और निर्जीव कर्त्ता नहीं हो सकता। भला, मुर्दा कभी कर्त्ता हो सकता है? कर्तृत्व का सम्बन्ध तो

एक मात्र [illegible] से है।

कुछ दार्शनिक आत्म कर्तृत्ववाद का समर्थन करते है। यद्यपि शरीर को कर्ता मानने की अपेक्षा आत्मा को कर्ता मानना ठीक है, पर उसमे भी सशोधन की जरूरत है। वस्तुत कर्तृत्व का सम्बन्ध लौकिक अलौकिक समस्त व्यापारो से है। जब आत्मा ससार मे रहती है तब तो उसके साथ कर्तृत्व का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है परन्तु जब आत्मा ससार से छुटकारा पा लेती है निर्वाण पा लेती है अपने वास्तविक स्वरूप को ग्रहण करती है, तब उसमे कर्तृत्व नही रहता। जहाँ कही भी आत्मा के सम्बन्ध मे कर्तृत्व की बात आती है उसका आशय भी यही समझना चाहिए कि माया, पुद्गल या भौतिक परमाणुओ के साहचर्य से जुड़ी आत्मा मे केवल कर्तृत्व का आभास मात्र रहता है। कर्तृत्व आत्मा का निजी गुण नही है। कारण यदि निजी गुण होता तो निर्वाण प्राप्ति के बाद भी यह गुण रहना चाहिए। जबकि ऐसा नही रहता है।

वस्तुत आत्मा मूल रूप मे अकर्ता है। परन्तु अपने अशुद्ध रूप मे वह कर्ता भी है। जब तक आत्मा कर्म के परमाणुओ से युक्त है, तब तक वह कर्ता है। अथवा इसे यो कहा जाये कि कार्मिक परमाणुओ के साहचर्य से उत्पन्न चेतस् भावो का कर्ता है।

मैने देखा है कि एक बैलगाड़ी के नीचे एक कुत्ता चल रहा था। गाड़ी चलती कुत्ता भी चलता। गाड़ी रुकती कि कुत्ता भी रुक जाता। कुत्ता गाड़ी के नीचे से न तो आगे बढ़ता है और न पीछे खिसकता है। कुत्ता यह सोचता है कि मेरे भरोसे ही गाड़ी चलती है। यदि मैने चलने मे थोड़ी सी भी ढील कर दी तो गाड़ी नीचे गिर जायेगी।

आत्म कर्तृत्ववाद भी तो ऐसा ही है। गाड़ी और कुत्ते का सयोग आत्मा और शरीर का सयोग–यही तो कर्तृत्ववाद की गाड़ी को चलाता है।

आत्मकर्तृत्व की भाँति ही आत्म भोक्तृत्व की धारणा है। जो आत्मा शरीर मे है, या बद्ध है उसके साथ भोक्तृत्व का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। जबकि आत्मा सत्यत तो साक्षी स्वरूप है। शरीर मे आबद्ध होने के कारण शारीरिक वैचारिक, मानसिक क्रियाओ का भोक्ता है। आदमी जेल मे बन्द हो गया तो वह कैदी बन गया। जेल मे वह सारी क्रियाएँ कैदी की ही करता है इसलिए वह कैदखाने का भोक्ता है। किन्तु वह कैदी से परे भी कुछ है। आखिर तो वह आदमी है। कैद के सयोग से उसमे कैद के भोक्तृत्व का आरोपण हो जाता है किन्तु कैद से छूट जाने के बाद कैद का

भोक्तृत्व नहीं रहता। ठीक इसी प्रकार से आत्मा में भी पर के संयोग से कैद के भोक्तृत्व का आरोपण हो जाता है किन्तु कैद से छूट जाने के बाद कैद का भोक्तृत्व नहीं रहता। आत्मा में भी पर के संयोग से भोक्तृत्व का आरोपण होता है, मगर मोक्ष प्राप्ति के बाद आत्मा में भोक्तृत्व नहीं रहता है। मोक्ष तो कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व दोनों का अयोग है। वहाँ कर्ता और भोक्ता के रिश्ते-नाते नहीं रहते। आगम में कहा गया है—

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ।।

आत्मा ही सुख-दुःख का कर्ता है विकर्ता है और भोक्ता है। सत्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है।

यद्यपि कुछ लोग कहते हैं कि उसकी आत्मा दुष्ट है पापी है। मगर ऐसा नहीं है। यदि हमारी आत्मा सत्प्रवृत्तियों में प्रवृत्त है तो वह सात्विक है। हमारी आत्मा स्वभावतः अपवित्र दुष्ट और पापी नहीं है। किसी दूसरे ने यदि पाप किया है तो उसका प्रभाव आपकी आत्मा पर नहीं पड़ सकता। इसी तरह दूसरे ने यदि पुण्य किया है तो इससे आपकी आत्मा पुण्यात्मा नहीं हुई। आत्मा किसी दूसरे के पाप से न तो पतित होती है और न ही वह अपने उद्धार के लिए किसी दूसरे पर आश्रित है। अतः यह हम पर निर्भर करता है कि हम अपनी आत्मा को पतित करें या विकसित। दियासलाई का उपयोग हम अंधकार को दूर भगाने के लिए करें या लोगों की झोंपड़ियों में आग लगाने में यह तो हमारे ऊपर ही आधारित है। हमारी आत्मा का उद्धार तो हमें ही करना होगा।

'उद्धरेदात्मनात्मानम्' आत्म-दर्शन का स्वर्णिम सूत्र है। इस सम्बन्ध में मैं अपनी ही एक कविता सुनाता हूँ—

आओ अन्तर के मन्दिर में
जीर्णोद्धार करें हम इसका।
करें प्रतिष्ठा आत्म देव की
इसमें ईश निहित हैं सबका।।
करते जो उद्धार लोक का
वे क्यों परम सत्य यह विस्मृत—
जीवन का उद्धार जगत् में
अपना तो अपने पर निर्भृत।।

आत्म बिम्ब बन जाये निर्मल,
प्रतिबिम्बो मे कहाँ सत्यता।
आत्म विजेता ही जग जेता,
त्रिभंगी पद सकल सफलता।।

हमारे दारोमदार हम ही है, हमारी आत्मा ही है। आत्मा के बलबूते पर ही साधना और साध्य के महल बनाये जाते है। जो लोग आत्म-दर्शन के अभिलाषी है वे जरा पहचाने अपने आपको, अपनी शक्ति को।

आत्मा की शक्ति प्रबल है। हरेक बुलबुल की आत्मा शक्तिशाली सागर है। क्षुद्र से क्षुद्र जीव मे भी आत्म शक्ति की आत्म-चेतन्य की अनन्त ज्योति समाहित है। शक्ति का बाहरी स्रोत यान्त्रिक हो सकता है, किन्तु मूल स्रोत आत्मा ही है ऊर्जा ही है। इसलिए आत्म-शक्ति ही सर्वोत्तम शक्ति है यही ऊर्जा का अनन्य पुज है, यही जीवन का सम्बल है। आत्म शक्ति के बिना जीवन, जीवन नही रहता जीव निष्प्राण हो जाता है।

यद्यपि आत्मा अनन्त शक्तियो का स्वामी है, फिर भी एक शक्ति और है जो इसे कुठित करती है और वह है कर्म शक्ति। हालांकि कर्म शक्ति आत्म शक्ति को आवृत करती है, किन्तु आत्मा की शक्ति कर्म की शक्ति से अधिक है। कर्म की शक्ति तो ज्वार भाटे की तरह है पर क्या ज्वार भाटे की शक्ति सागर से ज्यादा है? कर्म की शक्ति तो वास्तव मे आत्मा के अगारे के ऊपर ढकी हुई राख है। राख चाहे बहुत हो, पर हवा के झोके से उड़ते कितनी देर लगेगी। राख यानी हमारा अज्ञान, हमारा मिथ्यात्व हमारी नासमझी। यही कारण है कि व्यक्ति आत्म शक्ति सम्पन्न होते हुए भी अज्ञानवश कर्माधीन हो जाता है।

एक बात याद रखिये कि आत्मा मे बन्धन और मुक्ति की, दोनो तरह की शक्तियाँ है। वह तो सूर्यवत् है जो स्वय ही बादल बनाता है और बादलो से आवृत हो जाता है। पर यह मत भूलिये कि जो सूर्य बादलो से आच्छन्न है उसमे वह शक्ति भी है जिससे वह उन बादलो से अनावृत होकर प्रकाशमान हो जाता है।

वैसे हमारी ससारी आत्माएँ प्राय कर विभाव दशा मे रहती है। यह आत्मा की प्रतिकूल दशा है। इस दशा का नाम ही माया है। आत्मा जब तक मकड़ी की शक्ति मे उलझी रहती है, तब तक विभाव शक्ति के द्वारा परिचालित होता है कर्मों का बन्धन करती है और उसमे आबद्ध हो जाती है। वह बिल्कुल मकड़ी के जाल मे उलझ जाती है। यह जाल ही

विभाव दशा है यही माया और मिथ्यात्व है। जब आत्मा अपने सहज स्वाभाविक रूप मे रहती है तो उसे आत्मा की स्वभाव दशा कहते है। इस दशा म आत्मा माया के क्षुद्र बन्धनो को छिन्न भिन्न कर अपने ही प्रकाश से प्रकाशित रहती है। अन्य शब्दो म यही आत्मा की मुक्तावस्था है और यही योगियो और साधको की इच्छित दशा है। जहाँ परमात्म भाव ब्रह्म भाव ओर अर्हद् भाव की निधूर्म-ज्योति ज्यातिर्मय रहती है।

अपनी आत्मा की इस दशा को पहिचानने के लिए ही तो हम मदिर जाते हैं। मदिर मे रखी मूर्ति परमात्मा की प्रतीक है और हमारी प्रतिछवि है। मूर्ति वह दर्पण है जिसमे हम अपने को ही निहारते है और निहार निहार कर अपने को ही सजाने और सवारने का भाव बनाते है। यह प्रयास एक हद तक ठीक ही है। आत्म साक्षात्कार के लिए एसी पगडडियाँ बहुत कुछ सहायता पहुँचाती है। पर आखिर हम यह नही भूलना चाहिये कि हमारी आत्मा निराकार है। चूँकि परमात्मा भी आत्मा का ही एक परिष्कृत रूप है अत परमात्मा के प्रति एकाग्रता और रसमयता के तार नही जुडे हैं तो उसे आकार निराकार तक कैसे पहुँचा दगे। हमने फोटो खीचा एक्सरे किया उसमे मूर्त तो आ गया किन्तु अमूर्त की छवि नही उभरी। फोटो तो मुर्दे का भी आ सकता है पर आत्मा का फोटो नही खीचा जा सकता। जो मूर्त से अतीत दृष्टि रखता है वही अमूर्त म प्रवेश कर पाता है।

आत्मा को न तो देखा जा सकता है न ही जाना जा सकता है। दर्शन और ज्ञान मूर्त पदार्थ का सम्भव है किन्तु अमूर्त का नही। जो स्वय ज्ञाता है उसे कैसे जाना जा सकता है आत्मा का तो अनुभव किया जा सकता है। और अनुभव आत्मा की चैतन्य शक्ति से होता है। आत्मा ज्ञाता है द्रष्टा है। यह ज्ञायक है इसमे ज्ञेय कृत अशुद्धता नही है। इसीलिए आत्मा विज्ञान का विषय नही बन सकती। आत्मा का तो अपना विज्ञान है। इसे जाना नही जा सकता क्योकि यह तो जानने वाली है जानी जाने वाली नही है। जिस रूप मे हम दूसरी चीजो का ज्ञान करते है उस रूप म इसका ज्ञान नही हो सकता। जिसे आत्मा का पता लगाना है उसे समाधि की उस अन्तिम अवस्था तक पहुँचना पडेगा जहाँ मात्र ज्ञाता ही शेष रह जाता है। जानने वाला ही शेष बचे और कुछ भी नही। मन वचन काया आदि की चुम्बकीय शक्ति से बाहरी पौद्‌गलिक आकर्षण से हटकर अन्तरात्मा मे प्रवेश करने वाले व्यक्ति को ही आत्मा की अनुभूति हो

वजा के ऊपर गू ता।
निर्विकार और वीतराग बन,
कर्मों की कथरी को धोले।

आत्म वस्त्र कर्म के कलुष से मैला है। धोना है इसे। धोना यानी निसीहि से गुजरना है।

निसीहि निसीहि -- यह महावीर स्वामी का बड़ा जबर्दस्त शब्द है। निसीहि द्वन्द्वातीत अवस्था तक पहुँचने की न केवल सैद्धान्तिक बल्कि मनोवैज्ञानिक पद्धति है। सारा योग शास्त्र इस निसीहि शब्द म आया हुआ है। योग शास्त्र का प्रथम चरण है यह निसीहि। योग की एक प्रक्रिया है - वह है विरेचन की आदमी योग शुरु करता है तो सबसे पहले उसे विरेचन करना पड़ता है। विरेचन यानी कि खाली करना अपने को। और यह विरेचन योगशास्त्रीय लोग साँसो के द्वारा करवाते है। प्राणायाम की तीन विधियाँ होती है - पूरक कुम्भक और रेचक। प्राण वायु को बारह अगुल प्रमाण बाहर निकालकर उसे वही रोके रखना पूरक है। इसी प्रकार प्राण वायु को भीतर रोक देना कुम्भक है और प्राण वायु का बाहर भीतर रेचन करना रेचक है। प्राणायाम की ये विधियाँ मस्तिष्क की शुद्धि एव मन की एकाग्रता म परम सहायक बताई जाती है। निसीहि प्राणायाम का अर्थ और इति दोनो है। प्रारम्भ भी निसीहि है और समापन भी निसीहि। यानी पानी से भाप भाप से बादल, फिर बादल से पानी इसी को कहते हैं वाटर सायकिल'।

भगवान् महावीर का निसीहि और योगशास्त्र का विरेचन बिल्कुल एक ही है। 'मन एक, दुइ गात'। दोनो का अर्थ एक समान है, अन्तर शब्दो का है। शब्द दो है किन्तु शब्दार्थ एक। यो समझिये कि ये दोनो पर्यायवाची शब्द है। इसीलिए महावीर का निसीहि योगकुण्डलिनी उपनिषद तथा पतजल योगदर्शन के काफी साम्य है। महावीर के निसीहि दृष्टिकोण का प्रभाव परवर्ती सभी योगशास्त्रियो पर रहा है। महावीर के सत्य को सभी ने सत्य रूप स्वीकार किया। ध्यान, साधना और योग मे यात्रा करने का प्रस्थान बिन्दु बना निसीहि।

निसीहि और विरेचन दोनो को यदि तुलनात्मक अर्थ की दृष्टि से देखा जाये तो निसीहि विशेष अर्थ गाम्भीर्य रखता है। विरेचन म तो मात्र अशुभ का निष्कासन होता है, जबकि निसीहि म न केवल अशुभ का विरेचन होता है अपितु शुभ का प्ररूपण भी होता है। अशुभ के तुम्बे की लताओ

को जड़ से उखाड़ कर फेका जाता है और शुभ का मधुर बीजारोपण होता है।

एक बाल्टी मे वर्षा का पानी भरा है। उसमे मिट्टी आदि भी है। उसमे फिटकडी डालकर पानी को गोलाकार घुमाओ। गन्दगी नीचे बैठ जायेगी और पानी साफ दिखायी देने लगेगा। यह हुआ विरेचन। किन्तु इससे पानी पूर्णरूपेण स्वच्छ नही हुआ। निसीहि की क्रिया अभी समाप्त नही हुई। वास्तव मे निसीहि की क्रिया अब शुरू होगी। और वह यह कि पानी को अलग बर्तन मे निकाल लो और नीचे जमे कचरे को बाल्टी से बाहर फेक दो। पुन वह पानी बाल्टी मे डाल दो अब पानी अच्छी तरह से निर्मल हो गया।

तो योगशास्त्र मे जो विरेचन की प्रक्रिया बतलाई गई योग प्रारम्भ करने से पहले, वैसे ही महावीर बताते है निसीहि की प्रक्रिया विरेचन की प्रक्रिया, कि तुम अपनी आत्मा म परमात्मा को प्रगट करना चाहते हो निज मे जिनत्व की शोध करना चाहते हो तो सबसे पहले निसीहि को घटित करो। ससार से जितने भी सम्बन्ध हैं जितने भी बाह्य विकल्प है सबके सब बाहर छोड आओ। निसीहि कहो और मन्दिर मे प्रवेश करो।

परमात्मा के मन्दिर मे जाते है तो केवल परमात्मा के प्रति भक्ति भावना को ही लेकर जाय। रसमयता मात्र परमात्मा के प्रति हो। कामभोग का रसिक यदि मन्दिर मे जाएगा तो उसके मन मे ईश मन्दिर मे भी कामभोग की बाते मडराएँगी। इसलिए मन्दिर मे केवल परमात्म रस हो क्योकि 'रसो वै स' वह रस रूप है। इसके अलावा जिस चीज को भी ले जाएँगे वह सब कूड़ा-कचरा ही होगा, मात्र पागलपन इकट्ठा करना है। मन्दिर मे जाना और जाते समय दूसरे-दूसरे तरह के द्वन्द्वो और विकल्पो को साथ मे ले जाना अपने को पागलखाने मे ले जाना है। वह व्यक्ति एक पागल की तरह मात्र अपने ही विचारो मे खोया है परमात्मा के प्रति नही।

मैने सुना है कि एक आदमी समुद्री मार्ग से पानी के जहाज मे विदेशयात्रा के लिए चढ़ा। जहाज चल पड़ा। जहाज के चलते ही वह आदमी कप्तान के पास पहुँचा और कहा कि क्यो साहब पेट्रोल डीजल सब बराबर ले लिया है? कप्तान ने कहा हाँ भाई सब ठीक है। डीजल पूरा ले लिया है। तुम जाओ और अपनी कुर्सी पर बैठो। थोड़ी देर बाद वह आदमी फिर कप्तान के पास गया और कहा कि साहब मशीन वगैरह तो सब ठीक है? कप्तान आखिर झूझला उठा। उसने कहा कि सब ठीक-ठाक है। द सब

[illegible]

[illegible] है तो ... की तरह मना ... है। ... और ... मन्दिर। ... कोई ... मन्दिर में जाते हैं तो वहाँ ... और ... उतारकर धक्का लगाने की बात मान पागलपन है। इसीलिए मन्दिर में भी वह पागलपन में, देगा ... उतारकर जहाज को धक्का लगाने देगा।

सच्चा निसीहि न होने के कारण मन का विरेचन न हो पाने के कारण आदमी मन्दिर में जाकर परमात्मा का ध्यान करता है परन्तु जैसे ही परमात्मा का ध्यान करने बैठा वैसे ही परमात्मा की प्रतिमा और छवि तो मनोदृष्टि से हट जायगी और उसके मन में वही घिसे पिटे पुराने सड़ियल विचार आने शुरू हो जाएंगे। एक के बाद एक लगातार। एक भेड़ के पीछे दूसरी भेड़ भेड़चाल की तरह। इतने विचार पहले कभी नहीं कौंधे, जितने इस समय कौंधते हैं। कभी बीवी बच्चे याद आयेंगे तो कभी कोई रूप सम्पन्न पुरुष स्त्री याद आयेंगे तो कभी बाजार व्यवसाय। कारण निसीहि तथा विरेचन वस्तुतः नहीं हो पाया। भला जो व्यक्ति बिना टॉर्च लिये अन्धेरे कमरे में जाएगा तो वह ठोकर खाएगा ही। टॉर्च जलाओ, अन्धेरा स्वतः साफ। निसीहि बस ऐसे ही है।

मैंने सुन रखा है कि एक आदमी की टी वी खराब हो गयी। उसे ठीक कराने के लिये वह रिपेयरर के पास ले गया। कहा कि मेरा टेलीविजन खराब हो गया है। यह चलता ही नहीं। इसे ठीक कराना है। कितना रूपया लोगे? रिपेयरर ने कहा बाबू! रुपये पैसे का सवाल तो बाद में, पहले यह मालूम पड़े कि खराबी क्या है। रिपेयरर ने जैसे ही टेलीविजन खोला तो देखा कि उस टेलीविजन के डिब्बे में पाँच सात चूहियाँ मरी हुई हैं। चूहियों की गन्दगी भी भीतर पड़ी है। रिपेयरर को लगा कि इस टेलीविजन में केवल सफाई की जरूरत है और कुछ खराबी नहीं। उसने सफाई कर दी। टेलीविजन शुरू किया और टेलीविजन चल पड़ा।

यह हुआ विरेचन और निसीहि का आन्तरिक पक्ष। लोग मन्दिर जाते है क्योंकि उनके जीवन का टलीविजन अच्छी तरह नही चलता। वह खराब है ओर विचारो के पुर्जे जाम हैं तथा अस्त व्यस्त हैं। तो मैं कहूगा कि सफाई करो विरेचन निसीहि। परमात्मा की अनन्त ज्योति के चलचित्र जीवन के पर्दे पर उभरते हुए परिलक्षित होगे।

आजकल मै देखता हू कि आदमी निसीहि निसीहि कहता तो है लकिन वह केवल कहना मात्र है। तोते की रटन की तरह। मालिक ने सिखा रखा है कि 'तोता' विल्ली आए तब उड जाना। विल्ली उपस्थित होने पर भी तोता केवल यही वोलता है पु पुन पुनरावृत्ति। वहुत से लोग भी तो एसा ही करत है। धार्मिक व्यक्ति है सुना हुआ है कि जिनेश्वर के मन्दिर म प्रवेश करते समय निसीहि निसीहि तीन वार कहना चाहिये। वस कह डाला। यही तो भूल है। वस्तुत निसीहि निसीहि तीन बार कहना नही चाहिए अपितु निसीहि निसीहि तीन वार करना चाहिये। कहने पर नही वल्कि करने पर जोर हो। कथनी नही करनी प्रवल हो। टन भर कथनी और कण भर की करनी–दोनो म कणभर की करनी ज्यादा उत्कृष्ट है। लोग निसीहि के मर्म को और उसके रहस्य को समझते नही है। वस केवल कहते है निसीहि निसीहि। अरे भाई! यह क्यो भूल रहे हो कि मुँह मीठा तो लड्डू खाने से होगा न कि लड्डू लड्डू कहने से।

मन्दिर मे प्रवेश करने का पहला द्वार ही निसीहि है। ध्यान वाद म घटेगा साधना वाद म घटित होगी। आत्मानुभूति या परमात्मानुभूति की वात तो वाद की है सबस पहले घटना घटेगी निसीहि की। टाँग टूटेगी तो अस्पताल जायेगे। वीज होगा तो वृक्ष वनेगा। निसीहि ही नहीं तो आत्मा परमात्मा की वात ढपोर शख की तरह होगी।

ढपोर शख उसे कहत है यानी कि उसको कहो कि शख महाराज एक लाख रूपये दे दो। तो ढपोर शख कहेगा अजी। दो लाख ले लो। आदमी कहेगा कि अच्छा ठीक है दो लाख दे दो तो शख कहेगा दो लाख का क्या देना चार लाख ले लो। माँगने वाला कहेगा य तो और अच्छी बात है। चार लाख दे दो। ढपोर शख कहेगा आठ लाख ले लो। वस ढपोर शख दुगुना-दुगुना कहना मात्र देने लेने का वहाँ काम नहीं। जो केवल वोलता है कहता मात्र है वह ढपोर शख तो उल्टा भारभूत है। उठाकर नाली म फको ऐसे वक्ता ढपोरशख को। जोर कहने पर नह निसीहि कहो मत करो।

यानी कि मस्तिष्क म जितना भी भार है, निसीहि उस भार से छुटकारा दिलाने म सहायक है। निसीहि तनाव से मुक्ति का उपाय है। निसीहि अन्तर्यात्रा एव मन को केन्द्रित करने का सोपान है। निसीहि, व्यक्ति जो इधर उधर भटक रहा है उस भटकाव को रोकने का साधन है। निसीहि यानी कि आत्म विरेचन है। निसीहि यानी कि मस्तिष्क शुद्धि है। निसीहि यानी निर्विकल्प समाधि है। निसीहि यानी ससार म जिन जिन से भी सम्बन्ध है उन उन से मुक्ति बोध पाने का माध्यम है। निसीहि यानी स्वय की स्वय मे वापसी। प्रतिक्रमण पर्युषण और प्रत्यार्वतन ये सब निसीहि को हा उपलब्ध होने के माध्यम है। सचमुच, भगवान तक और आत्मा तक पहुचने का रास्ता निसीहि ही है। निसीहि होने के पश्चात् शेष रहता है मात्र अतीन्द्रिय सुख। यानी आत्म जात निराकुल औरर द्वन्द्वातीत सम्यक आनन्दानुभूति। सब कुछ आ गया इस निसीहि म।

निसीहि गुप्तिधर्म से भी श्रेष्ठ है। उत्तराध्ययन सूत्र आदि म अष्टप्रवचनमाता का विधान है। पाच समिति और तीन गुप्ति – ये हुई अष्ट प्रवचन माता। समिति है यतनाचारपूर्वक प्रवृत्ति और गुप्ति है समितियो म सहयोगी मानसिक वाचिक और शारीरिक प्रवृत्तियो का गोपन। जबकि निसीहि मे पहले गुप्ति काम करेगी। मतलब यह है कि पहले सभी प्रवृत्तियो का गोपन करो और तत्पश्चात् प्रवृत्तियो का विरेचन करो। निसीहि रूपी राजहस के द्वारा अशुभ और शुभ प्रवृत्तियो को अलग अलग करो। पानी अलग दूध अलग–– प्राचीन भारतीय नय पद्धति की तरह। शुभ प्रवृत्तियो का दीपक जीवन से जोड ताकि अशुभ प्रवृत्तियो का अन्धकार समाप्त हो। तत्पश्चात् समिति-आश्रित बने यानी यतनाचारपूर्वक उपयोग और विवकपूर्वक प्रवृत्ति करे।

तो सर्वस्व समाहित है निसीहि म। साधना के वृक्ष की जड़ो को सुरक्षित करने वाला है यह। ताकि बहिरात्मा के दीमक उसे भीतर ही भीतर खोखला और श्रीशून्य न कर दे। आदमी यदि इसे समझ जाय तो उसे बहुत मिल गया। मूल सूत्र उसने हस्तगत कर लिया। किन्तु लोग मन्दिर म जाते है कूड़े कचरे के साथ। साधना वृक्ष को सिंचा करते है दीमको के साथ।

आप सुनते होगे कभी कभी कि अमुक साधु वापस गृहस्थ हो गया। आखिर क्या कारण? मूलत जब उसने सन्यास धारण किया था उस समय या तो भावावेश था या फिर अन्य कोई कारण। और जिस आदमी ने

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

अहंकार के ये गोरखधन्धे मस्तक में [illegible] की कीमत पर भारी हो होंगे। [illegible] अर्थात् [illegible] होना [illegible]।

मन्दिर में कभी कभी तो यह भी देखा गया जाता है कि कुछेक लोग अपशब्द और गालियाँ तक भी प्रयोग कर लेते हैं। कभी कभी तो नौबत यहाँ तक आ जाती है कि लोग लड़ाइयाँ भी कर उठते हैं मन्दिर में। जबकि मन्दिर में तो किसी तरह की ध्वनि न हो ऐसा प्रयास रखना चाहिये ताकि अन्य लोगों को अड़चन न हो। अगर बाजार में लड़ें तो बाजार में लोग उसकी हड्डी पसली एक कर दें। इसलिए लड़ते हैं मन्दिर में ताकि कोई कुछ ज्यादा बोल न सके। मन्दिर में भले आदमी आने वालों की भी कमी नहीं है। अतः सामने वाला आदमी तो हाथ उठा ही नहीं पायेगा। तो लोग मन्दिर में लड़ाइयाँ शुरू करते हैं गाली गलौच शुरू कर देते हैं मन्दिर में ही गुस्से के अंगार उगलते हैं। यानि समाज को वे यह साफ जाहिर कर देते हैं कि हमारे संस्कार कैसे हैं? इस तरह पूजा स्थल और साधना स्थल या समझो कि एक छोटा युद्धस्थल बन जाता है।

दो दिन पूर्व में महर्षि ब्रह्मानन्द सरस्वती के जीवन के बारे में पढ़ रहा था। ब्रह्मानन्द सरस्वती की एक घटना बड़ी अच्छी लगी। ब्रह्मानन्द जब युवक थे तो गये हिमालय में। हिमालय में जाकर देखा कि बहुत से लोग साधना कर रहे हैं। शान्त मूर्तियाँ लग रही हैं वे। ब्रह्मानन्द किसी ब्रह्म दर्शी की खोज में थे। आखिर उन्हें एक सन्त योगी के बारे में जानकारी मिली जो सर्वत्र वीतरागी सन्त माने जाते थे। ब्रह्मानन्द पहुँच गये उनके पास और

रहा महाराज! आपके योग ध्यान एवं वीतरागता की चर्चा मैंने सुनी है। आप शान्त मूर्ति हैं। भगवन्! मैं बहुत दूर से आया हूं आपके पास। ठंड भी लग रही है। क्या थोड़ी सी आग मिलेगी आपके पास? तो महाराज ने कहा कि तुम नहीं जानते कि हम वे साधु है जो आग रखना तो दूर छूते भी नहीं?

ब्रह्मानन्द बोले कि ओह! समझा परन्तु थोड़ी सी तो होगी? थोड़ी सी से काम चल जायगा। मैं ठंड से काँप रहा हूं।

जैसे कलकत्ता के भिखारी लोग होते है न माँगते हैं एक रूपया तो सेठ कहते हैं कि जा भाई आगे जा कुछ नहीं है। तब भिखारी कहता है कि बाबू अठन्नी दे दो। वह कहता है कि कुछ नहीं है चला जा। तो भिखारी कहता है अरे बाबू! चवन्नी दे दो। अब कहा न इतनी बार कह दिया कम सुनता है। तो भिखारी फिर कह देता है कि अच्छा बाबू रहने दो चवन्नी, अठन्नी, रुपया। प्यास बहुत तेज लगी है पाँच पैसा ही दे दो। एक गिलास पानी खरीदकर पी लूँगा।

वैसे ही ब्रह्मानन्द ने कहा कि थोड़ी-सी आग दे दें। देखिये इत्ती सी।

तो उस साधु ने कहा कि अरे! मैंने कहा न कि हम साधु हैं और आग को साधु छू नहीं सकता। तब आग हम कहाँ से रखेंगे।

ब्रह्मानन्द अब भी शान्त थे। उन्होंने कहा कि जरा देखिये! आपके आस पास कहीं मिल जाये किसी कोने में हो। थोड़ी सी होगी तो भी काम चल जायगा। मात्र रत्ती भर! अच्छा केवल चिनगारी।

उस साधु के साथ ऐसा व्यवहार करनेवाला यह पहला आदमी था। बेवकूफी की भी हद हो गई। वह भी अव्वल दर्जे की। तो उस साधु ने कहा कि तू मुझे क्या समझता है? इतनी बार कह दिया कि मेरे पास आग नहीं है, लेकिन देख रहा हूं कि तू बार बार मुझसे आग ही आग माँग रहा है। अभी श्राप दे दिया तो तू खुद आग बन जायगा।

साधु आग बबूला हो गया। तो ब्रह्मानन्द सरस्वती ने कहा यदि आप किसी का भला नहीं कर सकते तो बुरा करने का अधिकार कहाँ से प्राप्त हुआ। यदि आपके पास आदमी को ... [illegible] शक्ति है तो आप
... एक टुकड़े को आग न बदल दें ... [illegible] इन्सान को ...
... आपकी सफलता है। बुरा करना ... [illegible] दुनिया है
... दूसरे का भला करता है वही ... [illegible]
... यदि ऐसा नहीं है तो फिर ... [illegible] आ

कमीज पर पहनी [illegible] तो [illegible] पर समान रत्न का मान [illegible] है। ये मान [illegible] मस्तिष्क में रहते हैं। अहंकार के रूप में [illegible] प्रकट होती है। मान [illegible] कि अह [illegible] अह के पोषक तत्व।

आदमी मन्दिर में जाता है अहंकार के इन मान [illegible] को लेकर। जबकि अह और गर्व के भाव मन्दिर में साथ ले जायेंगे तो फिर मन्दिर भी एक सांसारिक घर हो जायेगा। [illegible] नहीं रहेगा अपितु अह पोषक केन्द्र बन जायेगा।

मैं का अहंकार
कर्ता होने की दुविधा
परित्याग कर
ज्ञाता द्रष्टा बन।

अहंकार के ये गोल्ड [illegible] वास्तव में [illegible] की कमीज पर भार ही होंगे। निर्भार अर्थात् निर्भार होने का पथ।

मन्दिर में कभी कभी तो यह भी देखा सुना जाता है कि कुछेक लोग अपशब्द और गालियों तक भी प्रयोग कर लेते हैं। कभी कभी तो नौबत यहां तक आ जाती है कि लोग लड़ाईयाँ भी कर बैठते हैं मन्दिर में। जबकि मन्दिर में तो किसी तरह की ध्वनि न हो ऐसा प्रयास रखना चाहिये ताकि अन्य लोगों को अड़चन न हो। जब बाजार में लड़ते तो बाजार में लोग उसकी हड्डी पसली एक कर दें। इसलिए लड़ते हैं मन्दिर में ताकि कोई कुछ ज्यादा बोल न सके। मन्दिर में भले आदमी आते वालों की भी कमी नहीं है। अतः सामने वाला आदमी तो हाथ उठा ही नहीं पायेगा। तो लोग मन्दिर में लड़ाइयाँ शुरू करते हैं गाली गलौच शुरू कर देते हैं मन्दिर में ही गुस्से के अंगार उगलते हैं। यानि समाज को वे यह साफ जाहिर कर देते हैं कि हमारे संस्कार कैसे हैं? इस तरह पूजा स्थल और साधना स्थल या समझो कि एक छोटा युद्धस्थल बन जाता है।

दो दिन पूर्व मैं महर्षि ब्रह्मानन्द सरस्वती के जीवन के बारे में पढ़ रहा था। ब्रह्मानन्द सरस्वती की एक घटना बड़ी अच्छी लगी। ब्रह्मानन्द जब युवक थे तो गये हिमालय में। हिमालय में जाकर देखा कि बहुत से लोग साधना कर रहे हैं। शान्त मूर्तियाँ लग रही हैं वे। ब्रह्मानन्द किसी ब्रह्म दर्शी की खोज में थे। आखिर उन्हें एक सन्त योगी के बारे में जानकारी मिली, जो सर्वज्ञ वीतरागी सन्त माने जाते थे। ब्रह्मानन्द पहुंच गये उनके पास और

कहा महाराज। आपके योग ध्यान एव वीतरागता की चर्चा मने सुनी है। आप शान्त मूर्ति है। भगवन्। मै बहुत दूर से आया हू आपके पास। ठड भी लग रही है। क्या थोड़ी सी आग मिलेगी आपके पास? तो महाराज ने कहा कि तुम नही जानते कि हम वे साधु है जो आग रखना तो दूर छूते भी नही?

ब्रह्मानन्द बोले कि ओह! समझा परन्तु थोडी सी तो होगी? थोडी सी से काम चल जायेगा। म ठड से कॉप रहा हू।

जैसे कलकत्ता के भिखारी लोग होते है न मॉगते है एक रूपया तो सेठ कहते है कि जा भाई आग जा कुछ नहीं है। तब भिखारी कहता है कि बाबू अठन्नी द दो। वह कहता है कि कुछ नहीं है चला जा। तो भिखारी कहता है अरे बाबू! चवन्नी दे दो। अबे कहा न इतनी बार कह दिया कम सुनता है। तो भिखारी फिर कह देता है कि अच्छा बाबू रहने दो चवन्नी अठन्नी रुपया। प्यास बहुत तेज लगी है पॉच पैसा ही दे दो। एक गिलास पानी खरीदकर पी लूँगा।

वैसे ही ब्रह्मानन्द ने कहा कि थोड़ी सी आग दे द। देखिये इत्ती सी। तो उस साधु न कहा कि अरे। मैने कहा न कि हम साधु है और आग को साधु छू नही सकता। तब आग हम कहाँ स रखगे।

ब्रह्मानन्द अब भी शान्त थे। उन्होने कहा कि जरा देखिये। आपके आस पास कहीं मिल जाये किसी कोने म हो। थोड़ी सी होगी तो भी काम चल जायेगा। मात्र रत्ती भर। अच्छा केवल चिनगारी।

उस साधु के साथ ऐसा व्यवहार करनेवाला यह पहला आदमी था। बेवकूफी की भी हद हो गई। वह भी अव्वल दर्जे की। तो उस साधु ने कहा कि तू मुझे क्या समझता है? इतनी बार कह दिया कि मेरे पास आग नहीं है लकिन दख रहा हू कि तू बार बार मुझसे आग ही आग माँग रहा है। अभी श्राप दे दिया तो तू खुद आग बन जायेगा।

साधु आग बबुला हो गया। तो ब्रह्मानन्द सरस्वती ने कहा यदि आप किसी का भला नहीं कर सकते तो बुरा करने का अधिकार कहाँ से प्राप्त हुआ। यदि आपके पास आदमी को आग करने जैसी शक्ति है तो आप बर्फ के एक टुकड़े को आग मे बदल द और एक ठिठुरते इन्सान को बचाएँ। इसमे आपकी साधुता है। बुरा करने के लिए तो सारी दुनिया है किन्तु जो हमेशा दूसरा का भला करता है वही सन्त है। और आप तो कहते हैं कि मेरे पास आग नही है तो फिर ये आग की लपट कहाँ से आ रही है।

[illegible] कि [illegible] [illegible] आते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] हिमालय में भी जाते हैं [illegible] निसीहि [illegible] उनके भीतर [illegible] चलती रहती है अन्दर के कोलाहल [illegible] कामनाओं का [illegible] रहता है। निसीहि के बिना जो लोग हिमालय में जाते हैं [illegible] गुफा [illegible] जाते हैं वे लोग केवल पागलपन को [illegible] कर रहे हैं। [illegible] आदमी के विचारों पर एक ही विचार से प्रभावित और विचार द्वन्द्व होते हैं [illegible] सतह पर जमते जाते हैं प्रकट नहीं करते [illegible] विचार ज्वालामुखी की तरह मानसिक भूमि में भड़कते हैं। [illegible] उन्हें [illegible] नहीं कर पाता। वह गुमसुम हो बैठता है। लोग उसे पागल कहने लगते हैं। जैसे पागल आदमी के लिए अपनी पगलाई जताने के लिए एकान्त और भीड़ दोनों समान है वैसे ही लोगों के लिए संसार और मन्दिर एक समान हो जाता है। वे मन्दिर में भी भगवान से धन पुत्र ऐश्वर्य की मांग करते। वे यह भूल जाते हैं कि भगवान् न तो किसी का कुछ छीनते हैं और न किसी को कुछ देते हैं। और यदि छीना झपटी और देने लेने का सम्बन्ध मन्दिर से जोड़ रहे हैं तो वह अध्यात्म स्थल नहीं अपितु एक सांसारिक व्यवसाय स्थल होगा। संसार तो कीचड़ है और मन्दिर उससे ऊपर– एक निर्मल कमल।

इसीलिए ज्ञानी मनीषी कहता है कि सबसे पहले विराम करो, निसीहि हो। मन्दिर में प्रविष्ट हो गये हो तो बाहर के सारे द्वन्द्वों से मुक्ति पा लो। निसीहि का मतलब ही है तनाव से मुक्ति। आज के युग का सबसे भयकर और असाध्य रोग है मानसिक तनाव। चिकित्सकों के द्वारा इस रोग की चिकित्सा कष्टकर है। महावीर दुनिया के महान् चिकित्सक हुए। उन्होंने इस रोग को दूर करने की यौगिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा ढूंढ निकाली और वह है निसीहि। मानसिक तनाव से मुक्ति पाने की यह अचूक दवा है।

मस्तिष्क को चैतसिक जीवन को सस्कारित करने का तरीका है यह। जैसे साबुन के द्वारा वर्तन का सस्कार होता है व्याकरण के द्वारा भाषा का सस्कार होता है वैसे ही निसीहि के द्वारा मस्तिष्क और मन का सस्कार

होता है। आप लोग अन्त्यष्टि-सस्कार करते है। यानि कि मुर्दे को जलाते है शव को। बस निसीहि मे यही करना है कि मस्तिष्क मे जो कूडा है जो शव सड रहे है उनका अन्त्यष्टि सस्कार करना है। यही धर्म है क्योकि मन्दिर के गृह मे मुर्दो का कोई काम नही है। ये तो उल्टे दुर्गन्ध फैलाएँगे। मन्दिर म तो चाहिये जीवन तथा जीवन्तता।

तो मन्दिर मे जाओ चाहे उपाश्रय स्थानक म जाओ या गुरु चरणो म जाओ कही भी जाओ निसीहि सबसे पहले जरूरी है।

आदमी के अन्दर जो घास का ढ़ेर है और उस ढेर म जो सूई खो गई है वस उस सूइ को बचा लो। घास के ढेर म सूई की खोज–यही साधना है। तो भस्म कर दो घास क ढ़ेर को। मन्दिर म प्रवेश करते समय लक्ष्य केवल मूई की खोज का रहे। इसके अलावा जितने भी द्वन्द्वो सासारिक सयोगा के घास के पुलिन्दे है सबसे मुक्ति पाकर मन्दिर मे प्रवेश करो।

जनागम स्थानागसूत्र मे साधु के लिए श्रमण भिक्षु मुड मुनि यति आदि १० नाम प्रयुक्त हुए हैं किन्तु उनमे मुनि शब्द का प्रचलन अधिक हुआ। बडा सोच समझकर इस शब्द का प्रयोग हुआ। जैनियो के सबसे महत्त्वपूर्ण शब्दा म एक है यह। बडी अर्थवत्ता है इस शब्द की। मुनि यानि कि जिसका मन मौन हो गया है। भीतर म अब किसी तरह का द्वन्द्व नही है। कोलाहल रहित और द्वन्द्व से अतीत विचारो की उपज–यही मुनित्व की अभिव्यक्ति है। जो परमात्मा के मन्दिर म जाता है वह बिल्कुल मुनि के रूप का ही होना चाहिये।

मन्दिर मे प्रविष्ट हुए धर्म साधना मे उपस्थित होने के लिए। परमात्मा के चरणो मे समर्पित हो गये और कहा कि भगवान! हम आपके चरणा म समर्पित हो गये और आपने जो मार्ग बताया है उसे हम अगीकार करते है। आर यह कहते-कहते ही वह आवस्सहि कहता है और पुन ससार मे लौट आता है।

भगवान् महावीर ने एसे व्यक्तिया के लिए शब्द प्रयोग किया भक्त। यानि कि जो भगवत्ता को पाने के लिए प्रयासशील हैं वह भक्त। लकिन भगवत्ता उस ही मिलेगी जिसके जीवन का पात्र मजा मजाया साफ सुथरा है। विरेचित जीवन के पात्र मे ही परमात्मा का अमृत भर सकता है। अमीझर' बन जायेगा वह। इसके अलावा ओर कोई आदमी भर नही सकता। भगवत्ता कोई भीख थोडी ही है कि मागो और मिल गई। भगवत्ता

में रमण करने से भगवत्ता मिलती है। मिलती है वहाँ भी ठीक ढंग प्रकट होती है।

तो मनुष्य अथवा जो कोई व्यक्ति मन्दिर में जाता है परमात्मा के चरणों में जाता है उसको पहले निसीहि की प्रक्रिया पूरी करें। योगशास्त्र के विरेचन को सबसे पहले कर ले। तभी वह आगे बढ़ पायेगा। उसका विकास— एकलूरता तत्पश्चात् ही सम्भव है। वरना मन में जो कूड़ा कचरा होगा मन्दिर में भी जायेगा तो मन्दिर में भी ध्यान में वही कूड़ा कचरा आयेगा।

मैंने सुना है कि एक आदमी अपनी पतंग उड़ा रहा था। इतने में ही आकाश में एक आदमी पहुँचा हेलिकॉप्टर लेकर। उस आदमी के हाथ में एक कँटीदार झाड़ था। उसने उस झाड़ को दे मारा पतंग की डोर पर। उसकी पतंग बिचारी बीच में ही कट गई। और वह पतंग को झाड़ में लेकर अपने हेलिकॉप्टर को आगे रफ्तार से बढ़ा ले गया।

इसी तरह जो व्यक्ति मन्दिर में जाता है वह आदमी पतंग तो उडाता है मन्दिर में किन्तु उसके भीतर जो दूसरे दूसरे प्रकार के द्वन्द्वमूलक जो जो भी भाव हैं वे हेलिकॉप्टर बनकर और अपने झाड़ झपाड़ा के द्वारा या डेरिया डालकर और जो परमात्मा के मन्दिर में पतंग उड़ रही है, वह तोड़ देते हैं।

तो मन्दिर में आदमी जाय लेकिन बिल्कुल निसीहि कहकर। केवल कहना ही नहीं है अपितु निसीहिमय होना है। निसीहि हुआ नहीं और निसीहि कह दिया यह तो सब बकवास है। गुणविहीना बहु जल्पयन्ति निसीहि आन्तरिक भावों से हो फिर तो यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'। इसलिए अन्तरतम में जितनी भी वृत्ति में आसक्ति और विचारों में आग्रह तथा संघर्ष है सब शान्त हों। मन में जितने भी द्वन्द्व हैं सबका विरेचन हो। जीवन के पात्र को इतना निर्मल करते जाय कि भगवान् यदि उसमें दूध डाले तो वह दूध गंदगी के कारण फटे नहीं। पात्र ऐसा हो, इतना पवित्र हो कि यदि उसमें अमृत भी उड़ेला जाय तो आदमी उसे पाकर अमर हो जाय।

अंश भर विष हो पर वह भी पात्र भर अमृत को भी विष कर देता है। शब्द कोश में तो विष और अमृत दोनों का उत्पत्ति स्थान अलग-अलग बताया गया है। किन्तु जीवन कोश में दोनों का उत्पत्ति स्थान एक ही है। जीवन में जहाँ विष पैदा होता है वहीं अमृत पैदा होता है। वास्तव में

अपनी पूर्णता को उपलब्ध नही कर पायगी। इस पूर्णता के लिए ही नानात्मक अनुभूत्यात्मक और सक्ल्यात्मक प्रयास करना होता ह। इन तीनो का पूर्ण रूप ही आत्म पूर्णता ह। और आत्म पूर्णता ही मोक्ष है। अपूर्णता प्यास है जिसे पूर्णता के पानी मे शान्त करना है उस प्यास को बुझाना है। *काण्ट ने नैतिक पूर्णता के लिए आत्म पूर्णता यानी अनन्त तक* प्रगति अनिवाय मानी है।

हमे अनुभव होता है अपनी अपूर्णता का। जब अनुभव होता है तो पूर्णता का भी अनुभव होना चाहिय। ध्यानपूर्वक विचार कर तो पायग कि उस अपूर्णता की आत्मा भी पूर्ण ही ह। पूर्णता सत्यत आत्मा की क्षमता है, कैपिसिटी है। यह क्षमता ही माक्ष की योग्यता है एविलिटी ह। व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्णता सत् क सत्ता की पूर्णता ही आत्मपूर्णता है मोक्ष है।

हॉ! इस सम्बन्ध मे एक बात और जानने लायक ह। और वह यह कि आत्मपूर्णता म युक्तता किसी स नही होती। इसमे तो खोना है रिक्त एव शून्य करना है जीवन के पात्र को आत्मा को। जा घर फूँके आपना चले हमारे साथ। कबीर ने कहा है कि छोड दो सबको। रिक्त हो जाआ तुम तो। यह पूर्ण रिक्तता ही पूर्णता बनकर उभरती है। हकीकत म लाग 'पर' से जुड़कर 'स्व' को खो देते है यह भौतिकी है। अध्यात्म क अनुष्ठान मे तो पर को खोकर स्व को पाना है। स्वार्थ सिद्ध करना है। मतलब स्वस्थ होना है। जस जैसे हम पर से मुक्ति पाएँगे पर यानी चाह वासना अहकार विकल्प राग द्वेष। इनसे जैसे जैसे हम छुटकारा पाएँग स्व क हम उतन ही समीप स समीपतम आते जाएँग। भार जैसे-जस कम हागा जैसे-जैसे निर्भार हागे हम ऊपर उभरत जाएँग डूबने से बचग।

आ जाए
पर स स्व'
मिल जाए
स्व' म स्व'
सदा सदा के लिए
प्रकट होगी
आत्म शक्ति की
फिर निर्धूम अनन्य ज्योति।

यह स्वारोहण है और इसी स माक्ष सधेगा। सच पूछिये तो नैतिक

मोक्ष आज भी सम्भव

प्रश्न है जैन धर्म के अनुसार इस आरे म मोक्ष नही हो सकता जव कि आप मोक्ष प्राप्ति के लिए वार वार जोर देत है। जव माक्ष अभी नहीं मिल सकता तो उसके लिए क्या ता आप प्ररणा देते है ओर क्या ही हम प्रयास करे? जिस आर म मोक्ष मिलगा उस समय ही इसक लिए प्रेरणा प्रयास करना क्या उचित नही हागा?

प्रश्न वहुत सुन्दर है साथ ही साथ महत्त्वपूर्ण भी है। इसे गहराई स समझना होगा वरना चूक जायगे। गहराई म जानेवाल को सच्चे मार्ती मिलेगे। जो ऊपर ऊपर वाहर वाहर रहेगा उसे समुद्र का खारा जल मिलेगा। अत गहराई म पैठे ओर समझ।

सर्वप्रथम मोक्ष का ध्यानपूवक समझ। माक्ष शब्द सुनन मात्र से आत्मा म तरगे उठीं। वडा अनूठा शब्द है यह। सदिया सदिया तक किये गय चिन्तन ओर साधना का परिणाम है यह मोक्ष। मोक्ष एक प्रत्यय है। मोक्ष की अवधारणा केवल भारत म मिलेगी। स्वर्ग, नरक की मान्यता सभी दशा म मिलगी। परन्तु मोक्ष भारतीय मनीपियो की देन हे। स्वर्ग म सुख है पर वह खाओ पियो मोज उड़ाओ की भूमिका हे। एक तरह से भौतिक स्तर है वह। नरक म दुख है। माक्ष स्वर्ग और नरक–दोना के पार है। सवसे उत्कृष्ट स्थिति है यह जीव की। वहाँ न सुख है न दुख। वह ता चैतन्य की विशुद्ध दशा का नाम है। वहा न जन्म है न मृत्यु। वहाँ ता मृत्यु रहित जीवन है जागृति है चेतना है। कर्त्ता समाप्त हो जाता है, ज्ञाता रह जाता है। भाक्ता खो जाता है द्रष्टा प्रत्यक्ष हो जाता है। शाश्वत शान्ति और चिर सौख्य का आस्वादन ही वहाँ शेप रहता हे।

वस्तुत आत्म पूर्णता ही मोक्ष है। क्याकि जव तक अपूर्णता है, तव तक मोक्ष सम्भव नही है। आत्म ऊर्जा जव तक भिन्न भिन्न घटका म, विकल्पा तृष्णाओ कामनाओ और वासनाओ म वटी रहेगी तव तक वह

अपनी पूर्णता को उपलब्ध नही कर पायगा। इस पूर्णता के लिए ही नानात्मक, अनुभूत्यात्मक और सकल्पात्मक प्रयास करना होता है। इन तीनो का पूर्ण रूप ही आत्म पूर्णता है। और आत्म पूर्णता ही मोक्ष है। अपूर्णता प्यास है जिसे पूर्णता के पानी मे शान्त करना है उस प्यास को बुझाना है। काण्ट ने नतिक पूर्णता के लिए आत्म पूर्णता यानी अनन्त तक प्रगति अनिवाय मानी है।

हमे अनुभव होता है अपनी अपूर्णता का। जब अनुभव होता है तो पूर्णता का भी अनुभव होना चाहिये। ध्यानपूर्वक विचार कर तो पायग कि उस अपूर्णता की आत्मा भी पूर्ण ही है। पूणता सत्यत आत्मा की क्षमता है कैपिसिटी है। यह क्षमता ही मोक्ष की योग्यता है एबिलिटी है। व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्णता सत् के सत्ता की पूर्णता ही आत्मपूर्णता है मोक्ष है।

हाँ। इस सम्बन्ध म एक बात और जानने लायक है। और वह यह कि आत्मपूर्णता म युक्तता किसी स नहीं होती। इसम तो खोना है रिक्त एव शून्य करना है जीवन के पात्र को आत्मा को। जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ। कबीर ने कहा है कि छोड दो सबको। रिक्त हो जाओ तुम तो। यह पूर्ण रिक्तता ही पूर्णता बनकर उभरती है। हकीकत म लोग 'पर' से जुड़कर 'स्व' को खो देते है यह भौतिकी है। अध्यात्म के अनुष्ठान म तो पर को खोकर स्व को पाना है। स्वार्थ सिद्ध करना है। मतलब स्वस्थ होना है। जैसे-जैसे हम पर स मुक्ति पाएँगे पर यानी चाह कामना अहकार विकल्प राग द्वेष। इनसे जैसे-जैसे हम छुटकारा पाएँगे स्व के हम उतने ही समीप से समीपतम आते जाएँगे। भार जैसे-जैसे कम होगा जैसे-जैसे निर्भार होग हम ऊपर उभरते जाएँगे डूबने स बचगे।

आ जाए
'पर' स 'स्व'
मिल जाए
'स्व' म 'स्व'
सदा-सदा के लिए
प्रकट होगी
आत्म शक्ति की
फिर निर्धूम अनन्य ज्योति।

यह स्वारोहण है और इसी स मोक्ष सधगा। सच पूछिये तो नैतिक

हुआ। आखिर वसु [illegible] बताया कि लोगों ने धोखा किया है। यह जहर नहीं है कोरा पानी है।

बड़ा साहस होता है वैज्ञानिकों में। जो चीज वे कर सकते हैं वह सार्वजनिक है। जो चीज नहीं हो सकती उसको भी वे कर दिखाते हैं। बिजली तारबेतार टेलीविजन राकेट—ये सब असम्भव से असम्भवतम कार्य समझिये पर सब आज सम्भव हो गये हैं। इसलिए आज यह कहना कि अमुक चीज नामुमकिन है एक तरह से मानवीय ऊर्जा, मानवीय पुरुषार्थ और प्रगतिशील विज्ञान का तिरस्कार है। इससे हमारी आत्म शक्ति की प्रतिष्ठा भंग होती है।

मोक्ष सघन ऊर्जा की यात्रा है। विज्ञान प्रभावित धर्म और जन दोनों मोक्ष को आज भी होना मान सकते हैं। इसलिए मैं मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्न भी करता हूँ प्रेरणा भी देता हूँ। मुझे विश्वास है कि मुझे मोक्ष मिलेगा। मेरी मृत्यु मोक्ष के फूल अवश्य खिलाएगी। इसलिए मोक्ष प्राप्ति के लिए बार बार जोर देता हूँ और देना भी चाहिए। क्योंकि मोक्ष है और आत्मशुद्धि उपलब्ध हो जाय तो मोक्ष मिलेगा भी। यह नहीं हो सकता कि [illegible] कि केवल गौतम/सिद्धार्थ ही निर्वाण को पा सकते हैं। वे ही [illegible] हुए हैं। [illegible] कह दें कि महावीरस्वामी या जम्बूस्वामी तक [illegible] था। अथवा ईसाई कह दें कि ईसा मसीह ही परमात्मा के [illegible] पुत्र हैं तो यह बात ज्यादा तथ्यपूर्ण नहीं लगेगी।

[illegible] हास्यकारी बात है यह कि आज मोक्ष नहीं हो सकता। अरे [illegible] होता था और आज भी बंधन होता है। परन्तु मोक्ष होता था [illegible] नहीं होता है? तब तो आज बंधन भी नहीं होना [illegible] बंधन है तो मोक्ष भी होना चाहिए। [illegible] जन्म है तो मृत्यु भी [illegible] है तो मरना भी होगा। संयोग है तो वियोग भी होगा। [illegible] भी होगा। बंधन है तो मोक्ष भी होगा। [illegible] हम भाग्य [illegible] नहीं मिल सकता। [illegible] पर [illegible] है [illegible] पर [illegible] है [illegible] आया है। हर [illegible] पर यह [illegible] हर [illegible]

[illegible]—

[illegible]

काल तुरंत आ जायगा।
बीत गया अगर काल बावरे
बीता काल न आयेगा।।

कल का भरोसा नहीं। मोक्ष होगा आज अभी यहीं। यही वह जीवन है जिसका परमसाध्य मोक्ष है। केवल भूतकाल में ही मोक्ष था और आज नहीं है वैज्ञानिक एवं तार्किक बुद्धिवालों को यही सबसे बड़ी विसंगतिपूर्ण बात लगेगी और इसीलिए वह इसे स्वीकार भी नहीं करेगा।

जरा मुसलमान मौलवी लोगों को देखो। वे कहते हैं कि मोहम्मद साहब अन्तिम पैगम्बर हुए। उनके बाद इस युग में कोई पैगम्बर नहीं हो सकता। उनकी कोटि का आदमी अब नहीं हो सकता। मुहम्मद की टक्कर का आदमी कभी पैदा हो सकता है—यह बात नामुमकिन है। मुहम्मद ही आखिरी पैगम्बर हुए। आज यदि दूसरा पैगम्बर हो जाए तो मुसलमानों में बड़ी क्रान्ति मच जाए। लेकिन धर्म की पाबन्दी के लिए यह बात बना दी गयी कि अब दूसरा पैगम्बर नहीं होगा। जो होना था वह हो गया। वर्तमान या भविष्य काल में नहीं होगा। फिर नया पैगम्बर हो गया तो मुहम्मद को लोग बिसरा देंगे। उनकी पूछ कम हो जायेगी। इसलिए कह दिया कि मुहम्मद के बाद अब अन्य पैगम्बर नहीं होंगे। यह कितनी मजे की बात है कि मुसलमानों में मुहम्मद से पहले तेईस पैगम्बर हो गये इससे भी ज्यादा संख्या मिलती है पर कहते हैं अब नहीं होंगे। यद्यपि अकबर आदि ने प्रयास किया किन्तु उसका प्रयास मात्र एक महत्त्वाकांक्षा थी। इसलिए उसका प्रयास एक खोखली राजनीति बनकर रह गयी।

बौद्धों के सम्बन्ध में भी यही बात है। बौद्धों ने भी यही बात कही कि गौतम ही अन्तिम बुद्ध हैं। यह वस्तुतः श्रद्धा का विषय था। गौतम से पहले अनेक बुद्ध हुए पिटकों में सात बुद्ध होने का उल्लेख है और परवर्ती बौद्धागमों में चौबीस बुद्ध होना बताया है पर गौतम को सिद्धार्थ को महत्ता देने के लिए पूर्व की उपेक्षा करनी पड़ी और भविष्य में बुद्धत्व का द्वार बन्द कर दिया और कह दिया कि गौतम अन्तिम बुद्ध हैं। जो बुद्धत्व गौतम बुद्ध से पहले हर एक के लिए सुलभ था लाखों वर्षों तक सुलभ रहा गौतम के बाद बुद्धत्व के फूल मुरझा गये। और कहते हैं कि ऐसे मुरझाए कि फिर दूसरा फूल खिला ही नहीं। यदि उस फूल का बीज ही नष्ट हो गया हो तब तो बात अलग है। फिर तो ये फूल कभी खिलेंगे ही नहीं। बुद्धत्व अन्धकाराच्छन्न मार्ग में खो जायगा। और यदि बीज नष्ट

नहीं हुआ तो फिर नम्बर खिसगा। अपेक्षा है उनको मीनो की।

जैन कहते हैं कि इस कालू आरे में मोक्ष नहीं हो सकता। इस आरे में तीर्थंकर नहीं हो सकता। कितनी मेन्नी बात है यह। अपने हाथों में अपने पैर पर कुल्हाड़ी चलाने जैसी बात है। एक ओर तो जैनदर्शन कहता है कि हर इंसान ईश्वर बन सकता है। अपने राग द्वेष रूपी शत्रुओं को परास्त कर वह जब चाहे तब अपना विकास कर सकता है। इसी के विपरीत दूसरी ओर यह कहा जाता है कि मोक्ष, तीर्थंकरत्व इस युग में, इस आरे में नहीं होगा। मैं पूछता हूँ कि यदि इस आरे में मोक्ष का अमृत पान नहीं होगा तो क्या यह जीवन जहर भरा ही रहेगा। तब तो यह जीवन कोई जीवन थोड़े ही होगा उल्टा अभिशाप बन जायेगा। इस रहस्य से जो अभिन्न हैं वे कहते हैं कि महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर हुए जम्बू अन्तिम मोक्षार्थी हुए। यह तो जैनाचार्यों की कृपा ही समझूँगा कि उन्होंने मोक्ष का द्वार महावीर के बाद भी खुला रखा। बन्द किया जम्बू के बाद। जम्बू जड़ गया ताला रे। ताले बन्द कर दिये मोक्ष के। पाँचवाँ और छठा आरा समाप्त होगा। यानी कि इक्कीस और इक्कीस बयालीस हजार वर्ष के बाद फिर कालचक्र का दूसरा आधा चक्र प्रधावित होगा। उत्सर्पिणी चक्र के तीसरे चौथे आरे में फिर मोक्ष और तीर्थंकर होंगे।

ईसाई कहते हैं कि ईसामसीह बस वे ही ऐसे व्यक्ति थे, जिनको परमात्मा ने स्वीकार किया। ईसा ही ईश्वर के एकमात्र बेटे थे। जबकि ईसा स्वयं बाइबल में स्थान स्थान पर कहते हैं कि जो मेरा परमपिता है वह सबका पिता है। किसी एक का अधिकार या बपौती नहीं है उस पर। वह सबका पिता है सब उसके बेटे हैं। लेकिन ईसाई पादरी यही कहते हैं कि ईसामसीह ही ईश्वर के एक मात्र बेटे हुए। जब ईसा ही एकमात्र इकलौते बेटे हुए तो ईसाई धर्म के अनुसार यह सारा अस्तित्व फिर क्या है? जैसे परमात्मा ने ईसा को पैदा किया वैसे ही दूसरे जन को भी पैदा किया। तो वह पिता ईसा के भी है और सबके है। लेकिन कहा यही जाता है कि ईसा ही अन्तिम मसीहा हुए। उनके बाद कोई हो ही नहीं सकता। ईसा यद्यपि ईश्वर पुत्र थे किन्तु ईसाई तो ईसा को ही ईश्वर मानने लग गये हैं। वे ईश्वर को भूले जा रहे हैं। और जिधर देखो उधर ईसा का ही प्रचार प्रसार हो रहा है। जैसे यहूदी कहते थे कि ईसा अपने को ईश्वर पुत्र कहता है। इसीलिए यह अपराधी है और उसको दण्ड भी दिया क्रास पर चढ़ा दिया। वैसे ही यदि कोई आज अपने को ईश्वर पुत्र कहता है ईसा की तरह तो

शायद ईसाई भी उसकी यह हालत कर देगा जो ईसा की हुई थी।

कोई दूसरे महावीर हो सकते है ईसा हो सकते है राम हो सकते है—यह लोगो को जँचता नही। दयानन्द विवेकानन्द रामकृष्ण रामतीर्थ राजचन्द्र अरविन्द आनन्द वगैरह लोग ऐसे है जिनके बारे म मोक्ष प्राप्ति की सम्भावना की जा सकती है।

इसीलिए मै तो कहता हूँ कि ठीक है उस समय मोक्ष ज्यादा सुलभ था लेकिन आज असम्भव है यह बात कहना तो अधिक सगतिपूर्ण नही होगा। आज भी मोक्ष मिल सकता है। यदि कहा जाए कि मोक्ष आज दुर्लभ हो गया है तो कोई विरोध नही है। पर असम्भव है इसम विरोध है। अन्तर इतना ही है कि एक समय ऐसा आता है कि जब मोक्ष आसान हो जाता है और एक समय ऐसा होता है कि जब मोक्ष कठिनाई स होता है। महावीर के युग म गौतम बुद्ध के युग म मोक्ष को पाना बहुत सरल था। कृष्ण के समय ईश्वर को पाना थोड़ा सरल था। आज तो कृष्ण जैसे महावीर जैसे बुद्ध जैसे व्यक्ति कम है जो कि सच्चे मोक्ष का मार्ग बता द। साथ ही अर्जुन, गणधर गौतम और आनन्द जैसे लोग भी तो कम है जिन्हे सच्चा मार्ग दर्शाया जा सके।

वास्तविकता तो यह है कि आज यदि कोई दूसरा ईसा यदि कोई दूसरा मुहम्मद अथवा दूसरा कोई परम ज्ञानी हो जाए तो वह अपना धर्म अपना मत नया बना लेगा। ईसा नये महापुरुष हुए। उन्होने अपना धर्म अलग बनाया। जरथुस्त्र ने अपना मत चलाया। अरस्तू ने अपने गुरु से हटकर बात बताई। पायथागोरस नये सशोधक हुए।

मगर भारतीय मनीषियो म यह बात नही मिलेगी। ये लोग अपने पूर्वजो और बुजुर्ग लोगो से न तो आगे बढ़ना चाहते है और न उनके बराबर अपना सिहासन लगाना उचित समझते हैं। यह भारतीय आदर्श है। यही कारण है कि भारत मे अनेक महान् से महान् चिन्तक हुए लेकिन फिर भी भारत म दर्शन कम है। दर्शनो की गणना म केवल षड्दर्शन ही है। विदेशो म पाश्चात्य जितने दार्शनिक उतने दर्शन। वे लकीर के फकीर नही। महावीर ने जो हर इन्सान मे ईश्वरत्व की सम्भावना बताई वह पश्चिम म दर्शन के सम्बन्ध म है। कितने दार्शनिक हुए है पश्चिम मे। ब्रेडले डविड ह्यूम, हेडफील्ड काट, गटे—ये सब वर्तमान उपज है। वहाँ पर हर व्यक्ति यदि क्षमता हो तो दार्शनिक कह सकता है अपने को। पर भारत मे कोई अपने को नया दार्शनिक कहे तो लोग उसे सुख स जीने भी

हमें मतलब है केवल मोक्ष से। समय से मतलब ही नहीं है कि अभी होगा या नहीं।

मोक्ष कभी समय के साथ बँधा हुआ नहीं है। मोक्ष का मतलब ही है स्वतन्त्रता। सब चीज से स्वतन्त्रता। समय से भी स्वतन्त्रता। मोक्ष कभी समय मे बँधा हुआ नही रह सकता। हम लोग मोक्ष को समय के साथ बाँध लेते है। लोग कहते है पचम आरा है भ्रष्ट युग है पतित युग है। ठीक है बहुत कुछ कह दिया इस युग के बारे म लेकिन हम जिस युग म पैदा हुए हैं हमारे लिए तो यही सबसे बड़ा सतयुग है। रहा होगा किसी और के लिए प्राचीन काल मे सतयुग। लेकिन हम जिस युग म पैदा हुए है हमारे लिए तो वही सतयुग बनाना है हम इस काँटो भरे युग के पौधे पर भी गुलाब के फूल खिलाने है तभी हमारी महत्ता बनेगी।

इसलिए मैं कहता हूँ मोक्ष अभी मिल जाएगा। यदि हम पूर्ण प्रयास करे तो इसी आरे म मोक्ष मिल जाएगा। भविष्य के लिए हम मोक्ष को छोड़ते हो क्या है? भविष्य के लिए मोक्ष को छोड़ा तो बन्धन बना। मोक्ष हर समय हो सकता है। साधना भी हर समय हो सकती है। ये दोनो कालातीत हैं। यह अलग बात है कि एक समय ऐसा आता है कि जब मोक्ष की साधना सरलता से होती है और एक समय ऐसा होता है जब मोक्ष की साधना करने के लिए थोड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। पर मोक्ष इस समय नही हो सकता मैं नहीं मानता। समय को हम मोक्ष के साथ कभी न बाँधे। क्योकि इससे बहुत बड़ी क्षति होगी। आदमी के पुरुषार्थ को समय पर उपयोग कर लेना है उचित समय आया हुआ है।

मोक्ष के लिए प्रयास और पुरुषार्थ करने के लिए मै इसलिए कहता हूँ, क्योकि वह करने म हम समर्थ है। मैं यह नही कहता कि करो बल्कि मैं तो यह कहता हूँ कि करना चाहिए। आप कर सकते है आपके भीतर वह शक्ति है। मैं आत्मा की शक्ति को आपके सामर्थ्य को पहचानता हूँ। इसीलिए मैं बार बार जोर देता हूँ मोक्ष के लिए मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रयास करने के लिए।

भाग्य भरोसे मत रहो। भाग्य हमे मोक्ष दिलाएगा या नही दिलाएगा पक्का नहीं पर पुरुषार्थ अवश्य दिलाएगा। मै पुरुषार्थवाद का समर्थक ज्यादा हूँ। भाग्य नियतिवाद का अग है। नियतिवाद के आधार पर सृष्टि केन्द्रित है मगर मोक्ष पुरुषार्थवाद पर केन्द्रित है। महावीर ने पुरुषार्थ किया बुद्ध ने भी पुरुषार्थ किया ईसा ने भी पुरुषार्थ किया था तब कहीं जाकर सर्वतत्त्व

का पुद्गल का इश्वरत्व का नरा प्रवाहित हुआ था। भाग्य से, नियति मे भोजन उपलब्ध हो सकता है पर खाना स्वय को ही पड़ेगा यह पुरुषार्थ तो करना ही पडेगा। भाग्य और पुरुषार्थ का समन्वय ही सिद्धि का सोपान है। जहाँ तक जैना का प्रश्न है महावीर पुरुषार्थवादी कहे जाएंग। महावीर का विरोधी व्यक्ति था गोशालक। गोशालक नियतिवादी था। और जेन शास्त्र कहते है कि महावीर ने गोशालक के नियतिवाद का विरोध किया था। हालाकि महावीर ने नियतिवाद को सर्वथा अस्वीकार नही किया था। खीर की हण्डी फूटने से पूर्व महावीर द्वारा गोशालक को यह बता देना कि हण्डी फूट जायगी खीर पकने से पहले ही तो यह घटना नियतिवाद समर्थक हो गयी। मुझे तो लगता है कि महावीर नियति और पुरुषार्थ के समन्वयकारक साधक थे।

यदि हम नियति को ही आधारभूत मानग, तब तो कोई भी व्यक्ति मोक्ष के लिए पुरुषार्थ करेगा ही नही। नियति के आदेशानुसार तो व्यक्ति का बन्धन और मोक्ष सब निश्चित है। बैठे रहो सब यही निठल्ले। सोये रहो आम के पेड़ के नीचे और यह माला फेरत रहो, कि भाग्य म होगा तो आम अपने आप मुह म गिर जायेगा। वह कहानी सुनी होगी कि इसी मत का अनुयायी पेड़ के नीचे सोया रहा, पर उस आम नही मिला। सोये सोये जब नींद आ गई और वापस जब ऑख खुली तो पाया कि मुँह पर कुत्ता पेशाब कर रहा है।

वस्तुत नियति के भरोसे आदमी परतन्त्र हो जाता है और पुरुषार्थ के भरोसे स्वतन्त्र। मोक्ष उपलब्ध पुरुषार्थ से ही होगा। इस बात को भूल जाओ कि मोक्ष अभी होगा कि नही, पुरुषार्थ करते रहो। मोक्ष के लिए पुरुषार्थ से मुँह मत मोडो। यह तो अहोभाग्य समझिए कि आपको अवसर मिला है मोक्ष पाने के लिए मानव जन्म मिला है।

जैसे मानव-जीवन कठिनाई से मिलता है वैस ही अवसर भी कम मिलते है। मोक्ष पाने के लिए मानव जीवन का कीमती अवसर मिल गया है तो बाज की तरह टूट पड़े उस कबूतर पर। अन्यथा बाद म केवल पछतावा रहेगा। पर चिड़िया खेत चुग गई तो बाद म उस उड़ाने से कोई लाभ नहीं। कृषि सूखन के बाद वर्षा होना जैसे निरर्थक है वैसे ही अवसर खोने के बाद उसके लिए पश्चाताप करना। जीवन की सासा के संग मरण भी लिपटा हुआ है। सासा का उपयाग जीते-जी हो सकता है मरने के बाद नहीं। जीवन के अन्तिम परिणाम दो ही होते है या तो मोत या मोक्ष। दो ही

चीज हो सकती है। यदि मोक्ष है ही नही मौत ही है तो जीना बेकार है। पचास साल बाद मरे और आज मरे दोनो मे एक ही बात है। जीते इसलिए है ताकि पुरुषार्थ करके मोक्ष को पा सके। मरना ही अन्तिम है और सब मरते ही गये है यह बात गलत है। मोक्ष आज किसी को नही मिल सकता तो पैदा होना भी कोई काम का नही है। मौत तो अन्तिम परिणाम है जीवन का। यदि हम इस जीवन मे अमरता को नही पा सकते–अरबो खरबो असख्य वर्षो के बाद पायेगे तो हमारा जीवन लेना यह हमारा मनुष्य-जन्म, यह महिमापूर्ण जीवन क्या उपयोगी हो पायेगा? नही। समय यही है मोक्ष को पाने का। यही पायगे। अभी पायगे। मोक्ष पायेगे ससार से और हम अभी ससार मे है। मोक्ष यानी मुक्ति। ससार से मोक्ष पाना है जीते जी, मरने के बाद कुछ नही बचगा। राख और खाक ही बचेगा। जीते-जी मोक्ष मिलेगा और वह अभी और यही मिलेगा। अभी यानी जीते जी। जो जीते जी नही मिला वह कभी नही मिल सकता है। यही यानी इसी जीवन मे। अत समय यही है कि हम मोक्ष पाने के लिए पुरुषार्थ करे।

मैंने सुना है एक घर मे चार चोर घुस गये। घर मे दो भाई थे। एक सोया था ऑगन मे और एक सोया था छत पर। ऑगन मे सोया हुआ भाई जग गया चोर की आहट पाकर। ऑगन वाले भाई ने सोचा कि हम तो है दो और चोर हैं चार। और पता नही ये लोग अपने साथ क्या लाये है। हम कैसे लड सकेगे इनके साथ? बडा भाई छत पर सोया हुआ था। आवाज भी तो कैसे दे? आखिर उसने अगड़ाई ली और आवाज लगाई कि–

नारायण भाई नारायण हम गगा जी तो जायगे।

चोरो ने देखा कि एक भाई जग गया है। चलो झट से एक कोने मे छिप जाये और देख कि ये लोग क्या करते है। उसने फिर आवाज लगाई कि –

नारायण भाई नारायण हम गगाजी तो जाएँगे।

ऊपर वाला भाई जग गया उसने सोचा कि गगा जाने की कोई बात ही नही थी। आखिर क्या बात है। वह फिर चिल्लाया कि –

नारायण भाई नारायण हम गगा जी तो जायेगे।

नारायण ने सोचा कि जरूर दाल मे कुछ काला है। नारायण न कहा कि–

हम गगाजी तो जायेगे पर घर किसको सम्भलायेगे?

बीच वाले भाई ने कहा—

नरसी जी की पूरी खेती पर मैं आग लगायेगा।

पर नारायण भाई गंगा जी तो जायेंगे।

बड़े भाई ने सोचा कि वास्तव में कुछ न कुछ रहस्यमय बात है। फिर उसने कहा कि —

हम गंगा जी तो जायेंगे पर मारग में क्या खायेंगे।

हरि जो छोटा भाई था उसने कहा कि

चोरी कर कर खाएँगे पर गंगा जी तो जाएँगे।

जब यह आवाज जोर से गूँजी कि चोरी कर कर खाएँगे। तो अचानक देखा कि बाहर से एक आवाज आयी कि—

चोरी कर कर खाएँगे तो जूता फड़ाफड़ पायेंगे।

बात सही थी कि यदि चोरी करेंगे तो जूते भी पड़ेंगे। अरे! कौन है यह कमीना जो जूता मारेगा हमें?

बोला तेरा बाप है कोतवाल। कहा हमको क्या जूता मारेगा, भीतर आ और देख तेरे बाप को मार जूते जो कि मेरे घर में आकर बैठे हुए हैं। कोतवाल ने कहा— बात क्या है। दोनों भाई बोले—भीतर आओ। दोनों जग गये सारा मुहल्ला जग गया। कोतवाल भी पहुँच गया। कहा—ये छिपे हैं तेरे चोर! ये चोरी करने आये हैं। जूते देने हैं तो इनको दो।

समय पर यदि ये दोनों इस तरह का वार्तालाप नहीं करते तो शायद इनका सारा धन चला जाता। हम भी यदि अभी और यहीं साधना करने के लिए मोक्ष पाने के लिए प्रयास करेंगे तो फिर कब पायेंगे। जीवन को हम ऐसे ही खो देंगे। मनुष्य जीवन जिसको पाने के लिए हम जन्मों जन्मों तक साधना और पुण्य करना पड़ा उसको पाने के बाद भी यदि मोक्ष नहीं मिलता तो मनुष्य-जन्म पाना बेकार होगा। फिर तो मनुष्य जन्म पाया या पशु जन्म पाया दोनों में कोई भेद नहीं होगा। मोक्ष यहाँ नहीं मिल सकता। तिर्यंच में थे तो भी लगा मोक्ष यहाँ नहीं मिल सकता। नरक में थे—वहाँ भी लगा कि यहाँ मोक्ष नहीं मिल सकता। तो आखिर कौन सा जीवन ऐसा है जिसको पाने के बाद मोक्ष मिल जाए। न स्वर्ग रहे, न नरक रहे न तिर्यंच रहे। कुछ भी न बचे। मोक्ष मिल जाए अभी और यहीं। आखिर यही एक जन्म ऐसा साबित हुआ कि जिसमें मोक्ष को पाया जा सकता है।

यदि हम समय के आधार पर मोक्ष और बंधन की तुलना करेंगे तो

जब महावीर स्वामी पैदा हुए जब राम और कृष्ण हुए जब ऋषभदेव अथवा तीर्थंकर हुए तब भी ऐसा तो नहीं हुआ कि सारे मोक्ष चले गये। मान लिया जाय कि वह समय अच्छा था। आरा अच्छा था। तभी सब लोग मोक्ष नहीं गये। तो समय के आधार पर आदमी कभी मोक्ष मे थोडे ही जाता है। उस समय भी बहुत लोग ऐसे थ जो महावीर स्वामी को तीर्थंकर के रूप म स्वीकार नहीं करते थे। बुद्ध को बुद्ध नहीं कहते थे। बौद्ध लोग राम, कृष्ण और महावीर की निन्दा करते। ये लाग और किसी की निन्दा करते हागे।

तो उस समय समय तो अच्छा था लेकिन समय अच्छा होते हुए भी सब लोग मोक्ष को न पा सके। जब समय अच्छा होते हुए भी सब लोग मोक्ष को न पा सके तो आज समय अच्छा नहीं है लेकि‍न इसका मतलब यह नहीं है कि आज कोई भी व्यक्ति मोक्ष नहीं पा सकता। मोक्ष को पाया जा सकता है। यह हमारे पुरुषार्थ और प्रयास पर निर्भर होता है। हम अपने जीवन के समय का भरपूर उपयोग करे मोक्ष के लिए। समय का हर क्षण स्वर्णकण की तरह कीमती है। समय ही जीवन है। जीवन का निर्माण समय से ही हुआ है। जैसे जैसे समय बीत रहा है जीवन छण ोटा होता जा रहा है। उदित सूर्य पश्चिम की ओर बढ़ रहा है। हमे सूर्यास्त से पहले मोक्ष की अदृश्यनिधि को पा लेना है। •

मरण सुमरण हो

आयुष्य कर्म जीवन की मूलभित्ति है। जीवन की वीणा के तार ये ही है। सासो का स्वर उसकी अभिव्यक्ति है। जैसे ही ये तार टूटे, कि सगीत का ससार समाप्त हो जाता है। सासो का स्वर एक यात्रा है। जीवन भी एक यात्रा है। या समझिये कि ये दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू है। दोनो सही है अशुद्धि कही नही है। अगर एक पहलू भी अशुद्ध हो गया तो बाजार म उस सिक्के की कीमत नही है।

ऐसे ही जीवन के दो पहलू है जन्म और मृत्यु। ये वास्तव म जीवन की यात्रा के दो विश्राम स्थल है। जीवन को सभी लोग कला मानते है पर केवल जीवन ही नहीं बल्कि मृत्यु भी एक कला है। जीने की कला तो बहुत लोग जानते है पर मरने की कला तो विरले ही जानते है। जो जीने की कला जानते है मगर मृत्यु की कला से अनभिज्ञ है सच तो यह है कि वे मरणोपरान्त अपने पीछे एक ऐसा वातावरण छोड़ जाते है जो दूषित होता है। आदमी को अपनी मृत्यु का भोग किस तरह करना चाहिये इसका बोध होना जरूरी है। ताकि आदमी निर्भयतापूर्वक मृत्युवरण कर सके।

जीवन का प्रथम स्वर जन्म है और अन्तिम स्वर मृत्यु। हम लोग मध्य म है। अभी वीणा झकृत है। न ढीली है न टूटी। सगीत मुखरित है प्राणी उड़ रहा है यानी हम लोग जी रहे है। जी इसलिए रहे है क्योकि मरे नही है। मरे हुए इसलिए नही कहे जायगे क्योकि जीवन के जितने गुण होते है वे सारे गुण हमारे भीतर है। इसलिए हम जिन्दे है मरे हुए नही है। जिन्दे है तभी तक सब लोग प्रेम करते है। जिन्दे है तब तक हसन चलन भी किया होती है। जिन्दे है तभी तक परिवार वाले चाहते है। जिस दिन हम मर गये मुर्दे हो गये उस दिन हमारा सम्बन्ध समाज से नहीं होगा। उस दिन हमारा सम्बन्ध ससार से नही होगा। उस दिन हमारा सम्बन्ध

परतत्त्व मे नहीं होगा। जब तक जीवित है जब तक आत्मा का
र के साथ सयोग है तब तक लोग प्रेम करते है मैत्री भावना रखते है
र से बोलते है। मगर ये तभी तक है जब तक जिन्दे है। मृत्यु के बाद
श्मशान और कब्रिस्तान की शरण लेनी पड़ेगी। मिट्टी का मिट्टी म
लाना पड़ेगा।

जीवन वृक्ष की जड़ है आत्मा। आत्मा नित्य है। इस आत्मा का
द्धि, इन्द्रिय देह के साथ सगठन का नाम जन्म है। य सब अनित्य है।
इनका विघटन होना ही मृत्यु है। जीवन का आदि और अन्त इन्ही के दो
नाम है जन्म और मरण। आदि के पूर्व और अन्त क पश्चात् आत्मा
अव्यक्त रूप मे रहती है। आत्मा की व्यक्तता जीवन म ही होती है। जन्म
स्वभावत पूर्वोपार्जित कर्मवश होता है जिसमे विवशता और पराधीनता है।
किन्तु मरण अपने जीवन के कर्मो के अनुसार स्ववश है।

यह बात तो ठीक है मगर जीवन चलता ही दो तत्त्वो पर है—पहला
है जन्म और दूसरा है मृत्यु। यो समझ कि जीवन के दो पेर है जन्म और
मृत्यु। इन दोनो म से एक चीज की कमी हो जाये चाहे जन्म की कमी हो
या मृत्यु की आदमी लगड़ा हो जायेगा। जीवन चलता है जन्म और मरण
के पैरो पर। दो तटो के बीच बहने वाली नदी की तरह हमारा जीवन
समझिये। रथ के दो चक्को की तरह भी समझ सकते है। अथवा या
समझिये कि जीवन हमारा उस पक्षी की तरह है जिसके जन्म और मरण के
दॉयी एव बॉयी ओर दो पख है। इन्ही दो पखो के आधार पर यह हमारा
जीवन उड़ता है चलता है।

> जन्म मरण है इस मायावी जीवन के दो छोर।
> लॉघ सकेगा कौन इन्हे? यह प्रश्न रहा झकझोर।
> जीवन तो है गम्य किधर ये छोर अगम्य अपार
> कूल कहाँ है दृश्य, यहाँ तो दृश्य बनी है धार।
> किन्तु धार के आर-पार भी कुछ तो होगा श्रेय।
> छोड़ दिया है जिसको भ्रमवश कहकर के अज्ञेय।।

यह कविता बुद्धमल की है। कविता क्या है एक लौकिक सत्य का
उद्घोष है जीवन्त अभिव्यक्ति। कितनी सुन्दर पक्तियॉ है कि जन्म मरण
हैं इस मायावी जीवन के दो छोर। दो किनारे है नदी के, जीवन के भी दो
किनारे है जन्म और मृत्यु। किन्तु आदमी जीवन के जल मे गोता खा रहा
है डुबकियॉ खा रहा है बहता चला जा रहा है पर तट की ओर उसकी

मरण सुमरण हो

आयुष्य कर्म जीवन की मूलभित्ति है। जीवन की वीणा के तार ये ही हैं। सांसों का स्वर उसकी अभिव्यक्ति है। जैसे ही ये तार टूटे कि संगीत का संसार समाप्त हो जाता है। सांसों का स्वर एक यात्रा है। जीवन भी एक यात्रा है। यों समझिये कि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों सही हैं, अशुद्धि कहीं नहीं है। अगर एक पहलू भी अशुद्ध हो गया तो बाजार में उस सिक्के की कीमत नहीं है।

ऐसे ही जीवन के दो पहलू हैं जन्म और मृत्यु। ये वास्तव में जीवन की यात्रा के दो विश्राम स्थल हैं। जीवन को सभी लोग कला मानते हैं, पर केवल जीवन ही नहीं बल्कि मृत्यु भी एक कला है। जीने की कला तो बहुत लोग जानते हैं पर मरने की कला तो विरले ही जानते हैं। जो जीने की कला जानते हैं मगर मृत्यु की कला से अनभिज्ञ हैं, सच तो यह है कि वे मरणोपरान्त अपने पीछे एक ऐसा वातावरण छोड़ जाते हैं जो दूषित होता है। आदमी को अपनी मृत्यु का भोग किस तरह करना चाहिये इसका बोध होना जरूरी है। ताकि आदमी निर्भयतापूर्वक मृत्युवरण कर सके।

जीवन का प्रथम स्वर जन्म है और अन्तिम स्वर मृत्यु। हम लोग मध्य में हैं। अभी वीणा झंकृत है। न ढीली है न टूटी। संगीत मुखरित है, पक्षी उड़ रहा है यानी हम लोग जी रहे हैं। जी इसलिए रहे हैं क्योंकि मरे नहीं हैं। मरे हुए इसलिए नहीं कहे जायेंगे क्योंकि जीवन के जितने गुण होते हैं वे सारे गुण हमारे भीतर हैं। इसलिए हम जिन्दे हैं, मरे हुए नहीं हैं। जिन्दे हैं तभी तक सब लोग प्रेम करते हैं। जिन्दे हैं तब तक हलन चलन की क्रिया होती है। जिन्दे हैं तभी तक परिवार वाले चाहते हैं। जिस दिन हम मर गये, मुर्दे हो गये, उस दिन हमारा सम्बन्ध समाज से नहीं होगा। उस दिन हमारा सम्बन्ध संसार से नहीं होगा। उस दिन हमारा सम्बन्ध

किसी परतत्त्व से नही होगा। जब तक जीवित है जब तक आत्मा का शरीर के साथ सयोग है, तब तक लोग प्रेम करते है मैत्री भावना रखते है प्यार से बोलते है। मगर ये तभी तक है जब तक जिन्दे हैं। मृत्यु के बाद तो श्मशान और कब्रिस्तान की शरण लनी पडेगी। मिट्टी को मिट्टी म मिलाना पड़ेगा।

जीवन वृक्ष की जड़ है आत्मा। आत्मा नित्य हैं। इस आत्मा का बुद्धि, इन्द्रिय देह क साथ सगठन का नाम जन्म है। ये सब अनित्य है। इनका विघटन होना ही मृत्यु है। जीवन का आदि और अन्त इन्ही के दो नाम हैं जन्म और मरण। आदि के पूर्व ओर अन्त के पश्चात् आत्मा अव्यक्त रूप म रहती हे। आत्मा की व्यक्तता जीवन मे ही होती है। जन्म *स्वभावत पूर्वोपार्जित कर्मवश होता है जिसमे विवशता और पराधीनता है।* किन्तु मरण अपने जीवन के कर्मो के अनुसार स्ववश हैं।

यह बात तो ठीक है मगर जीवन चलता ही दो तत्त्वो पर है–पहला है जन्म और दूसरा है मृत्यु। यो समझे कि जीवन के दो पैर है जन्म ओर मृत्यु। इन दोनो मे से एक चीज की कमी हो जाये चाहे जन्म की कमी हो या मृत्यु की आदमी लगड़ा हो जायेगा। जीवन चलता है जन्म और मरण के पैरो पर। दो तटो के बीच बहने वाली नदी की तरह हमारा जीवन समझिये। रथ के दो चक्को की तरह भी समझ सक्ते है। अथवा यो समझिय कि जीवन हमारा उस पक्षी की तरह है जिसके जन्म और मरण के दॉयी एव बॉयी ओर दो पख है। इन्ही दो पखो के आधार पर यह हमारा जीवन उड़ता है, चलता है।

जन्म- मरण है इस मायावी जीवन के दो छोर।
लॉघ सकेगा कौन इन्हे? यह प्रश्न रहा झकझोर।
जीवन तो हे गम्य किधर ये छोर अगम्य अपार
कूल कहॉ हैं दृश्य, यहॉ तो दृश्य बनी है धार।
किन्तु धार के आर पार भी कुछ तो होगा श्रेय।
छोड दिया है जिसको भ्रमवश कहकर के अज्ञेय।।

यह कविता बुद्धमल की है। कविता क्या है एक लौकिक सत्य का उद्घोष है जीवन्त अभिव्यक्ति। कितनी सुन्दर पक्तियॉ है कि जन्म मरण है इस मायावी जीवन के दो छोर। दो किनारे है नदी के जीवन के भी दो किनारे है जन्म ओर मृत्यु। किन्तु आदमी जीवन के जल मे गोता खा रहा है डुबकियॉ खा रहा है बहता चला जा रहा है पर तट की ओर उसकी

नजर नहीं है न तो जन्म की ओर और न मृत्यु की ओर। जन्म के समय बोध नहीं था और मृत्यु के समय होश नहीं रहता। फलस्वरूप दोनों ही अनेय और अज्ञात रह गये।

किन्तु धार के आर पार भी कुछ तो होगा श्रेय।
छोड़ दिया है जिसको भ्रमवश कहकर के अनेय।।

पर लोगों ने बहती धारा के आर-पार रहने वाले श्रेय को ग्रहण नहीं किया। प्रकृति की हर वस्तु निरुद्देश्य नहीं होती सद् उद्देश्य को लेकर ही होती है। सृष्टि में सबसे बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना मानवीय जीवन के अस्तित्व की है। फिर वह निरुद्देश्य बेकार क्या चला जा रहा है? उसकी यात्रा उद्देश्यपूर्ण हो। वह अनेय की गुत्थियों को भी सुलझाये। यदि जीवन के उद्देश्य पूर्ण न हुए तो जन्म भी मृत्यु जैसा ही सिद्ध होगा। जीना और न जीना—दोनों एक बराबर है। प्रेय की मृग मरीचिका में उलझा हुआ जीवन *श्रेयरहित बन जाता है। प्राप्त सुनहरा अवसर खो देता है।*

हम भी जीवित है। हमें भी अवसर मिला है। जन्म तो हमने पा लिया मगर मरे नहीं है और जब तक मृत्यु नहीं आयेगी, जीवन हमारा सार्थक नहीं होगा। जन्मते बहुत है और मरते भी बहुत हैं। जीवन के सत्कर्मों से ही जन्म और मृत्यु सार्थक होती है। कुछ लोग अपना जन्म सार्थक करते है और कुछ लोग अपनी मृत्यु सार्थक करते है। हम जन्म पा चुके पर हमने जन्म को तो सार्थक नहीं किया तो कम से कम मृत्यु को तो सार्थक कर लें। यदि मृत्यु सार्थक हो जाय तो जन्म अपने आप सार्थक हो जाता है। पर जीवन या जन्म सार्थक करने से मृत्यु भी सार्थक हो जाये यह जरूरी नहीं है।

किसी आदमी ने जीवन भर सत्कर्म किया यानी अपना जन्म उसने सार्थक कर लिया पर मृत्यु के समय उसने कोई कुकर्म कर दिया सीताहरण करके रावण की तरह तो उसके द्वारा जीवन भर किये गये सत्कर्मों पर पानी फिर गया। इसी के स्थान पर एक ऐसा व्यक्ति है, जिसने जीवन भर कुकर्म किया मगर मरते समय उसकी भावना निर्मल हो गई, उसे अपने कुकर्मों पर प्रायश्चित हुआ उसने कोई सत्कर्म कर लिया, तो उसके द्वारा जीवन में किये गये कुकर्मों पर पानी फिर जाता है। अजामिल के बारे में यह प्रसिद्ध है कि उसने सारे जीवन में पाप ही बटोरे किन्तु मरते समय ईश्वर के नाम स्मरण मात्र से सद्गति प्राप्त की। जयप्रकाश नारायण के सर्वोदय मंच से एक बहुत से लोग समर्पित हुए जिन्होंने जीवन भर

चारी डकैती की खून खराबी की पर अन्तिम अवस्था उनकी स्वपर हितकारी हुई। उनकी मृत्यु ने भी उन्हे सार्थक कर दिया। इसी को कहते है मरण सुमरण हो गया।

मृत्यु हमारी ऐसी हो जाय जिसके बाद हमको पुन जन्म ही न लेना पडे। वैसे जिसने जन्म लिया है उसको मरना निश्चित पडता है। मगर इसका मतलब यह नही कि जो मरता है उसको जन्म वापस निश्चित ही लेना पडता है। यह बात पक्की है कि जन्म लिया है तो मृत्यु जरूर होगी पर मृत्यु होने के बाद जन्म लेना कोई जरूरी नही है। हो सकता है कि हमारी मृत्यु हम अमरता दे दे। खास बात यही है कि जन्म किसी भी आदमी को अमरता नही देता जबकि मृत्यु अमरता दे देती है। अमरत्व का सूत्र वास्तव म मृत्यु ही है। मगर लोग मृत्यु का नाम सुनते ही बहुत घबराते है। इतना घबराते है कि उनकी कोई हद नही। अस्पताल म पडे हैं सड रहे है गल रहे है सास फूल रहा है कोई सेवा करने वाला परिजन नही है मगर फिर भी जीना चाहते है मरना कोई नही चाहता।

हमारी जीवेषणा अनन्त है। इतनी अनन्त है जितना आकाश। सचमुच हमारे भीतर जब तक जीवेषणा रहेगी जिजीविषा रहेगी तब तक हमारी मृत्यु कभी भी अमरत्व मे नही बदल सकती। मरेगे तो हम निश्चित ही मगर हमारी मृत्यु महोत्सव नही हो पायेगी। जन्म का महोत्सव तो सभी मनाते है मगर मृत्यु का महोत्सव तो विरले ही मनाते है। सामान्य लोग मरते है तो लोग रोते है छाती पीटते है। महावीर बुद्ध और ईशा जैसे मरते है तो कहते है कि वास्तव म इन्होने मृत्यु का महोत्सव मनाया है। लोग उनकी मृत्यु का भी महोत्सव मनाते है। ये निर्वाण जयन्तियॉ और स्वर्गारोहण जयन्तियॉ वास्तव म मृत्यु महोत्सव के प्रतीक है। जन्म भी हम अमरता नही देता है मगर महावीर बुद्ध जैसा की मृत्यु भी अमरता दे देती है।

इसलिए आज का जो सूत्र है वह हम मृत्यु का प्रशिक्षण देता है। आज हमको मृत्यु को पाठ पढ़ना है लेशन ऑफ डेथ। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि लोग बहुत घबराते हैं मृत्यु का नाम सुनकर। लोगो को मैने देखा है। हालाकि कहते है बहुत बार ऐसा कहते है प्रार्थना करते है कि भगवान्! हमको ऊपर उठा ले। मगर जब मरने का मौका आता है तो लोग पीछे हट जाते है और जीने का प्रयास करते है। उनमे और अधिक जीने की चाह होती हैं।

एक घटना मुझे याद है एक बुढ़िया बहुत गरीब थी। उसके पास अपनी जीविका चलाने का कोई साधन नहीं था। चारपाई पर पड़ी है बीमार है मगर कोई सेवा करने वाला नहीं था। उसने भगवान् से प्रार्थना की कि हे भगवान्! ऊपर उठा लो। ये जीना कोई जीना नहीं है। इससे इच्छा यही है कि मर जाऊँ। कम से कम चैन की नींद तो मिलेगी। वह ऐसी प्रार्थना कर रही थी। शायद भगवान ने उसकी सुन ली। भगवान ने सोचा कि भक्त मृत्यु का वरदान माँग रही है। उसकी इच्छा पूरी होनी चाहिए। अचानक जोर शोर से बादल गरजने लगे। पानी बरसने लगा। एक साँप उस कुटिया मे घुस गया और वह साँप धीरे धीरे बुढ़िया की चारपाई के पास जा रहा है। अचानक बिजली कौंधी तो बिजली की चमक म बुढ़िया ने देखा कि अरे अरे! सर्प आ गया। जैसे ही लगा कि सर्प आ गया है, तो उस बुढ़िया मे उठने की ताकत न होने पर भी वह तत्काल खड़ी हुयी और प्रबल आन्तरिक जिजीविषा के कारण तत्काल भाग पड़ी।

तो प्राणी जब भय के कारण को देखता है तो उससे बचने के लिए भागता है। किसी ने जगल म बाघ को देखा। यह बाघ हमारे जीवन को समाप्त कर देगा। हम इससे दूर हटना चाहिए। यह सोचकर वह बाघ से दूर भागता है। भागने मे मूल कारण जिजीविषा है जीवेषणा है। जीवन विपत्ति मे न पड़े। अत विपत्ति के कारणो से बचाव की भावना ही भय है। सामने उपस्थित भय के कारण को देखकर रक्षा का कोई अन्य उपाय न लगाकर उसका यथोचित सामना करना ही साहस है। मगर दोनो मे जिजीविषा है। साहस मे भी जिजीविषा है और भय मे भी जिजीविषा है। प्रत्येक प्राणी मे यह जिजीविषा रहती है। मनुष्य को तो छोड़ो पशु पक्षी, कीट, पतग यहाँ तक कि वनस्पतियो मे भी जिजीविषा रहती है। पौधा भी उसी तरफ बढ़ता है जिस तरफ उसे जीवन मिलता है प्रकाश और वायु के रूप म। आपने लताएँ देखी है। वे भी आश्रयभूत आधार को कसकर जकड़ती है। ताकि नीचे न गिर जाये। वह यहाँ तक जकड़ लेती है कि आगे जाकर आधार दुर्बल हो जाता है। बरगद की शाखाओ से जो प्ररोह निकलता है स्तम्भ के रूप मे वह जिजीविषा के कारण ही निकलता है।

इसीलिए जिजीविषा और भय दोनो का घना सम्बध है। लोगो मे जिजीविषा भरी पड़ी है सरावार है। फलत आदमी कहने को चाहे कुछ भी कहे कि हे भगवान्! ऊपर उठा लो मगर मृत्यु का सबसे बड़ा भय होता है। इसीलिए सप्तभयो म मृत्यु भय सर्वाधिक भयावह है। जैसे ही मृत्यु का

कारण दिखायी देता है कि लोग भाग पडते है। लोग घवडाते है मृत्यु से ओर मृत्यु से बचने का प्रयास भी करते है। मगर कितना भी प्रयास कर लो यदि मृत्यु का दिन आ गया है तो वह इहलोक से जायेगा ही जायेगा स्वर भग होगा ही होगा क्योकि वीणा के तार टूट चुके हैं।

सासो का सगीत झकृत है
जव तक तोड नही सकता
कोई उसकी लय उसका स्वर
आयु-कर्म की किन्तु टूटती
ह जव रेखा
टूटी हुई वीणा की भाति
झकृत होता नही काई स्वर।

योगाशास्त्रो के अनुसार हमारे भीतर सीमित सासे है। जितनी सासे है उतनी ही सासो तक हमारा जीवन है। उन्ही सासा के भीतर वह आखिरी सास भी है जिसका नाम मृत्यु है आर पता नही ये जो सासे चल रही है उनमे वह सास कव प्रकट हो जाय। इन सासा के भीतर मृत्यु की सास लिपटी हुयी है। जैसे चन्दन का पेड होता है और उसम सर्प लिपटा हुआ रहता है उसी तरह जीवन की सासो मे भी वह मृत्यु की सास लिपटी हुई हे। पता नही वह कव प्रकट हो जाये ओर इस दे अजगर की तरह जीवन को निगल जाये। कोई पता नही है। सिकन्दर ने सुकरात से कहा–सुकरात। चाहे मेरा सारा सम्राज्य चला जाय मगर मृत्यु की सास हट जाय। पर ऐसा न हो सका। सारा सम्राज्य देकर भी वह मृत्यु की सास को न हटा सका। लोग चाहे जितना भी प्रयास कर ले यह सास न आय मगर आयगी ही। यदि मृत्यु का समय नजदीक आ गया है तो वह सास आयेगी ही। यह जीवन का अन्तिम विश्राम स्थल है । यात्री को इस स्थल पर रुकना ही पड़ेगा। कोई चारा नही है।

एक पाश्चात दार्शनिक की कहानी है। यह कहानी मेने दसवी कक्षा म अग्रेजी मे पढ़ी थी। वह दार्शनिक एक देवी के मन्दिर म गया आर पुजारी से कहा कि पुजारी। तुम अपनी देवी की प्रार्थना करा और उससे पूछा कि मेरी मृत्यु कैसे होगी? पुजारी न दवी की बहुत प्रार्थना की। तीन दिन के वाद देवी प्रकट हुई और कहा कि सुनो। उसकी मृत्यु सिर के ऊपर पदार्थ गिरने से होगी। दार्शनिक महानास्तिक था। उसने कहा कि [illegible] मुझे इतना वता दिया है कि तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे सिर के [illegible]

मरण उत्कर्षत एक बार होता है।

महावीर ने इस सूत्र म मृत्यु के दो आयाम पेश किये है। एक तो है अकाम मरण और दूसरा है सकाम मरण। मृत्यु का ऐसा भेद आपको ओर कही नहा मिलेगा। हा। जन्म का मिल जायेगा। जीवन का भी मिल जायेगा। पर मृत्यु के सम्बन्ध मे महावीर की यह विशेष देन है।

अकाम मरण आर सकाम मरण—इन दोनो शब्दो का विशेष अर्थ मे स्वीकार किया गया है। यदि इसको केवल ऊपर-ऊपर से सुनेगे तो वह अर्थ स्फुटित नही होगा जिस अर्थ म महावीर ने कहा है।

पहला है अकाम मरण। यानी कि इच्छा रहित मरण कामना रहित मरण मृत्यु के भय से ग्रसित मरण। यह मरण ओछा है तुच्छ मरण है। महावीर की भाषा मे अकाम मरण है। यह मरण असमाधिपूर्वक मरण होता है। ऐस मरने वाले लाग बार बार मरते है। मृत्यु का ऐसे लोगा पर शासन रहता है। ठीक वैसे ही जैसे पुलिस का पकड़े हुए चोर पर शासन होता है। ऐसे लोग मृत्यु से घबड़ाते हैं और भागे भागे फिरते हैं। किन्तु मृत्यु उनक पीछा करती है। ठीक वैसे ही जैसे पुलिसवाले किसी अपराधी को पकडने के लिए उसका पीछा करते हैं।

जबकि दूसरा मरण वह है जिसमे मरण का वरण बिना किसी भर के होता है। यो समझिये कि स्वेच्छापूर्वक मरण होता है। यही मरण पण्डित मरण है समाधि मरण है। इसमे अपराधी ने जो अपराध किया है उसे वा स्वय न्यायाधीश के पास जाकर कह देता है और प्रायश्चित स्वरूप दण्ड भोगने के लिए तैयार रहता है। सकाम मरण मरने वाला स्वेच्छा से अपनी देह का विमर्जन कर देता है। अथवा आप यो समझिये कि वह मृत्यु पर शासन करता है। जैसे राजा का सिपाहियो पर शासन होता है वैसे ही उसका मृत्यु पर शासन होता है।

जो आदमी मृत्यु से डरता है और मृत्यु से डरकर भगता है वह वास्तव म [illegible] जीने की कला से अनभिज्ञ है। उसका जीवन अनासक्त नहीं हो सकता [illegible] कमल नही है अपितु कीचड़ मे पैदा हुआ और कीचड़ म सना कीड़ [illegible]

[illegible] देह की आसक्ति को छोड देता है कमल की तरह कीचड़ से [illegible]ाता है और आयु की परिपक्वता आ जाने पर अपना समझकर जो मृत्यु का स्वागत करता है हँसते हँसते देह से अपनी आत्मा का ऊर्ध्वगमन कर लेता है वह।

[illegible] हो।

[illegible] किसी काम को
कोई न साथ
और सभी पुरुषार्थ
सर्व निष्फल हो जाते
आयु कर्म की रेखा
पड़ जाती है शिथिल।।

बहुत बड़े दार्शनिक हुए फ्रायड। फ्रायड के सामने यदि कोई आ
कहता कि आपकी मृत्यु कब होगी। आप ८० वर्ष के हो गये। तो उन्हें
लगता। यदि उनके सामने मृत्यु का नाम किसी ने ले लिया तो वे
घबड़ा जाते थे। इसीलिए फ्रायड ने बहुत सारे दार्शनिक ग्रंथ लिखे है
किसी भी ग्रंथ में मृत्यु का विवरण नहीं दिया। महावीर स्वामी मृत्
कभी घबड़ाते नहीं और अपने शिष्यों से भी वे यही कहते कि तुम मृत
घबड़ाओ मत। क्योंकि मृत्यु तो हमारा जन्म सिद्ध स्वभाव है। न तो इ
तुम किसी के द्वारा छिपाया सकते हो और न ही बढ़वा सकते हो।
तुम्हारा ऐसा शाश्वत स्वभाव है कि तुमको जन्म के साथ ही मिल
यदि जन्म हुआ है तो मृत्यु निश्चित ही होगी। यदि फूल खिला है
मुरझायगा जरूर। यदि सूर्य उगा है तो अस्त भी जरूर होगा।

ऊगे सो तो आथगे फूले सो मुरझाय।
जन्मे सो निश्चय मरे कौन अमर होय आय?

कोई भी तो अमर नही हुआ। हाँ वे लोग जरूर अमर हो
जिन्होने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली।

आज की सारी शिक्षा सारा उपदेश महावीर का यही है कि
मृत्यु से घबड़ाओ मत। क्योंकि यदि तुम मृत्यु से घबड़ाओगे तो यह तु
अज्ञान है। अज्ञान के कारण तूने आज तक पता नही कितने कितने
लिये और कितनी वार मृत्यु भी पायी है। यदि तुम्हारा एक बार
समाधि मरण हो गया। यदि एक बार भी पण्डित मरण हो गया सुमरण
गया तो वापस जन्म लेने की जरूरत नही। वह एक ही मरण तुम्हें अ
दे देगा मोक्ष प्रदान कर देगा। मरण सुमरण हो।

बालाण अकाम तु मरण असइभवे
पण्डियाण सकाम तु उक्कासेण सइभव।

बाल जीवो के अकाम मरण बार बार होता है। पण्डितो का स

मरण उत्कृष्टत एक बार होता है।

महावीर ने इस सूत्र में मृत्यु के दो आयाम पेश किये है। एक तो है अकाम मरण और दूसरा है सकाम मरण। मृत्यु का ऐसा भेद आपको और कहीं नहीं मिलेगा। हां! जन्म का मिल जायेगा। जीवन का भी मिल जायेगा। पर मृत्यु के सम्बन्ध में महावीर की यह विशेष देन है।

अकाम मरण और सकाम मरण—इन दोनों शब्दों को विशेष अर्थ में स्वीकार किया गया है। यदि इसको केवल ऊपर ऊपर से सुनेंगे तो वह अर्थ स्फुटित नहीं होगा जिस अर्थ में महावीर ने कहा है।

पहला है अकाम मरण। यानी कि इच्छा रहित मरण कामना रहित मरण मृत्यु के भय से ग्रसित मरण। यह मरण ओछा है तुच्छ मरण है। महावीर की भाषा में अकाम मरण है। यह मरण असमाधिपूर्वक मरण होता है। इस मरने वाले लोग बार बार मरते है। मृत्यु का ऐसे लोगो पर शासन रहता है। ठीक वैसे ही जैसे पुलिस का पकड़े हुए चोर पर शासन होता है ऐसे लोग मृत्यु से घबड़ाते हैं और भागे भागे फिरते हैं। किन्तु मृत्यु उनका पीछा करती है। ठीक वैसे ही जैसे पुलिसवाले किसी अपराधी को पकड़ने के लिए उसका पीछा करते हैं।

जबकि दूसरा मरण वह है जिसमें मरण का वरण बिना किसी भय के होता है। यो समझिये कि स्वेच्छापूर्वक मरण होता है। यही मरण पण्डित मरण है, समाधि मरण है। इसमे अपराधी ने जो अपराध किया है उसे वह स्वयं न्यायाधीश के पास जाकर कह देता है और प्रायश्चित स्वरूप दण्ड भोगने के लिए तैयार रहता है। सकाम मरण मरने वाला स्वेच्छा से अपनी देह का विमर्जन कर देता है। अथवा आप यो समझिये कि वह मृत्यु पर शासन करता है। जैसे राजा का सिपाहियों पर शासन होता है वैसे ही उसका मृत्यु पर शासन होता है।

जो आदमी मृत्यु से डरता है और मृत्यु से डरकर भगता है वह वास्तव में जीवन जीने की कला से अनभिज्ञ है। उसका जीवन अनासक्त नहीं हो सकता। वह कमल नहीं है अपितु कीचड़ में पैदा हुआ और कीचड़ में सना कीड़ा है।

जो अपनी देह की आसक्ति को छोड़ देता है कमल की तरह कीचड़ से निर्लिप्त हो जाता है और आयु की परिपक्वता आ जाने पर अपना जीना अनुपयोगी समझकर जो मृत्यु का स्वागत करता है हँसते हँसते निर्भयतापूर्वक अपनी देह से अपनी आत्मा का ऊर्ध्वगमन कर लेता है वही

शिल्पकार [illegible] महावीरजी की मूर्ति को [illegible] उसकी प्रतिछवि को पूरा पूरा ढक देता है और जब तक उसका [illegible] नहीं होता मूर्ति तब तक प्रकट नहीं हो पाती। [illegible] अज्ञान के आवरण में ढके जीव है जो अभी तक ज्ञानी नहीं है [illegible] नहीं। कारण वे बाल जीव है। उनके बाल होने के कारण [illegible] नहीं है। इसलिए उनका अकाम मरण होता है वे बार बार मरते है। पता नहीं हमने कितनी बार मृत्यु का वरण किया। मानो मृत्यु की गोद में हम सोए हुए है और बार बार अनन्त बार पता नही कब तक बाल मरण का भोग भोगते रहेंगे। जब तक कि हमारा सकाम मरण न हो जाये पण्डित मरण न हो जाय तब तक हम भटकते ही रहेंगे।

महावीर कहते हैं कि तू बाल जीव है। इसलिए तेरा बार बार मरण हो रहा है। यदि तू पण्डित बन जायेगा यदि तेरी प्रज्ञा प्रकट हो जायेगी, यदि तेरी समाधि सध जायेगी तो सचमुच तू एक ही मरण मे अमरत्व को पा लेगा। इसलिए महावीर की यह जो गाथा है वह हमे मृत्यु की शिक्षा देती है कि तुम किस तरह से मरो। यानी वे मृत्यु की कला का पाठ पढ़ाते है। महावीर यह नही कहते कि तुम मरो। मगर वे यह कहते हैं कि मरो तो इस तरह से कि तुम्हारा मरण सुमरण हो जाए। मरण भी हमारा अच्छा मरण हो जाए। बाल जीव का अकाम मरण बार-बार होता है। अब आप देखिए कि बार बार मरण कैसे होता है। जैसे कि कोई मर रहा है उसके भीतर यह भावना है कि अरे! यह भी कोई ससार है। चारो तरफ निर्धनता ही निर्धनता है। देखो वह व्यक्ति कितना सुखी है। उसके पास धन है वैभव है परिवार है मकान है। वह इस भावना को लेकर मरा। मर रहा है मरते समय यदि उसके भीतर ऐसी कोई भावना है तो वह अकाम मरण हो गया। बाल जीवो का मरण हो गया। अब वापस जन्म लेना होगा उस वैभव धन मकान, को भोगने के लिए।

एक सेठ की मृत्यु हो रही थी। डाक्टरो ने जवाब दे दिया। सेठ ने मरते मरते पूछा अरे! बड़ा बेटा कहाँ है? पत्नी ने कहा आप चिन्ता न कीजिए। बड़ा बेटा आप की बॉयी ओर बैठा है। सेठ ने पूछा, मँझला बेटा? पत्नी ने कहा आप आराम से सोइये मँझला बेटा आप के दायी ओर बैठा है। देखिये सब लोग यही पर बैठे हैं। तो छोटा बेटा कहाँ है? वह आपके पैरो के पास बैठा है। पता नही आप इतनी क्या चिन्ता करते है? आप आराम से सोइये। सब लोग यही पर है पूरा परिवार यही पर है।

वह झट से बैठा होने लगा। पत्नी ने कहा कि आप बैठ क्या रहे है? डाक्टर ने सोने के लिए कहा है। आप सीरियस है! किसी भी क्षण आपकी सांस निकल सकती है। सेठ ने कहा बड़ा भी छोटा भी और मँझला भी यहीं पर है तो दुकान कौन चला रहा है?

सेठ मर रहा है फिर भी मरते समय उसको दुकान की चिन्ता है। इसलिए यदि वह मरेगा भी तो वह अगले जन्म उस दुकान के प्रति आसक्त होने के कारण फिर जन्म ग्रहण करना पड़ेगा।

आप सब द्रौपदी का नाम जानते है। पूर्व भव मे द्रौपदी का नाम सुकुमालिका था। सुकुमालिका साध्वी बन गयी। उसने अनशन ले लिया। साधना कर रही थी जंगल के बीच पहाड पर सोयी हुई थी। अचानक उसने देखा कि एक वेश्या पांच आदमियो के साथ बड़े आराम से काम क्रीडा करती हुई जा रही है। उसके मन मे इच्छा हुई कि यह स्त्री कितनी भाग्यशालिनी है। इसको एक साथ पाँच पाँच व्यक्ति मिले है। वह बडे आराम से अपना जीवन व्यतीत कर रही है। सचमुच यदि मुझे अपनी तपस्या का फल मिले तो इसी तरह मै भी पाँच आदमियो के साथ भोग भोग सकूँ। सुकुमालिका मर गयी। मृत्यु उसकी हुई मगर यह मृत्यु उसके पुनर्जन्म का कारण बन गयी। यदि वह अपने मन मे यह आसक्ति पूर्ण भावना नही रखती तो सचमुच उसका मरण सुमरण हो जाता। उसको जन्म नहीं लेना पड़ता। परन्तु सुकुमालिका अपने मन मे रागात्मक भाव लायी सकल्प लिया, निदान किया। फलस्वरूप उसके पाँच पाण्डवो के साथ शादी हुई। हालाकि दुनिया मे यही कहा जाता है कि जो औरत एक से ज्यादा आदमी रखती है वह वेश्या है। वह औरत नहीं है। वह पतिव्रता नहीं है। मगर पाँच पाण्डवो की पत्नी होते हुए भी द्रौपदी क्या कहलाती है? सती। यह उसकी भावना का फल है। जन्म के कारण का सारा इतिहास इसी पर टिका हुआ है कि मरते समय आदमी की मृत्यु कैसे हुयी। सचमुच जीव बाल जीव होने के कारण बार बार मरता है। वही जीव यदि पण्डित मरण कर ले तो उसका मरण फिर न हो।

महावीर स्वामी ने कहा पण्डित मरण। ...
से। पण्डा विलक्षण बुद्धि को कहते है।
पण्डित है और जिसका पण्डित मरण
लेना पड़ता। उसे पूर्वबोध हो जाता
करता है ... कार ...

एक यहुदी फकीर था झेन फकीर। जिसका नाम था बोकोजू। बोकोजू मर रहा था। वह पश्चिम का बहुत बड़ा सत हुआ है। जब वह मर रहा था तो मरते मरते उसकी अन्तिम सास निकलने वाली थी कि वह अचानक खड़ा हो गया। शिष्यो ने कहा गुरुवर! आप सोये रहे ताकि आपकी सास आराम से निकल जाये। डाक्टरो ने भी कहा है कि आपकी उम्र आज भर की है तथा आपने स्वय भी कह दिया है कि मै आज से ज्यादा जिन्दा नही रहूँगा। तो आप आराम से सो जाइये। मगर बोकोजू ने कहा नही नही आराम हराम है। मेरे जूते लाकर मुझे दो। सब लोग चकित हो गये कि बोकोजू मरते समय जूते क्या माँग रहे है? बोकोजू ने कहा मुझे बाहर जाना है। शिष्य घबड़ाये मगर गुरुजी का आदेश था। जूते आये। बोकोजू ने स्वय अपने हाथ से जूते पहने और चल पडे श्मशान घाट की ओर। कब्रिस्तान पर पहुँचे और शिष्यो से कहा कि कब्र खोदो। शिष्यो ने कब्र खोदनी शुरू की, उसने स्वय भी सहायता की कब्र खोदने मे। जब कब्र खुद गयी तो अन्दर जाकर सो गये और शरीर का त्याग किया। प्राणो का उत्सर्ग कर दिया यह कहते हुए कि शिष्यो! अब तुम कुछ क्षण बाद, आराम से इस कब्र को ढक सकते हो। अब मै इस शरीर को छोड़ रहा हूँ। बोकोजू पहले आदमी रहे होगे इस तरह के जो श्मशान की तरफ अपने आप गये। कब्र की ओर अपने आप गये और कब्र को स्वय खोदी और अपने शरीर को छोड़ दिया। आज के युग मे ऐसे सत का मिलना बहुत कठिन है।

मूल कथा यही है कि जिस आदमी का पण्डित मरण हो जाता है। प्रज्ञापूर्ण मरण हो जाता है तो उसका सुमरण हो जाता है। मरना तो मुझे है। मैने जीवन पाया है। जीवन तो एक पहेली है। उस पहेली का समाधान सचमुच ऐसी ही मृत्यु है। मृत्यु हमारी अन्तिम मजिल है। मृत्यु हमारा अन्तिम स्वर है जहाँ हमको जाना है वह मृत्यु है और जो बाल है उनके लिए सचमुच यह भैसे पर बैठकर आती है और उनको ले जाती है। और जो पण्डित मरण मरते है उनके लिए मृत्यु कभी भी भैसा पर बैठकर नही आती। वहाँ मृत्यु उनका स्वागत करती है बैण्ड बाजा के साथ। वहा पर उनका सचमुच दिव्य स्वागत होता है।

जब महावीर का देहावसान हुआ। देव आये और दिव्य ज्योतियाँ प्रकट की। यानी मरते समय भी उनका स्वागत हुआ। मरे तब भी उत्सव और जन्मे तब भी उत्सव। उनका जन्म भी सार्थक हुआ। मृत्यु भी सार्थक हुई। ऐसा हो हो मरण ऐसा हो हो जन्म तभी तो हमारा जीवन सार्थक

मर नही पाते है। मै अपने ही घर का एक किस्सा सुनाता हूँ हमार पि
ने हमसे कहा था। कि हमारे परिवार म एक व्यक्ति हुआ, उसे जब कि
चीज की जरूरत होती तो वह पहुँचता अपने पिता के पास और कहता कि
मुझे यह चीज दो, नही ता मर जाऊँगा। एक दिन उसने माँ स कह
मुझे सौ रुपया दा नही ता मर जाऊँगा। माँ ने सोचा कि यदि ये
केवल रुपये माँगता तो मै दे देती पर यह मुझे मृत्यु-भय दिखाता है।
इस सबक देना पडेगा।

तो माँ ने कहा कि मरने की इच्छा है ता चला। हम दोना
चल। मै कम से कम देख तो लूँ कि तुम कैसे मरते हो। मेर भीतर
ता नही रह जायगा कि मेरा बेटा धोखे म मर गया। अपने सामन मरते
देख लूँ। चल चल खड़ हा। इस तरह से कहकर उसका हाथ पकड़ लि
चौक म बाजार मे पहुँचकर सभी लोगो से कहा मुहल्ले वाला से कहा
आओ देखो यह मरने जा रहा है। तुम लोग भी आकर देख लो। तुम
भीतर भी यह धोखा न रह जाय कि मेरा पड़ोसी कैसे
गया मेरा मित्र कैसे मर गया। तुम लाग भी आकर देख लो। ह
मुहल्लेवाले पीछे हो गये और अगले मुहल्ले वालो को भी साथ मे
लिया। ऐसे बढ़ते थे जैसे मृत्यु कोई कौतुक है। कुएँ का पन्द्रह बीस मि
का रास्ता था। कुएँ के पास सभी लोग पहुँचे तब माँ ने कहा—तू मर। त
बेटा भड़क उठा। उसने कहा कि सचमुच तुम मुझे मारना चाहती हो। त
माँ ने कहा कि मैं मारना चाहती हूँ कि तुम स्वय मरना चाहते हो? अ
तुम मरना चाहते हा ता मैं क्या करूँगी। अब कल फिर आयेगा कि माँ स
रुपया दा नही ता मै मरूँगा?

इसी प्रकार बहुत स लोग मरने क लिए उतारू हा जाते है। मगर
मर नही पाते। मृत्यु से लाग बहुत घबड़ाते है। मै मरता हूँ यह कहना सरल
है पर करके दिखाना कठिन है।

पर फिर भी य सब मृत्यु कोई अच्छी मृत्यु नही है। मृत्यु ऐसी हो
कि पुन जन्म मृत्यु न हो। समाधिपूर्वक देह का विसर्जन हो। शरीर [illegible]
[illegible] समर्पित कर दे मृत्यु क हाथो म। मगर यह तभी [illegible]
[illegible] और भारभूत बन। शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्। [illegible]
[illegible] तब तक मृत्यु का वरण उचित नही
[illegible]

किन्तु उससे बड़ी कला है
समाधि सह देह विसर्जन
राजपुत्र नित करता अभ्यासा से
समरकला मे प्राप्त निपुणता
इसीलिए फिर कैसे भी
विकराल समर मे
जूझ अकेले
विजय वरण करता वह अद्भुत।
इसी तरह जो साधक
सकटो मे, सुख मे
समता का अभ्यास करते निरन्तर
सयम के अकुश के नीचे
मन के गज को रखकर
होकर ध्यान समर्थ
सहज काया की चादर
रखते काल करो म।

कवि ने कहा कला। कला का मतलब है प्रकृति से मिली तुच्छ वस्तु ा अति सुन्दर बना देना।

जीना एक कला है। इस कला की शिक्षा तो अनेक विचारका न नेक प्रकार स दी है। किन्तु मरण भी एक कला है। इसकी शिक्षा जिस वेशद रूप मे और व्यावहारिक आचरण से भगवान महावीर न दी ह वह न एव भूअ न एव भव्व न एव भविस्सई' लगता है।

देह विसर्जन क लिए एक अभ्यास की जरूरत है। जा पूवाभ्यास स ाता है। जैसे युद्ध मैदान म विजय पाने क लिए किसी सैनिक का शिक्षा और पूर्वाभ्यास लेना पड़ता है, वैसे ही सुमरण की इच्छा करने वाले साधका के लिए भगवान् ने जो पद्धति बतायी है वह सबके लिए वरणीय करणीय है। •

मर नहीं पाते हैं। मैं आपको ही पर मैं एक किस्सा सुनाता हूँ हमारे पिता ने हमसे कहा था। कि हमारे परिवार में एक व्यक्ति हुआ उसे जब किसी चीज की जरूरत होती तो वह पहुँचता अपने पिता के पास और कहता कि मुझे यह चीज दो नहीं तो मर जाऊँगा। एक दिन उसने माँ से कहा कि मुझे सौ रुपया दो नहीं तो मर जाऊँगा। माँ ने सोचा कि यदि ये मुझसे केवल रुपये माँगता तो मैं दे देती पर यह मुझे मृत्यु भय दिखाता है। आज इसे सबक देना पड़ेगा।

तो माँ ने कहा कि मरने की इच्छा है तो चलो। हम दोनों साथ चलें। मैं कम से कम देख तो लूँ कि तुम कैसे मरते हो। मेरे भीतर धोखा तो नहीं रह जायगा कि मेरा बेटा धोखे में मर गया। अपने सामने मरते तो देख लूँ। चल जल्दी खड़े हो। इस तरह से कहकर उसका हाथ पकड़ लिया। चौक में बाजार में पहुँचकर सभी लोगों से कहा, मुहल्ले वालों से कहा कि आओ देखो यह मरने जा रहा है। तुम लोग भी आकर देख लो। तुम्हारे भीतर भी यह धोखा न रह जाय कि मेरा पड़ोसी कैसे मर गया मेरा मित्र कैसे मर गया। तुम लोग भी आकर देख लो। सारे मुहल्लेवाले पीछे हो गये और अगले मुहल्ले वालों को भी साथ में ले लिया। ऐसे बढ़ते थे जैसे मृत्यु कोई कौतुक है। कुएँ का पन्द्रह-बीस मिनट का रास्ता था। कुएं के पास सभी लोग पहुँचे तब माँ ने कहा—तू मर। तब बेटा भड़क उठा। उसने कहा कि सचमुच तुम मुझे मारना चाह) ।
माँ ने कहा कि मैं मारना चाहती हूँ कि तुम स्वय मरना चाह
तुम मरना चाहते हो तो मैं क्या करूँगी। अब कल फिर
रुपया दो नहीं तो मैं मरूँगा?

इसी प्रकार बहुत से लोग मरने के लिए उतारू हो
मर नहीं पाते। मृत्यु से लोग बहुत घबड़ाते है। मैं मरता हूँ य
है पर करके दिखाना कठिन है।

पर फिर भी ये सब मृत्यु कोई अच्छी मृत्यु नहीं ह
कि पुन जन्म मृत्यु न हो। समाधिपूर्वक देह का विस
चादर को छोड़ दें समर्पित कर दे मृत्यु के हाथों में।
शरीर अनुपयोगी और भारभूत लगे। 'शरीरमाद्यम् खलु
यह शरीर धर्म साधना में सहायक हो तब तक मृत्यु का
है।

[illegible]

तो माँ ने कहा कि मरने की इच्छा है तो चलो। हम दोनों साथ चलें। मैं कम से कम देख तो लूँ कि तुम कैसे मरते हो। मेरे भीतर धोखा तो रह रह जायेगा कि मेरा बेटा धोखे से मर गया। अपने सामने मरते तो देख लूँ। चलो चलो उठो। इस तरह से कहकर उसका हाथ पकड़ लिया। पीछे से बाजार में पहुँचकर सभी लोगों से कहा, मुहल्ले वालों से कहा कि आओ देखो यह मरने जा रहा है। तुम लोग भी आकर देख लो। तुम्हारे भीतर भी यह धोखा न रह जाय कि मेरा पड़ोसी कैसे मर गया मेरा मित्र कैसे मर गया। तुम लोग भी आकर देख लो। सारे मुहल्लेवाले पीछे हो गये और अगले मुहल्ले वालों को भी साथ में ले लिया। ऐसे बढ़ते थे जैसे मृत्यु कोई कौतुक है। कुएँ का पन्द्रह बीस मिनट का रास्ता था। कुएँ के पास सभी लोग पहुँचे तब माँ ने कहा—कूद मर। तब बेटा भड़क उठा। उसने कहा कि सचमुच तुम मुझे मारना चाहती हो। तो माँ ने कहा कि मैं मारना चाहती हूँ कि तुम स्वयं मरना चाहते हो? जब तुम मरना चाहते हो तो मैं क्या करूँगी। अब कल फिर आयेगा कि माँ सौ रुपया दो नहीं तो मैं मरूँगा?

इसी प्रकार बहुत से लोग मरने के लिए उतारू हो जाते हैं। मगर मर नहीं पाते। मृत्यु से लोग बहुत घबड़ाते हैं। मैं मरता हूँ यह कहना सरल है पर करके दिखाना कठिन है।

पर फिर भी ये सब मृत्यु कोई अच्छी मृत्यु नहीं है। मृत्यु ऐसी हो कि पुनः जन्म मृत्यु न हो। समाधिपूर्वक देह का विसर्जन हो। शरीर की चादर को छोड़ दे, समर्पित कर दे मृत्यु के हाथों में। मगर यह तभी जब शरीर अनुपयोगी और भारभूत लगे। 'शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्।' जब यह शरीर धर्म साधना में सहायक हो, तब तक मृत्यु का वरण उचित नहीं है।

मर नही पाते है। मै अपने ही घर का एक किस्सा सुनाता हूँ हमारे पिता ने हमसे कहा था। कि हमारे परिवार म एक व्यक्ति हुआ उसे जब किसी चीज की जरूरत होती ता वह पहुचता अपने पिता क पास और कहता कि मुझे यह चीज दो नही ता मर जाऊँगा। एक दिन उसन माँ से कहा कि मुझे सौ रुपया दो नही ता मर जाऊँगा। माँ ने साचा कि यदि य मुझसे केवल रुपये माँगता तो मै दे देती पर यह मुझ मृत्यु भय दिखाता है। आज इस सबक देना पड़गा।

तो माँ ने कहा कि मरने की इच्छा है ता चला। हम दोना साथ चल। मै कम से कम देख तो लूँ कि तुम कैसे मरते हा। मरे भीतर धाखा ता नही रह जायगा कि मरा बेटा धोख म मर गया। अपने सामन मरते ता देख लूँ। चल चल खड़ हो। इस तरह से कहकर उसका हाथ पकड़ लिया। चौक मे बाजार म पहुँचकर सभी लोगो से कहा, मुहल्ल वाला से कहा कि आओ देखो यह मरने जा रहा है। तुम लोग भी आकर देख लो। तुम्हारे भीतर भी यह धोखा न रह जाय कि मेरा पड़ोसी कैसे मर गया मेरा मित्र कैसे मर गया। तुम लाग भी आकर देख लो! सार मुहल्लेवाले पीछे हो गय और अगले मुहल्ले वालो को भी साथ मे ले लिया। ऐसे बढते थे जैसे मृत्यु कोई कौतुक है। कुएँ का पन्द्रह बीस मिनट का रास्ता था। कुएं के पास सभी लोग पहुँचे तब माँ ने कहा—तू मर। तब बेटा भड़क उठा। उसने कहा कि सचमुच तुम मुझे मारना चाहती हो। तो माँ ने कहा कि मैं मारना चाहती हूँ कि तुम स्वय मरना चाहते हो? जब तुम मरना चाहते हो तो मैं क्या करूँगी। अब कल फिर आयेगा कि माँ सौ रुपया दो नही ता मै मरूँगा?

इसी प्रकार बहुत स लाग मरन क लिए उतारू हा जात हैं। मगर मर नही पाते। मृत्यु स लाग बहुत घबड़ाते है। मै मरता हूँ यह कहना सरल है पर करके दिखाना कठिन है।

पर फिर भी य सब मृत्यु कोई अच्छी मृत्यु नहीं है। मृत्यु ऐसा हा कि पुन जन्म मृत्यु न हा। समाधिपूर्वक देह का विसर्जन हा। शरीर की चादर को छोड़ दे समर्पित कर द मृत्यु क हाथा म। मगर यह तभी जब शरीर अनुपयोगी और भारभूत लग। 'शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्'। जब यह शरीर धर्म साधना म सहायक हा तब तक मृत्यु का वरण उचित नहीं है।

जाना एक कला है

किन्तु उससे बड़ी कला है
समाधि सह देह विसर्जन
राजपुत्र नित करता अभ्यास में
समरकला में प्राप्त निपुणत्व
इसीलिए फिर ऐसे भी
विकराल समर में
जूझ अकेले
विजय वरण करता वह अद्भुत।
इसी तरह जो साधक
सफटा । गुरु में
समता का अभ्यास करते निरन्तर
संयम के अंकुश के बीच
मन के गज को रखकर
होकर ध्यान सार्थ
सहज काया की चादर
रखते काल-करा में।

कवि ने कहा कला। कला का मतलब है प्रकृति से मिली तुच्छ वस्तु को अति सुन्दर बना देना।

जीना एक कला है। इस कला की शिक्षा तो अनेक विचारकों ने अनेक प्रकार से दी है। किन्तु मरण भी एक कला है। इसकी शिक्षा जिस विशद रूप से और व्यावहारिक आचरण से भगवान महावीर ने दी है वह 'न एव भूअं न एव भव्वं न एव भविस्सई' लगता है।

देह विसर्जन के लिए एक अभ्यास की जरूरत है। जो पूर्वाभ्यास से होता है। जैसे युद्ध मैदान में विजय पाने के लिए किसी सैनिक को शिक्षा और पूर्वाभ्यास लेना पड़ता है वैसे ही सुमरण की इच्छा करने वाले साधकों के लिए भगवान् ने जो पद्धति बतायी है वह सबके लिए वरणीय करणीय है। •

मर नही पाते है। मै अपने ही घर का एक किस्सा सुनाता हूँ हमारे पिता ने हमसे कहा था। कि हमारे परिवार मे एक व्यक्ति हुआ उसे जब किसी चीज की जरूरत होती तो वह पहुँचता अपने पिता के पास और कहता कि मुझे यह चीज दो नही तो मर जाऊँगा। एक दिन उसने माँ से कहा कि मुझे सौ रुपया दो नहीं तो मर जाऊँगा। माँ ने सोचा कि यदि य मुझसे केवल रुपये माँगता तो मै दे देती पर यह मुझे मृत्यु भय दिखाता है। आज इसे सबक देना पड़ेगा।

तो माँ ने कहा कि मरने की इच्छा है तो चलो। हम दोनो साथ चले। मै कम से कम देख तो लूँ कि तुम कैसे मरते हो। मेरे भीतर धोखा तो नही रह जायगा कि मेरा बेटा धोखे मे मर गया। अपने सामने मरते तो देख लूँ। चल चल खड़े हो। इस तरह से कहकर उसका हाथ पकड़ लिया। चौक मे बाजार मे पहुँचकर सभी लोगो से कहा मुहल्ले वालो से कहा कि आओ देखो यह मरने जा रहा है। तुम लोग भी आकर देख लो। तुम्हारे भीतर भी यह धोखा न रह जाय कि मेरा पड़ोसी कैसे मर गया मेरा मित्र कैसे मर गया। तुम लोग भी आकर देख लो। सारे मुहल्लेवाले पीछे हो गये और अगले मुहल्ले वालो को भी साथ मे ले लिया। ऐसे बढ़ते ये जैसे मृत्यु कोई कौतुक है। कुएँ का पन्द्रह बीस मिनट का रास्ता था। कुएँ के पास सभी लोग पहुँचे तब माँ ने कहा—तू मर। तब बेटा भड़क उठा। उसने कहा कि सचमुच तुम मुझे मारना चाहती हो। तो माँ ने कहा कि मै मारना चाहती हूँ कि तुम स्वय मरना चाहते हो? जब तुम मरना चाहते हो तो मै क्या करूँगी। अब कल फिर आयेगा कि माँ सौ रुपया दो नही तो मै मरूँगा?

इसी प्रकार बहुत से लोग मरने के लिए उतारू हो जाते है। मगर मर नही पाते। मृत्यु से लोग बहुत घबड़ाते है। मै मरता हूँ यह कहना सरल है पर करके दिखाना कठिन है।

पर फिर भी ये सब मृत्यु कोई अच्छी मृत्यु नही है। मृत्यु ऐसी हो कि पुन जन्म मृत्यु न हो। समाधिपूर्वक देह का विसर्जन हो। शरीर की चादर को छोड़ दे समर्पित कर दे मृत्यु के हाथो मे। मगर यह तभी जब शरीर अनुपयोगी और भारभूत लगे। शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्। जब यह शरीर धर्म साधना मे सहायक हो तब तक मृत्यु का वरण उचित नही है।

किन्तु उससे बड़ी कला है
समाधि मह देह विसर्जन
राजपुत्र जित करता अभ्यासो से
समरकला म प्राप्त निपुणता
इसीलिए फिर कैसे भी
विकराल समर म
जूझ करके
विजय वरण करता वह अद्भुत।
इसी तरह का साधक
सजग ह गुरु न
समता का अभ्यास करते निरन्तर
सदा के अंकुश के नीचे
मन के गज को रखकर
होकर ध्यान समर्थ
महज काया की चादर
रखता काल-करा म।

कवि ने कहा कला। कला का मतलब ह प्रकृति स मिली तुच्छ वस्तु का अति सुन्दर बना देना।

जीना एक कला है। इस कला की शिक्षा तो अनेक विचारकों ने अनेक प्रकार स दी है। किन्तु मरण भी एक कला है। इसकी शिक्षा जिस विशद रूप म और व्यावहारिक आचरण स भगवान महावीर ने दी है वह न एव भूअ, न एव भव्व न एव भविस्सई लगता है।

देह विसर्जन क लिए एक अभ्यास की जरूरत है। जो पूर्वाभ्यास स होता है। *जस युद्ध मैदान म विजय पाने क लिए किसी सैनिक को शिक्षा* और पूर्वाभ्यास लेना पड़ता है वस ही सुमरण की इच्छा करने वाले साधकों के लिए भगवान् ने जो पद्धति बतायी है वह सबके लिए वरणीय करणीय है। ●

मर नही पाते है। मै अपने ही घर का एक किस्सा सुनाता हूँ, हमारे पिता ने हमसे कहा था। कि हमारे परिवार मे एक व्यक्ति हुआ, उसे जब किसी चीज की जरूरत होती तो वह पहुचता अपने पिता के पास और कहता कि मुझे यह चीज दो नही ता मर जाऊँगा। एक दिन उसने माँ स कहा कि मुझे सौ रुपया दो नही ता मर जाऊँगा। माँ ने सोचा कि यदि य मुझसे केवल रुपये माँगता तो मै दे देती पर यह मुझ मृत्यु भय दिखाता है। आज इस सबक देना पड़गा।

तो माँ ने कहा कि मरने की इच्छा है ता चला। हम दोनो साथ चल। मै कम से कम देख तो लूँ कि तुम कैसे मरत हो। मेरे भीतर धोखा ता नही रह जायगा कि मेरा बेटा धोखे म मर गया। अपने सामने मरत तो देख लूँ। चल चल खड़ हो। इस तरह से कहकर उसका हाथ पकड़ लिया। चौक मे बाजार मे पहुँचकर सभी लोगो से कहा, मुहल्ले वालो से कहा कि आओ देखो यह मरने जा रहा है। तुम लोग भी आकर देख लो। तुम्हारे भीतर भी यह धोखा न रह जाय कि मेरा पड़ोसी कैसे मर गया मरा मित्र कैसे मर गया। तुम लोग भी आकर देख लो। सार मुहल्लेवाले पीछे हो गये और अगले मुहल्ले वालो को भी साथ म ले लिया। ऐसे बढ़ते थे जैसे मृत्यु कोई कौतुक है। कुएँ का पन्द्रह-बीस मिनट का रास्ता था। कुएँ के पास सभी लोग पहुँचे तब माँ ने कहा—तू मर। तब बेटा भड़क उठा। उसने कहा कि सचमुच तुम मुझे मारना चाहती हो। तो माँ ने कहा कि मैं मारना चाहती हूँ कि तुम स्वय मरना चाहते हो? जब तुम मरना चाहते हो तो मैं क्या करूँगी। अब कल फिर आयेगा कि माँ सौ रुपया दो नही ता मै मरूँगा?

इसी प्रकार बहुत स लोग मरन के लिए उतारू हा जाते हैं। मगर मर नही पाते। मृत्यु स लाग बहुत घबड़ाते है। मै मरता हूँ यह कहना सरल है पर करके दिखाना कठिन है।

पर फिर भी ये सब मृत्यु कोई अच्छी मृत्यु नही है। मृत्यु ऐसी हो कि पुन जन्म मृत्यु न हो। समाधिपूर्वक देह का विसर्जन हो। शरीर की चादर को छोड़ द समर्पित कर दे मृत्यु के हाथो म। मगर यह तभी जब शरीर अनुपयोगी और भारभूत लगे। 'शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्।' जब यह शरीर धर्म साधना म सहायक हो तब तक मृत्यु का वरण उचित नहा है।

किन्तु उससे बड़ी कला है
समाधि मरण देह विसर्जन
राजपुत्र नित करता अभ्यासों से
शस्त्रकला में प्राप्त निपुणता
इसीलिए फिर वो भी
विकराल समर में
जूझ अकेले
विजय वरण करता वह अद्भुत।
इसी तरह जो साधक
सकता [illegible]
समता का अभ्यास करते निरन्तर
समय के अंकुश के नीचे
मन के गज को रखकर
होकर ध्यान समर्थ
सहज समता की चादर
रखते काल करा में।

कवि ने कहा कला। कला का मतलब है प्रकृति से मिली तुच्छ वस्तु को अति सुन्दर[1] बना देना।

जीना एक कला है। इस कला की शिक्षा तो अनेक विचारकों ने अनेक प्रकार से दी है। किन्तु मरण भी एक कला है। इसकी शिक्षा जिस विशद रूप में और व्यावहारिक आचरण से भगवान महावीर ने दी है वह 'न एव भूअं न एव भव्वं न एव भविस्सई' लगता है।

देह विसर्जन के लिए एक अभ्यास की जरूरत है। जो पूर्वाभ्यास से *होता है। जैसे युद्ध मैदान में विजय पाने के लिए किसी सैनिक को शिक्षा* और पूर्वाभ्यास लेना पड़ता है वैसे ही सुमरण की इच्छा करने वाले साधकों के लिए भगवान् ने जो पद्धति बतायी है, वह सबके लिए वरणीय करणीय है। •

मर नही पाते है। मै अपने ही घर का एक किस्सा सुनाता हूँ हमारे पिता ने हमसे कहा था। कि हमारे परिवार मे एक व्यक्ति हुआ उसे जब किसी चीज की जरूरत होती तो वह पहुँचता अपने पिता के पास और कहता कि मुझे यह चीज दो नही तो मर जाऊँगा। एक दिन उसने माँ से कहा कि मुझे सौ रुपया दो नही तो मर जाऊँगा। माँ ने सोचा कि यदि ये मुझसे केवल रुपये माँगता तो मैं दे देती पर यह मुझे मृत्यु भय दिखाता है। आज इसे सबक देना पड़ेगा।

तो माँ ने कहा कि मरने की इच्छा है तो चलो। हम दोनो साथ चले। मै कम से कम देख तो लूँ कि तुम कैसे मरते हो। मेरे भीतर धोखा तो नही रह जायगा कि मेरा बेटा धोखे मे मर गया। अपने सामने मरते तो देख लूँ। चल चल खड़े हो। इस तरह से कहकर उसका हाथ पकड़ लिया। चौक मे बाजार मे पहुँचकर सभी लोगो से कहा मुहल्ले वालो से कहा कि आओ देखो यह मरने जा रहा है। तुम लोग भी आकर देख लो। तुम्हारे भीतर भी यह धोखा न रह जाय कि मेरा पड़ोसी कैसे मर गया मेरा मित्र कैसे मर गया। तुम लोग भी आकर देख लो। सारे मुहल्लेवाले पीछे हो गये और अगले मुहल्ले वालो को भी साथ मे ले लिया। ऐसे बढ़ते थे जैसे मृत्यु कोई कौतुक है। कुएँ का पन्द्रह-बीस मिनट का रास्ता था। कुऐं के पास सभी लोग पहुँचे तब माँ ने कहा--तू मर। तब बेटा भडक उठा। उसने कहा कि सचमुच तुम मुझे मारना चाहती हो। तो माँ ने कहा कि मै मारना चाहती हूँ कि तुम स्वय मरना चाहते हो? जब तुम मरना चाहते हो तो मैं क्या करूँगी। अब कल फिर आयेगा कि माँ सौ रुपया दो नही तो मै मरूँगा?

इसी प्रकार बहुत से लोग मरने के लिए उतारू हो जाते हैं। मगर मर नही पाते। मृत्यु से लोग बहुत घबड़ाते हैं। मै मरता हूँ यह कहना सरल है पर करके दिखाना कठिन है।

पर फिर भी ये सब मृत्यु कोई अच्छी मृत्यु नही है। मृत्यु ऐसी हो कि पुन जन्म-मृत्यु न हो। समाधिपूर्वक देह का विसर्जन हो। शरीर की चादर को छोड़ दे समर्पित कर दे मृत्यु के हाथो मे। मगर यह तभी जब शरीर अनुपयोगी और भारभूत लगे। 'शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्।' जब यह शरीर धर्म साधना मे सहायक हो तब तक मृत्यु का वरण उचित नही है।

किन्तु उससे बड़ी कला है
समाधि सह देह विसर्जन
राजपुत्र नित करता अभ्यासा से
समरकला मे प्राप्त निपुणता
इसीलिए फिर कैसे भी
विकराल ममर म
जूझ अकेले
विजय वरण करता वह अद्भुत।
इसी तरह जो साधक
सकटा म सुख म
समता का अभ्यास करते निरन्तर
सयम के अकुश के नीचे
मन के गज को रखकर
होकर ध्यान समर्थ
सहज काया की चादर
रखते काल करो मे।

कवि ने कहा कला। कला का मतलब है प्रकृति स मिली तुच्छ वस्तु को अति सुन्दर बना दना।

जीना एक क्ला है। इस कला की शिक्षा तो अनक विचारको न अनेक प्रकार से दी है। किन्तु मरण भी एक कला है। इसकी शिक्षा जिस विशद रूप म और व्यावहारिक आचरण से भगवान महावीर न दी है वह न एव भूअ न एव भव्व न एव भविस्सई' लगता है।

देह विसर्जन के लिए एक अभ्यास की जरूरत है। जो पूवाभ्यास स होता है। जसे युद्ध मैदान म विजय पान क लिए किसी सैनिक को शिक्षा और पूर्वाभ्यास लेना पडता है वैसे ही सुमरण की इच्छा करने वाल साधको के लिए भगवान् ने जो पद्धति बतायी है वह सबके लिए वरणीय करणीय है। •

मर नही पाते है। मै अपने ही घर का एक किस्सा सुनाता हूँ हमारे पिता ने हमसे कहा था। कि हमारे परिवार मे एक व्यक्ति हुआ उसे जब किसी चीज की जरूरत होती तो वह पहुचता अपने पिता के पास और कहता कि मुझे यह चीज दो नही तो मर जाऊँगा। एक दिन उसने माँ से कहा कि मुझे सौ रुपया दो नही तो मर जाऊँगा। माँ ने सोचा कि यदि य मुझसे केवल रुपये माँगता तो मै दे देती पर यह मुझे मृत्यु भय दिखाता है। आज इसे सबक देना पड़ेगा।

तो माँ ने कहा कि मरने की इच्छा है तो चलो। हम दोनो साथ चले। मै कम से कम देख तो लूँ कि तुम कैसे मरते हो। मेरे भीतर धोखा तो नही रह जायगा कि मेरा बेटा धोखे मे मर गया। अपने सामने मरते तो देख लूँ। चल चल खड़े हो। इस तरह से कहकर उसका हाथ पकड़ लिया। चौक मे बाजार मे पहुँचकर सभी लोगो से कहा, मुहल्ले वालो से कहा कि आओ देखो यह मरने जा रहा है। तुम लोग भी आकर देख लो। तुम्हारे भीतर भी यह धोखा न रह जाय कि मेरा पड़ोसी कैसे मर गया मेरा मित्र कैसे मर गया। तुम लोग भी आकर देख लो। सारे मुहल्लेवाले पीछे हो गये और अगले मुहल्ले वालो को भी साथ मे ले लिया। ऐसे बढ़ते थे जैसे मृत्यु कोई कौतुक है। कुएँ का पन्द्रह बीस मिनट का रास्ता था। कुएँ के पास सभी लोग पहुँचे तब माँ ने कहा—तू मर। तब बेटा भडक उठा। उसने कहा कि सचमुच तुम मुझे मारना चाहती हो। तो माँ ने कहा कि मैं मारना चाहती हूँ कि तुम स्वय मरना चाहते हो? जब तुम मरना चाहते हो तो मैं क्या करूँगी। अब कल फिर आयेगा कि माँ सौ रुपया दो नही तो मै मरूँगा?

इसी प्रकार बहुत से लोग मरने के लिए उतारू हो जाते हैं। मगर मर नही पाते। मृत्यु से लोग बहुत घबड़ाते है। मै मरता हूँ यह कहना सरल है पर करके दिखाना कठिन है।

पर फिर भी ये सब मृत्यु कोई अच्छी मृत्यु नही है। मृत्यु ऐसी हो कि पुन जन्म मृत्यु न हो। समाधिपूर्वक देह का विसर्जन हो। शरीर की चादर को छोड़ दे समर्पित कर दे मृत्यु के हाथो मे। मगर यह तभी जब शरीर अनुपयोगी और भारभूत लगे। 'शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्।' जब यह शरीर धर्म साधना मे सहायक हो तब तक मृत्यु का वरण उचित नहीं है।

किन्तु उससे बड़ी कला है
समाधि सह देह विसर्जन
राजपुत्र नित करता अभ्यासो स
समरकला म प्राप्त निपुणता
इसीलिए फिर जैसे भी
विकराल समर म
जूझ अकेले
विजय वरण करता वह अद्भुत।
इसी तरह जो साधक
सकदा न युद्ध म
समता का अभ्यास करते निरन्तर
मरण के अकुश के नीच
मन क गज को रखकर
होकर ध्यान समर्थ
सहज काया की चादर
रखते काल-करा म।

कवि ने कहा कला। कला का मतलब है प्रकृति स मिली तुच्छ वस्तु का अति सुन्दर बना देना।

जीना एक कला है। इस कला की शिक्षा तो अनक विचारको न अनेक प्रकार स दी है। किन्तु मरण भी एक कला है। इसकी शिक्षा जिस *विशद रूप म और व्यावहारिक आचरण स भगवान महावीर ने दी है वह* 'न एव भूअ, न एव भव्व न एव भविस्सई' लगता है।

देह विसर्जन क लिए एक अभ्यास की जरूरत है। जो पूर्वाभ्यास स होता है। जैस युद्ध मैदान म विजय पाने क लिए किसी सैनिक को शिक्षा और पूर्वाभ्यास लेना पड़ता है, वसे ही सुमरण की इच्छा करने वाले साधको क लिए भगवान् ने जो पद्धति बतायी है वह सबके लिए वरणीय करणीय है। •

मर नहीं पाते है। मै आपको [illegible] किया गया [illegible] हमारे [illegible]
ने हमसे कहा था। कि हमारे परिवार मे [illegible]
चीज की जरूरत होती तो [illegible] और [illegible] और कहता कि
मुझे यह चीज दो नहीं तो मर जाऊँगा। [illegible] माँ [illegible] कि
मुझे सौ रुपया दो नहीं तो मर जाऊँगा। माँ [illegible] कि यदि यह मुझसे
केवल रुपये माँगता [illegible] नहीं पर [illegible] मृत्यु भय [illegible] है। आज
इसे सबक देना पड़ेगा।

तो माँ ने कहा कि मरने की इच्छा है तो चलो। हम भी साथ चलें। मै कम से कम देख तो लूँ कि तुम कैसे मरते हो। मेरे भीतर धोखा तो नहीं रह जायगा कि मेरा बेटा धोखे से मर गया। अपने सामने मरते तो देख लूँ। चल चल उठ हो। इस तरह से कहकर उसका हाथ पकड़ लिया। चौक मे बाजार मे पहुँचकर सभी लोगो से कहा मुहल्ले वालो से कहा कि आओ देखो यह मरने जा रहा है। तुम लोग भी आकर देख लो। तुम्हारे भीतर भी यह धोखा न रह जाय कि मेरा पड़ोसी कैसे मर गया मेरा मित्र कैसे मर गया। तुम लोग भी आकर देख लो। सारे मुहल्लेवाले पीछे हो गये और अगले मुहल्ले वालो को भी साथ मे ले लिया। ऐसे बढ़ते थे जैसे मृत्यु कोई कौतुक है। कुएँ का पन्द्रह बीस मिनट का रास्ता था। कुएँ के पास सभी लोग पहुँचे तब माँ ने कहा—तू मर। तब बेटा भड़क उठा। उसने कहा कि सचमुच तुम मुझे मारना चाहती हो। तो माँ ने कहा कि मै मारना चाहती हूँ कि तुम स्वय मरना चाहते हो? जब तुम मरना चाहते हो तो मैं क्या करूँगी। अब कल फिर आयेगा कि माँ सौ रुपया दो नही तो मै मरूँगा?

इसी प्रकार बहुत से लोग मरने के लिए उतारू हो जाते हैं। मगर मर नही पाते। मृत्यु से लोग बहुत घबड़ाते है। मै मरता हूँ यह कहना सरल है, पर करके दिखाना कठिन है।

पर फिर भी ये सब मृत्यु कोई अच्छी मृत्यु नही है। मृत्यु ऐसी हो कि पुन जन्म मृत्यु न हो। समाधिपूर्वक देह का विसर्जन हो। शरीर की चादर को छोड़ दे समर्पित कर दे मृत्यु के हाथो मे। मगर यह तभी जब शरीर अनुपयोगी और भारभूत लगे। 'शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्।' जब यह शरीर धर्म साधना मे सहायक हो तब तक मृत्यु का वरण उचित नही है।

किन्तु उससे बड़ी कला है
समाधि सह देह विसर्जन
राजपुत्र नित करता अभ्यास से
समरकला में प्राप्त निपुणता
इसीलिए फिर कैसे भी
विकराल समर में
जूझ अकेले
विजय वरण करता वह अद्भुत।
इसी तरह जो साधक
मकड़ा में मुझ में
समता का अभ्यास करते निरन्तर
संयम के अंकुश के नीचे
मन के गज को रखकर
हांकर ध्यान सगर्व
सहज काया की चादर
रखते काल करा में।

कवि ने कहा कला। कला का मतलब है प्रकृति से मिली तुच्छ वस्तु को अति सुन्दर बना देना।

जीना एक कला है। इस कला की शिक्षा तो अनेक विचारकों ने अनेक प्रकार से दी है। किन्तु मरण भी एक कला है। इसकी शिक्षा जिस विशद रूप में और व्यावहारिक आचरण से भगवान महावीर ने दी है वह *न एव भूअ न एव भव्व न एव भविस्सई* लगता है।

देह विसर्जन के लिए एक अभ्यास की जरूरत है। जो पूर्वाभ्यास से होता है। जैसे युद्ध मैदान में विजय पाने के लिए किसी सैनिक को शिक्षा *और पूर्वाभ्यास लेना पड़ता है वैसे ही सुमरण की इच्छा करने वाले साधकों* के लिए भगवान् ने जो पद्धति बतायी है वह सबके लिए वरणीय करणीय है। •